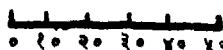
महावंश

प्राचीन लङ्का

अँगरेजी–पैमाना



प्राचीन नाम ताम्रलिप्ति
अर्वाचीन... जाफना

महावंश

अनुवादक

भदंत आनन्द कौसल्यायन



१९४२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण : ५०० प्रतियाँ : १)

प्रकाशक—साहित्यमंत्री, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक—ओंकार प्रसाद गौड़, मैनेजर, कायस्थ पाठशाला प्रेस तथा
प्रिंटिंग स्कूल, प्रयाग।

वर्तमान सिंहल

के

एकमात्र वीर-पुत्र

भारत में बौद्धधर्म के पुनरुद्धारक

अनागारिक धर्मपाल की

पुण्य-स्मृति

में

प्रकाशकीय वक्तव्य

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उस से सम्मेलन इस 'सुलभ-साहित्यमाला'' के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। हिंदी पाठक जानते हैं कि अब तक इस माला में अनेक ग्रन्थ-पुष्प गूँथे जा चुके हैं। इस माला के द्वारा जो हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय स्वर्गीय बड़ौदा-नरेश को है श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी नरेशों के लिए अनुकरणीय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ सिंहल के प्राचीन इतिहास विषयक एक प्रख्यात ग्रन्थ है। ईसा से पूर्व की पाँचवीं सदी से लेकर ईसा से बाद की चौथी सदी तक, लगभग साढ़े आठ सदियों का लेखा इस ग्रन्थ में है। पालि वाङ्मय में इस का एक विशिष्ट स्थान है। भारतीय इतिहास के अनेक प्रसगों पर भी इस के द्वारा प्रकाश पड़ता है।

ग्रन्थ के अनुवादक हिन्दी पाठकों के सुपरिचित हैं। भदंत आनन्द कौसल्यायन हिन्दी में बौद्ध-साहित्य की पूर्ति में जिस उत्साह से दत्तचित्त हैं वह सराहनीय है। सम्मेलन से ही इनका किया हुआ 'जातक' कथाओं का अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। भविष्य में भी इनसे हमें बड़ी आशाएँ हैं।

संग्रहालय-भवन,
हिंदी साहित्य-सम्मेलन, इलाहाबाद
७/११/४२

रामचन्द्र टंडन
साहित्य-मंत्री

विषय-सूची

परिचय

सिंहल में त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के अतिरिक्त जो पालि वाङ्मय है उसमें महावंस का अपना स्थान है। दीपवंस और महावंस दोनों ग्रन्थ सिंहल के इतिहास-ग्रन्थ हैं। 'भारत का शायद ही कोई दूसरा प्रदेश ऐसा है जिसका इतिहास उतना सुरक्षित है जितना सिंहल का'[1]।

दीपवंस और महावंस में वर्णित विषय एक ही है। दोनों में न केवल विषय की समानता है, बल्कि दोनों का वर्णन-क्रम भी एक ही है। महावंस दीपवंस से पीछे की रचना है। इससे या तो महावंस ने दीपवंस की नकल की है या दोनों ने ही किसी तीसरी जगह से अपनी सामग्री और उसका क्रम ग्रहण किया है। दोनों के तीसरी जगह से ही अपनी सामग्री और वर्णन क्रम ग्रहण करने की बात ठीक है। सिंहल भाषा में जो पुरानी महावंस अट्ठकथा रही, वही इनका आधार है। "आचार्य्य ने पुरानी सिंहल अट्ठकथा में से अति विस्तार तथा पुनरुक्ति दोषों को छोड़ कर सरलता से समझ में आने योग्य करके महावंस को लिखा"[2]।

दोनों इतिहास-ग्रन्थों में जो मुख्य भेद है वह यह है कि जहाँ दीपवंस काव्य की दृष्टि से एकदम ध्यान न देने लायक लगता है, एकदम भर्ती की चीज प्रतीत होता है, कहीं कहीं पद्य के बीच में गद्य भी विद्यमान है; वहाँ महावंस एक श्रेष्ठ महाकाव्य है।

महावंस का शब्दार्थ है महान् लोगों का वंस[3]। महान लोगों के वंश का

---

[1] दीपवंस एवड महावंस, डब्ल्यु गैगर, (पृ० १)

[2] अयं हि आचरियो एत्थ पोराणकम्हि सीहलअट्ठकथा महावंसे अतिवित्थार पुनरुत्तदोस भाव पहाय तं सुखग्गहणादि पयोजन सहितं कत्वा कथेसि, (महावंस टीका, पृ० २५)

[3] महंतानं वंसो तम्हि पवेणि महावंसो, (महावंस टीका, पृ० १६)

परिचय कराने वाला होने से तथा स्वयं भी महान् होने से ही इसका नाम हुआ महावस[१]।

दीपवंस के रचयिता का पता नहीं। महावस-टीकाकार का कहना है कि महावस की रचना महानाम स्थविर के हाथों हुई। महानाम स्थविर दीघसन्द सेनापति के बनाए विहार में रहते थे[२]। दीघसन्द सेनापति राजा देवाना प्रिय तिष्य का सेनापति था। महावस की कथा महासेन के समय तक समाप्त होकर उसका लिखा जाना आगे भी जारी रहा। वर्तमान महावंस—जिसका अनुवाद उपस्थित है—सैंतीसवें परिच्छेद की पचासवीं गाथा तक है। छत्तीस परिच्छेदों में प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में 'सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिए रचित महावंश का··· ··परिच्छेद' शब्द आते हैं। सैंतीसवा परिच्छेद पचास गाथाओं पर पहुँच कर यकायक समाप्त हो जाता है। जिस रचयिता ने महावस को आगे जारी रखा उसने इसी परिच्छेद में १९८ गाथाएँ और जोड़ कर इस परिच्छेद को 'सात राजा' शीर्षक दिया। यह आगे का हिस्सा चूळवंश कहलाता है। बाद के हर इतिहास-लेखक ने अपने हिस्से के इतिहास को किसी खास परिच्छेद पर समाप्त न कर अगले परिच्छेद की भी कुछ गाथाएँ इसी अभिप्राय से लिखी प्रतीत होता है कि जातीय-इतिहास को सुरक्षित रखने की यह परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे।

महानाम की मृत्यु के बाद महासेन (३०२ ई०) के समय से दम्बदेनिय के पंडित पराक्रमबाहु (१२४०-७५) तक का महावस धर्मकीर्ति द्वितीय ने लिखा[३]। यह ३७ परिच्छेद से ७९ परिच्छेद तक दम्बदेनिय नरेश से हस्ति शैलपुर (आधुनिक कुरुनैगल) के पराक्रमबाहु तक का इतिहास सङ्घराज शरणङ्कर के एक शिष्य तिब्बटुवावे सिद्धार्थ बुद्धरक्षित ने लिखा। यह असली परिच्छेद से ९० परिच्छेद तक। ८० तथा ९० परिच्छेद सम्मिलित। उस समय से कीर्ति श्री राजसिंह की मृत्यु (१७८५) के समय तक का इतिहास तिब्बटुवावे सुमङ्गल स्थविर ने रचा और उस समय से सिंहल के अंग्रेजों के हाथ में पड़ने (१८७५) तक के समय का इतिहास स्वर्गीय हिक्कडुवे श्री सुमङ्गलाचार्य

[१] महंतानं वंसपरिदीपकत्ता, सयमेव महंतत्तापि, महावंसो नाम (महावंस टीका, पृ० ७)।

[२] दीघसन्दसेनापतिना कारापितस्स (?) महानामोति (महावंस टीका पृ० ५०२)।

[३] यगिरल पञ्ञानन्द नायकपाद इसे स्वीकार नहीं करते।

तथा बटुवन्तुडावे पण्डित देवरक्षित ने। १८८३ में दोनों विद्वानों ने महावंस का एक सिंहल अनुवाद भी छापा। १८१५ से १६३५ तक का इतिहास सन् १६३६ में यगिरल पञ्ञानन्द नायक स्थविर ने पूर्व परम्परानुसार प्रकाशित किया है।

सरसरी नजर से यदि हम महावंस पर दृष्टि डालें तो वह पाँचवीं शताब्दी (ई० पू० से चौथी शताब्दी (ई०) तक लगभग साढ़े आठ सौ वर्ष का लेखा है। उसमे तथागत के तीन बार लङ्का आने का वर्णन है। तीनों बौद्ध सङ्गीतियों का वर्णन है। विजय के लङ्का जानने का वर्णन है। देवानां प्रिय तिष्य के राज्यकाल में अशोक पुत्र महेन्द्र के लङ्का जाने का वर्णन है। मगध से भिन्न भिन्न देशों में बौद्ध धर्म प्रचारार्थ भिक्षुओं के जाने का वर्णन है। बोधिवृक्ष की शाखा सहित महेन्द्र स्थविर की बहन अशोकपुत्री सङ्घमित्रा के लङ्का जाने का वर्णन है। सिंहल के महापराक्रमी राजा दुट्ठगामणी से लेकर महासेन तक अनेक राजाओं और उनके राज्यकाल का वर्णन है। इस प्रकार कहने को तो महावंस केवल सिंहल का ही इतिहास-ग्रन्थ है लेकिन वास्तव में वह सारे भारतीय इतिहास की मूल उपादान सामग्री से भरा पड़ा है।

प्रश्न होता है कि यह सारी सामग्री कहाँ तक विश्वसनीय है? श्री रीज डेविड्स का कहना है कि सिंहल के इतिहास-ग्रन्थों की कालानुक्रमणिका इङ्गलैण्ड और फ्रांस के इधर पीछे के लिखे हुए ग्रन्थों की कालानुक्रमणिका से किसी भी तरह हेठी नहीं है[1]। हम देखते हैं कि बिम्बिसार से अशोक तक जिन राजाओं के नाम महावंश में आए हैं उन्हीं राजाओं में से मुख्य मुख्य के नाम पुराणों में भी हैं। दोनों ऐतिहासिक परम्पराओं के इन राजाओं का राज्यकाल भी लगभग एक ही है। चन्द्रगुप्त के प्रसिद्ध मन्त्री चाणक्य से महावंश परिचित है। अशोक ने जिन भिक्षुओं को धर्म प्रचारार्थ विदेश भेजा, उनकी ऐतिहासिकता का समर्थन पुरातत्वविभाग की खोजों से भी हुआ है। साँची के स्तूप सं० २ में जो धातु-डिबिया[2] मिली उसके ढक्कन पर 'सपुरिस

[1] The Ceylon chronicles would not suffer in comparison with the best of the chronicles, even though so considerably later in date, written in England or France. (*Buddhist India*, p. 274, 1903),

[2] वह डिबिया जिसमें बुद्ध अथवा अन्य महापुरुषों की हड्डियाँ रख कर उनपर स्तूप बना दिये जाते हैं।

मज्झिमस' लिखा है। महावंश के अनुसार मज्झिम स्थविर ही हिमालय में धर्म प्रचारार्थ गए थे। साँची से ही स्तूप सं० २ से मिली एक धातु-डिबिया पर 'सपुरिसम मोगलिपतस' लिखा है। निश्चय से यह वही मोग्गलीपुत्र तिष्य हैं जिन्होंने महावंश के अनुसार अशोक के समय तृतीय संगीति का सञ्चालन किया था। महायान और दूसरी परम्पराओं को लेकर अशोक के गुरु का नाम उपगुप्त बहुत प्रसिद्ध किया जा चुका है, जो कि द्वितीय सदी ईसापूर्व के अंकित इस लेख से बिल्कुल गलत साबित होता है, साथ ही यह महावंश तथा पालि-त्रिपिटक में प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री को अधिक प्रामाणिक भी सिद्ध करता है। बोधिवृक्ष के लङ्का जाने की कथा भी साँची-स्तूप की निचली और बीच की मेहराबों में चित्रित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महावंश में वर्णित बातों को दूसरे ग्रन्थों तथा पुरातत्त्व के खोज-पूर्ण परिणामों से काफी समर्थन प्राप्त हुआ है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि महावंश में जो कुछ है, वह सब आँख मूँद कर मान लेने की चीज है। महावंश के आरम्भिक परिच्छेदों में ही बुद्ध की लङ्का-यात्राओं का वर्णन है—एक का नहीं तीन तीन का। पहली बार बुद्धत्व के नौवें महीने में, दूसरी बार बुद्धत्व-प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में और तीसरी बार नौवें वर्ष में। निश्चय से यह बुद्ध की तीन तीन बार लङ्का जाने की कथा श्रद्धा-जनित इतिहास से ही सम्बन्ध रखता है। यद्यपि सारे त्रिपिटक में कहीं एक भी जगह भगवान् बुद्ध के लङ्का जाने का वर्णन नहीं है तो भी श्रद्धालुओं के लिए भगवान् बुद्ध के चरण-चिन्ह समन्तकूट पर्वत पर अङ्कित हैं और हजारों लाखों भक्त प्रति वर्ष उनकी पूजार्थ समन्तकूट पर्वत की खासी चढ़ाई चढ़ते हैं। उन चरण चिन्हों की यह विशेषता है कि विष्णु भक्तों के लिए वे विष्णु भगवान् के हैं और मुसलमान तथा ईसाई भाइयों के लिए आदम के। उस पर्वत-शिखर का नाम इसी लिए आदम की चोटी (आडम्सपीक) भी है।

इसी प्रकार विजयकुमार का ठीक उसी दिन लङ्का में उतरना, जिस दिन बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ, भी एक गढ़ी हुई सी ही बात मालूम होती है। इसमें असम्भव कुछ नहीं लेकिन लगता कुछ ऐसा ही है कि विजय के आगमन को महत्व देने की इच्छा का ही यह परिणाम है। विजय से देवानांप्रिय तक के राजाओं की कालानुक्रमणिका भी उतनी विश्वसनीय नहीं लगती।

जगह जगह पर जो अनेक अलौकिक बातें आती हैं वे भी इतिहास न होकर उनके रचयिताओं की मानस-कल्पना ही हैं।

इस लिए महावंश में जो लेखा है वह सारा का सारा तो किसी हालत में भी मानने की चीज नहीं, छलनी से छान कर ही ग्रहण करने की चीज है। सभी ऐतिहासिक अनुश्रुतियों का यही हाल है। तो भी सिंहल और भारत के अनेक राजाओं की कालानुक्रमणिका तथा विशेष रूप से सिंहल के धार्मिक इतिहास के लिए महावंश का बड़ा महत्व है। हमारी दृष्टि में महावंश का जो विशेष दोष है वह यह है कि उसमें राजाओं का वर्णन तो है और महात्माओं का भी है, लेकिन उस जनता का जो राजाओं को राजा तथा महात्माओं को महात्मा बनाती है, जो सच्चे इतिहास की सच्ची निर्मात्री है, उस जनता के साधारण जीवन का वर्णन नहीं है, बहुत ही कम है, न होने के बराबर है। वह युग ही ऐसा रहा है।

सिंहल या लङ्का का नाम लेते ही भारत में राम और रावण की कथा याद आती है। भारतीय इतिहास में जहाँ जहाँ राम और रावण की कथा के उल्लेख आते हैं उन सब को हम अभ्यासवश पूर्व-बुद्ध काल के मान लेते हैं। तमिळ साहित्य में विद्यमान इस प्रकार की कुछ सूचनाओं का उल्लेख भी एम० कृष्णस्वामी आएङ्गर ने अपने एक ग्रन्थ में किया है[1]। पाठक जानना चाहेंगे कि सिंहल-इतिहास में कहीं राम-रावण की कथा का भी उल्लेख है वा नहीं? उत्तर है—नहीं। सिंहल में विजय के पहुँचने से पहले यहाँ यक्षों की आबादी थी, जिन्हें परास्त कर विजय ने लङ्का में अपना राज्य स्थापित किया। लङ्का के इतिहास से रावण की लङ्का और उसके जीतने वाले राम का कोई समर्थन नहीं होता[2]। राम-रावण की कथा का शुद्ध ऐतिहासिक समर्थन करने वाली कोई सामग्री तो अभी भारतीय इतिहास की उपादान सामग्री में भी नहीं मिली है[3]।

लङ्का के इतिहास की पहली 'ऐतिहासिक घटना' विजय का लङ्का आगमन ही मानी जाती है। विजय जिस भारतीय प्रदेश से लङ्का पहुँचा, उसका

---

[1] *Some Contributions of South India to Indian Culture* (*p 69*)

[2] सिंहल में बहुत पीछे प्रसिद्ध हुये 'सीता एलिया' आदि कुछ जगहों के नाम राम-रावण के इतिहास के साक्षी समझे जाते हैं।

[3] जातक (खंड १) की मेरी भूमिका।

नाम लाळ है। यह लाळ कौनसा जनपद है? श्री ऐयङ्गर का कहना है, कि यदि महावंश की कथा में कुछ भी इतिहास स्वीकृत करना ही पड़े तो हमें लाळ को बङ्ग का ही एक प्रदेश राढ़ स्वीकृत करना होगा। और महावंश में जिन बन्दरगाहों के नाम आए हैं उन्हें कहीं न कहीं बङ्गाल की खाड़ी में ही ढूंढना होगा, अरब समुद्र के तट पर तो किसी को भी नहीं।

यह तर्क बिलकुल निस्सार है। भरुकच्छ (भड़ौच) और सुप्पारक (सोपारा) स्पष्ट तौर पर गुजरात (प्राचीनलाट) के बन्दर हैं। लाळ देश को विद्वानों ने लाट = गुजरात प्रदेश स्वीकृत किया है। लेकिन श्री ऐयङ्गर की आशा है कि दोनों को केवल इस लिए अस्वीकार करना होगा क्योंकि वह कालिङ्ग के किसी प्रदेश को वङ्ग और उसके पड़ोसी राढ़ देश को लाळ बनाने के विचार का समर्थन नहीं करते। वङ्ग के पड़ोस में लाळ ढूंढने की बजाए लाळ के पड़ोस में ही वङ्ग क्यों न ढूँढा जाए? और महावंश में लाळ के वङ्ग के पड़ोस में होने की कोई बात नहीं है। वङ्ग राजकन्या चूंकि लाळ गई इस लिये वह पड़ोस में हो रहा होगा, यह कोई तर्क नहीं। जातकों की कथाओं से साफ मालूम होता है, कि वणिक-सार्थ उस वक्त दूर दूर तक घूमा करते थे।

महावंश में जितनी भी घटनाओं का समय दिया गया है उन सब की गिनती बुद्ध के परिनिर्वाण से ही की गई है। विजय का लङ्का-आगमन बुद्ध के परिनिर्वाण के दिन माना ही जाता है। बुद्ध का परिनिर्वाण कब हुआ? सिंहल, स्याम, बर्मा की परम्परा के अनुसार बुद्ध का परिनिर्वाण ५४४ ई० पू० में हुआ। क्या यह ठीक है?

अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध के परिनिर्वाण के २१८ वर्ष बाद बताया जाता है और लिखा है कि यह राज्याभिषेक इस समय हुआ जब अशोक चार वर्ष तक राज्य कर चुका था। इस हिसाब से अशोक का राज्यारम्भ बुद्ध परिनिर्वाण के २१४ वर्ष बाद हुआ। बिन्दुसार ने २८ वर्ष राज्य किया। चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष। दोनों के राज्य काल को जोड़ कर २१४ में से घटाने से चन्द्रगुप्त का राज्यारम्भ बुद्ध-परिनिर्वाण के १६२ वर्ष बाद निश्चित होता है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में जो थोड़ी सी निश्चित तिथियां हैं, उनमें एक है चन्द्रगुप्त के राज्य की तिथि। सिकन्दर के आक्रमण की तिथि निश्चित है, उसी के आधार पर चन्द्रगुप्त का राज्य ३२१ ई० पू० में माना जाता है। ३२१ ई० पू० + १६२ वर्ष = ४८३ ई० पू० में बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ। बुद्ध

अस्सी वर्ष जिए। इस लिए भी रीज़ डेविड्स के मतानुसार उनकी जन्म-तिथि ४८३+८०=५६३ ई० पू० और निर्वाण-तिथि ४८३ ई० पू० सिद्ध हुई।

सिंहल, स्याम और बर्मा में आज कल जो परिनिर्वाण-तिथि मानी जाती है उसमें और इसमें ६० वर्षका अन्तर है। प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में और ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ तक सिंहल में ४८३ ई० पू० से गिने जाने वाले बुद्धाब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ, जिसकी गिनती ५४४ ई० पू० से की जाती है और वही बुद्धाब्द इस समय प्रयुक्त होता है[1]।

यदि हम ५४४ ई० पू० को बुद्धाब्द न मान कर ४८३ ई० पू० से ही बुद्धाब्द आरम्भ करें तो महावंश के अनुसार सिंहल के राजाओं की कालानुक्रमणिका इस प्रकार है :—

सं०	नाम	महावंश	राज्य-काल	बुद्धाब्द	ई० पू०
१	विजय	७-७४	१८	१-१८	४८३-४४५
२	पाण्डुवासुदेव	९-२५	३०	१९-६९	४४४-४१४
३	अभय	१०-५२	२०	६९-८९	४१४-३९४
४	पाण्डुकाभय	१०-१०६	७०	१०६-१७६	३७७-३०७
५	मुटसिव	११ ४	६०	१७६-२३६	३०७-२४७
६	देवानांपियतिस्स	२०-८	४०	२३६-२७६	२४७-२०७
७	उत्तिय	२०-५७	१०	२७६-२८६	२०७-१९७
८	महासिव	२१-१	१०	२८६-२९६	१९७-१८७
९	सूरतिस्स	२१-३	१०	२९६-३०६	१८७-१७७
१०	सेन	२१-११	२२	३०६-३२८	१७७-१५५
११	गुत्तिक				
१२	असेल	२१-१२	१०	३२८-३३८	१५५-१४५

[1] Indications are to be found that in earlier times, and indeed down to the beginning of the 10th century, an era persisted even in Ceylon, which was reckoned from 483. B. C. as the year of the Buddha's death. From the middle of the 11th century the new era took its rise, being reckoned from the year 544, and this is still in use. (एपिग्रैफ़िका ज़ैलनिका, पृ० १२१ और बाद के पृष्ठ)।

सं०	नाम	महावंश	राज्य-काल	बुद्धाब्द	ई० पू०
१३	एळार	२१-१४	४४	३३८-३८२	१४५-१०१
१४	दुट्ठगामणी	३२-३५,५७	२४	३८२-४०६	१०१-७७
१५	सद्धातिस्स	३३-४	१८	४०६-४२४	७७ ५९
१६	थूलथन	३३-१९	×	×	×
१७	लञ्जतिस्स	३३-२८	९	४२४-४३३	५९-५०
१८	खल्लाटनाग	३३-२९	६	४३३-४३९	५०-४४
१९	वट्टगामणी	३३ ३७	५	४३९	४४
२०	पांच दमिळ (२०-२४)	३३-५६,६१	१४	४३९-४५४	४४-२९
१९	वट्टगामणी	३३-१०२	१२	४५४ ४६६	२९-१७
२५	महाचूळी महातिस्स	३४-१	१४	४६६-४८०	१७-३
२६	चोर नाग	३४-११	१२	४८०-४९२	३-९ (ई०)
२७	तिस्स	३४-१५	३	४९२-४९५	९-१२
२८-३२	सिव-अनुल	३४-१८-२७	४	४९५-४९९	१२-१६
३३	कुटकण्णतिस्स	३४-३०	२२	४९९-५२१	१६-३८
३४	भातिकाभय	३४-३७	२८	५२१-५४९	३८-६६
३५	महादाठिकमहानाग	३४-६९	१२	५४९-५६१	६६-७८
३६	आमण्डगामणी	३५-१	९	५६१-५७१	७८-८८
३७	कणिरजानुतिस्स	३५-९	३	५७१-५७४	८८-९१
३८	चूलाभय	३५-१२	१	५७४-५७५	९१-९२
३९	सीवली	३५-१४	×	५७५	९२
४०	इळनाग	३५-१५	६	५७८-५८४	९५-१०१
४१	चण्डमुखसिव	३५-४६	८	५८४-५९३	१०१-११०
४२	यसलालकतिस्स	३५-५०	७	५९३-६०१	११०-११८
४३	सुभराज	३५-५६	६	६०१-६०७	११८-१२४
४४	वसभ	३५-१००	४४	६०७-६५१	१२४-१६८
४५	वङ्कनासिक तिस्स	३५-११२	३	६५१-६५४	१६८-१७१
४६	गजबाहुकगामणी	३५-११५	२२	६५४-६७६	१७१-१९३
४७	महल्लनाग	३५- ,२३	६	६७६-६८२	१९३-१९९
४८	भातिक तिस्स	३६-१	३१	६८२-७०६	१९९-२२३
४९	कनिट्ठतिस्स	३६-६	१८	७०६-७२४	२२३-२४१

सं०	नाम	महावंश	राज्यकाल	बुद्धाब्द	ई० पू०
५०	खुल्लनाग	३६-१८	२	७२४-७२६	२४१-२४३
५१	कुञ्चनाग	३६ १९	१	७२६-७२७	२४३-२४४
५२	श्रीनाग (१)	३६-२१	१९	७२७-७४६	२४४-२६३
५३	वोहारिक तिस्स	३६-२७	२२	७४६-७६८	२६३-२८५
५४	अभयनाग	३६-५१	८	७६८-७७६	२८५-२९३
५५	श्रीनाग (२)	३६-५४	२	७७६-७७८	२९३-२९५
५६	विजय कुमार	३६-५७	१	७७८-७७९	२९५-२९६
५७	सङ्घतिस्स	३६-६४	४	७७९-७८३	२९६-३००
५८	सङ्घबोधि	३६-७३	२	७८३-७८५	३०२-३०२
५९	मोठकाभय	३६-९८	१३	७८५-७९८	३०२-३१५
६०	जेट्ठतिस्स	३६-१३२	१०	७९८-८०८	३१५-३२५
६१	महासेन	३७-१	२७	८०८-८३५	३-२५३५२

और बिम्बसार से अशोक तक के राजाओं का महावंश का लेखा इस प्रकार है :—

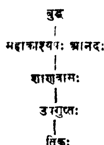
नाम	महावंश	राज्यकाल ई० पू०
बिम्बसार	२-२९-३०	५२
अजातशत्रु	२-३१-३२	३२
उदय भद्द	४-१	१६
अनुरुद्ध } मुण्ड }	४-२-३	८
नागदासक	४-४	२४
सुसुनाग	४-६	१८
कालासोक	४-७	२८
कालासोक के दस पुत्र	५-१४	२२
नवनन्द	५-१५	२२
चन्दगुत्त	५-१६-१८	२४
बिन्दुसार	५-१८	२८
असोक	२०-१-३	३७

ऊपर कह आए हैं कि महावंश का नाम महावंश इसी लिए है कि उसमें 'बड़े बड़ों' का प्रकाशन है। ये 'बड़े बड़े' केवल राजा महाराजा ही नहीं रहे

है। इन 'बड़े वड़ों' में बुद्ध के शिष्य उपालि महास्थविर से अशोक-पुत्र महेन्द्र महास्थविर तक की आचार्य्य-परम्परा भी शामिल है। इस आचार्य्य परम्परा की ऐतिहासिक वंशानुक्रमणिका का महत्व इतिहास और धर्म दोनों की दृष्टि से विशेष है। महावंश में जो आचार्य्य-परम्परा है वह इस प्रकार है :—

नाम	ई० पू०	बुद्धाब्द	
उपालि	५२७—४५३	१	से
दासक	४६७—४०३	३०	से
सोणक	४२३—३५६	६४	से
सिग्गव	३८३—३०७	१२४	से
मोग्गलिपुत्त	३१६—२३६	१७६	से
महिन्द	२५६—१९९		

अशोकावदान के अनुसार मथुरा के सर्वास्तिवादियों की आचार्य्य-परम्परा तो इस प्रकार है[1] :—



प्रथम संगीति

बौद्ध-संगीतियों (सम्मेलनों) के बारे में भी महावंश में पर्य्याप्त सामग्री है, यद्यपि वह सर्वथा मौलिक नहीं कही जा सकती। काल की दृष्टि से विनय-पिटक के चुल्लवग्ग में जो प्रथम और द्वितीय संगीति का वर्णन है वह अधिक प्राचीन है और अधिक महत्वपूर्ण भी। महावंश और उसके बाद समन्त-पासादिका में तीनों संगीतियों का वर्णन है। महाबोधिवंश और सासनवंश में संगीतियों का वर्णन है और सिंहल भाषा के निकाय-संग्रह में भी।

[1] अभिधर्मकोश, भूमिका पृ० च (राहुल सांकृत्यायन)

चुल्लवग्ग के प्रथम संगीति के वर्णन में निम्नलिखित बातें हैं :—

१—बुद्ध के प्रमुख शिष्य महाकाश्यप को पावा से कुसीनगर आते समय बुद्ध के परिनिर्वाण का समाचार मिलता है।

२—सुभद्र अन्य भिक्षुओं के साथ दुखी होने की बजाए कहता है—अच्छा हुआ ! महाश्रमण नहीं रहा। अब जो चाहेंगे, करेंगे।

३—महाकाश्यप धर्म-विनय के संगायन के लिए संगीति (सम्मेलन) कराते हैं। उसमें के पांच सौ भिक्षुओं में एक जगह आनन्द के लिए रखी गई, यद्यपि वह अभी अर्हत् नहीं हुये थे।

४—यह संगीति राजगृह में होती है।

प्रथम संगीति बुद्ध-परिनिर्वाण के चौथे महीने में हुई समझी जाती है। यदि बुद्ध का परिनिर्वाण वैशाख-पूर्णिमा को माना जाए तो यह संगीति श्रावण मास में हुई। बुद्धघोष और महावंश दोनों की यही मानना है। महावंश का कहना है कि संगीति आषाढ मास में हुई, लेकिन साथ ही उसका यह भी कहना है कि प्रथम मास तो तैय्यारी में ही लग गया।

विनय और धर्म के साथ अभिधम्मपिटक का भी पारायण इसी संगीति में हुआ, यह जो समन्त पासादिका का कहना है, यह तो स्पष्ट रूप से गलत है।

महावस्तु में जो प्रथम संगीति का वर्णन है, उसमें भी महाकाश्यप को ही प्रथम संगीति का पुरस्कर्ता माना गया है, और संगीति का स्थान भी राजगृह है तथा भिक्षुओं की संख्या भी पाँच सौ ही है।

सर्वास्तिवादियों के विनय पिटक में भी प्रथम संगीति का वर्णन है। इसके अनुसार त्रिपिटक का रचनाक्रम इस प्रकार हैं :—(१) धर्म्म, आनन्द द्वारा (२) विनय, उपालि द्वारा (३) मातृका (अभिधर्म) महाकाश्यप द्वारा।

फाहियान् तथा ह्वेनसाँग ने भी प्रथम संगीति का वर्णन किया है।

द्वितीय संगीति

चुल्लवग्ग के द्वितीय संगीति के वर्णन में और महावंश के वर्णन में पूरा मेल है। यह संगीति बुद्ध परिनिर्वाण के १०० वर्ष बाद हुई बताई जाती है और इसका मुख्य कारण कुछ परिवर्तन-वादी भिक्षुओं के दस प्रस्ताव कहे जाते हैं। यह परिवर्तन-वादी भिक्षु वैशाली के वज्जी-भिक्षु थे। इस संगीति में सम्मिलित होने वाले भिक्षुओं की संख्या ७०० थी। इसी लिए यह संगीति सप्तशतिका कहलाती है।

इस संगीति का समय कालाशोक के राज्य का ग्यारहवां वर्ष और स्थान वालिकाराम प्रायः सर्वसम्मत है।

फाहियान् तथा ह्युनसांग ने इस द्वितीय संगीति का भी वर्णन किया है।

तृतीय संगीति

प्रथम तथा द्वितीय संगीति का उल्लेख महायान के ग्रन्थों में भी मिलता है किन्तु तृतीय संगीति का वर्णन चुल्लवग्ग में भी नहीं मिलता। सब से पहले दीपवंस में, फिर समन्तपासादिका में और उसके बाद महावंस में ही इसका उल्लेख मिलता है। तीनों वर्णनों में कुछ भेद नहीं। मुख्य बातें इतनी ही हैं:—

१—संगीति के प्रधान मोग्गलिपुत्त तिस्स थे।

२—संगीति का स्थान पाटलिपुत्र था, जो कुसुमपुर भी कहलाता है।

३—महावंश के अनुसार (म० ८-२८०) यह संगीति अशोक के सत्रहवें वर्ष में हुई और नौ महीने तक होती रही।

इन तीनों संगीतियों के जो भिन्न भिन्न उल्लेख पालि वाङ्मय के साथ तिब्बत और चीन के ग्रन्थों में विद्यमान हैं उनमें किस वर्णन में कितनी सचाई है, यह रोचक विषय है और इस पर काफी साहित्य भी है। हम अनुवादक का विनम्र कर्तव्य निभा सकने में ही सतोष मानते हैं।

दीपवंश तथा महावंश के अतिरिक्त कई दूसरे ग्रन्थ भी हैं जिनमें सिंहल इतिहास को कुछ न कुछ सामग्री है। सब से पुरानी तथा मुख्य तो सिंहल अट्ठकथा ही है। उसी पर समन्तपासादिका और जातक की निदान-कथा ही नहीं, दीपवंश और महावंश भी निर्भर करते हैं। बाद के जितने ग्रन्थ हैं, वे या तो इन्हीं चार ग्रन्थों पर आश्रित हैं या परस्पर एक दूसरे पर।

महावंस पर जो पालि टीका है, उसके रचयिता का नाम भी महानाम है[1]। किसी किसी का कहना है कि महावंश का रचयिता और टीकाकार एक ही हैं। पर यह मत मान्य नहीं हो सकता। महावंश टीकाकार ने अपनी टीका को वंसत्थप्पकासिनी नाम दिया है। इसकी रचना सातवीं आठवीं शताब्दी में हुई होगी।

और स्वयं महावंश की? इसकी रचना महावंश टीका से एक दो

---

[1] *Pali Chronicles* by B. C. Law p. 533.

शताब्दी पहले। धातुसेन नरेश का समय छठी शताब्दी है, उसी के आसपास इस काव्य की रचना होनी चाहिए।

सिंहल-भारत के इतिहास की मूल उपादान सामग्री का भण्डार होने की दृष्टि से महावंश का अध्ययन महत्वपूर्ण है ही। पालि का एक महाकाव्य होने की दृष्टि से भी इसका अध्ययन महत्वपूर्ण है। लेकिन एक दूसरी दृष्टि से भी इसका अध्ययन महत्वपूर्ण है—महावंश बौद्धधर्म के पूज्य-व्यक्तियों (= भिक्षुओं) का मानस चित्र है। इस में हम देख सकते हैं कि उन्हों ने बौद्धधर्म की रक्षा तो अवश्य की है लेकिन कैसे बौद्धधर्म की और किस प्रकार?

× × × ×

आज से ३४ वर्ष पूर्व श्रीमान् विल्हेल्म गैगर ने महावंश का सम्पादन किया था, बड़े ही परिश्रम और सावधानी के साथ। उसी रोमन-अक्षरों में सुसम्पादित महावंश से मैंने यह हिन्दी अनुवाद करने का प्रयत्न किया है। सन् १८३७ में श्रीयुत टर्नर ने महावंश का एक अंग्रेजी अनुवाद किया था। १८८९ में उसका पुनर्मुद्रण हुआ। श्रीयुत गैगर ने अपने महावंश का एक जर्मन अनुवाद भी प्रकाशित किया था। १९०८ में सिंहल सरकार ने टर्नर के अनुवाद का एक नया संस्करण प्रकाशित करना चाहा। श्रीमती बोड द्वारा गैगर के जर्मन अनुवाद का अंग्रेजी अनुवाद हुआ, जिसे स्वयं श्रीमान् गैगर ने दोहरा दिया। इस प्रकार १९०८ में फिर एक बार महावंश का अंग्रेजी अनुवाद छपा। इस अनुवाद और पहले के अनुवादों को प्रकाशित करने का सारा खर्च सिंहल सरकार ने ही उठाया।

श्रीयुत गैगर ने १९०५ में ही 'दीपवंश तथा महावंश' शीर्षक से अपने गम्भीर अध्ययन का परिणाम प्रकाशित कराया था, जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी १९०८ में छपा। श्रीयुत कुमारस्वामी इसके अनुवादक थे। 'दीपवंश तथा महावंश' के बारे में यह अध्ययन कुछ कहने को शेष नहीं रहने देता।

टर्नर के अंग्रेजी अनुवाद के लगभग सौ वर्षों बाद श्रद्धेय राहुल जी की प्रेरणा से मैंने इस हिन्दी अनुवाद के कार्य्य में हाथ लगाया था। १९२८ या १९२९ में आरम्भ होकर यह शायद उसी वर्ष समाप्त हो गया था। राहुल जी ने न केवल दोहरा दिया, बल्कि अपने विस्तृत अध्ययन के परिणाम स्वरूप जगह जगह पर अनेक पाद-टिप्पणियां भी जड़ दी थीं।

उन्हीं की प्रेरणा से मैं जिस कार्य्य में लगा था, उसके लिए उन्हें ही क्या धन्यवाद दूँ।

अनुवाद की पाण्डु-लिपि नागरी प्रचारिणी सभा को भेजी गई। प्रकाशनार्थ स्वीकृत भी हुई। किन्तु लगभग १० वर्ष तक प्रकाशित न हो सकी। नागरी प्रचारिणी सभा के पास पड़ी रही। यही इसके इतनी देर बाद प्रकाशित होने का मुख्य कारण है।

अब इसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित होते देख मुझे स्वाभाविक प्रसन्नता हो रही है। इस मुद्रण-युग में ग्रन्थ का लिखे जाकर प्रकाशित न हो सकना कभी कभी ऐसा ही लगता है जैसे बालक की भ्रूणहत्या हो गई हो। सम्मेलन की कृपा से महावंश उस दुर्गति से बच गया।

महावंश के अनुवाद में और विशेष रूप से उसका 'परिचय' लिखने में मुझे जिन ग्रन्थों से सहायता मिली उसमें महावंश की पालि टीका तथा श्रीमान् गैगर कृत महावंश का अंग्रेजी अनुवाद मुख्य हैं। 'दीपवंश तथा महावंश' का उल्लेख ऊपर कर ही चुका हूँ। इन राजनीतिक आँधी पानी के दिनों में महावंश अनुवाद के उपयुक्त उसकी भूमिका न लिखी जा सकी। 'परिचय' से ही सतोष मानना पड़ा। इसके लिए जो थोड़ी सामग्री जुटा सका एतदर्थ मैं श्री विमलानन्द एम० ए० का कृतज्ञ हूँ। आप सिंहल देशीय हैं और इस समय महाबोधी सभा के सहायक-मन्त्री हैं। मूलगन्धकुटी विहार पुस्तकालय (सारनाथ) के पुस्तकाध्यक्ष श्रमण बुद्ध प्रियजी की भी सहायता अनल्प है।

पुस्तक प्रेस में देने से पहले एक बार फिर दोहरा ली गई थी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) के श्री राजेश्वर जी ने इसमें बड़ी मदद की।

और पुस्तक की छपाई के समय प्रूफ देखने में श्री सुशीलकुमार ने जो मदद दी, वह भी कम नहीं। श्री सुशीलकुमार से आगे भी बहुत आशा है। पुस्तक के ऊपर का चित्र दुष्टग्रामणी का है। यह आ० महानाम के सौजन्य से प्राप्त हुआ है और श्री फणींद्र मुकर्जी की तूलिका का परिणाम है।

सत्यनारायण कुटीर — **आनन्द कौसल्यायन**

ति० २३-३-४२

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

प्रथम परिच्छेद

बुद्ध का लंका आगम

शुद्ध, पवित्र वंशोत्पन्न भगवान् बुद्ध को नमस्कार करके नाना प्रकरण। से परिपूर्ण महावंश को वर्णन करता हूं ॥१॥ पुराने लोगों ने भी इस का वर्णन किया है। उस में कहीं अति विस्तार, कहीं अति संक्षेप और पुनरुक्ति की अधिकता है ॥२॥ उन तमाम दोषों से मुक्त, समझने और स्मरण रखने में सरल, सुनने पर प्रसन्नता और वैराग्य के देने वाले, परम्परागत, प्रसाद-जनक स्थलों पर प्रसाद और वैराग्य जनक स्थलों पर वैराग्य उत्पन्न करने वाले इस (महावंश) को सुनो ॥३-४॥

पूर्व काल में हमारे भगवान् बुद्ध ने (बोधिसत्व अवस्था में) दीपङ्कर बुद्ध को देखकर संसार को दुःख से छुड़ाने के लिये बुद्धत्व प्राप्त करने का संकल्प किया ॥५॥

इस प्रकार (क्रमशः गौतम ने) कौण्डिन्य मङ्गल, सुमन, रेवत, सोभित, अनोमदर्शी, पद्म नारद, पद्मोत्तर, सुमेध, सुजात, प्रियदर्शी, अर्थदर्शी, धर्म्मदर्शी, सिद्धार्थ, तिष्य, पुष्य, विपश्यी, शिखी, विश्वभू, ककुसन्ध, कोणागमन और काश्यप इन चौबीस बुद्धों की आराधना की। और उन्होंने भविष्यद्वाणी की कि तुम बुद्ध होगे ॥६-१०॥ और सारी पारमिताओं[1] को पूर्ण करके बुद्धत्व को प्राप्त हो, उत्तम गौतम बुद्ध ने प्राणियों को दुःख से छुड़ाया ॥११॥

मगध[2] देश में उरुवेला[3] मे बोधि-वृक्ष के नीचे वैशाखपूर्णिमा के दिन महामुनि ने उत्तम बुद्ध-ज्ञान प्राप्त किया ॥१२॥ इस के बाद

---

[1]पारमितायें १० हैं:—१ दान २ शील ३ नैष्क्रम्य ४ प्रज्ञा ५ वीर्य ६ क्षान्ति ७ सत्य ८ अधिष्ठान ९ मैत्री १० उपेक्षा।

[2]बिहार के पटना और गया जिले।

[3]गया जिले में स्थित बोधगया व बुद्धगया।

वह जितेन्द्रिय, उस परम् मुक्ति-सुख को प्राप्त कर, उस की मधुरता को अनुभव करते तथा प्रकट करते हुये सात सप्ताह तक वहां ठहरे ॥१३॥

तत्पश्चात् वाराणसी (बनारस) पहुंच कर वहां धर्मचक्र चलाया और वर्षा काल में वहीं ठहर कर साठ (शिष्यों) को अर्हत[1] किया ॥१४॥ फिर उन भिक्षुओं को धम-देशना (धर्म प्रचार) के लिये विदा करके, तीस (परस्पर) सहायक भद्रवर्गियों को सन्मार्ग पर आरूढ़ किया ॥१५॥ और हेमन्त ऋतु में कश्यपादि एक हजार जटिलों को सन्मार्ग पर लाने के लिये, उनके (ज्ञान को) परिपक्व करते हुये उरुवेला में ठहरे ॥१६॥

उरुवेल-काश्यप द्वारा किए गए महायज्ञ (के) उपस्थित होने पर उन्होंने देखा कि उरुवेल-काश्यप (उसमें) मेरा आना पसन्द नहीं करता ॥१७॥ इसलिए (काम रूप) शत्रु को मर्दन करने वाले (भगवान्) उत्तर कुरु से भिक्षा लेकर, मानसरोवर (अनोतत्त) पर भोजन करके, बुद्धत्व प्राप्त करने के नौवें महीने में, पौष पूर्णिमा के दिन सायङ्काल के समय, लङ्काद्वीप को पावन करने के लिये लङ्काद्वीप में पधारे ॥१८-१९॥

भगवान् जानते थे कि लङ्का को धर्म के प्रकाश का स्थान बनाना और यक्षों से परिपूर्ण लङ्का से यक्षों को निर्वासित करना है ॥२०॥ (और यह देखकर) कि लङ्का के मध्य में, गङ्गा (महावली गङ्गा) के मनोहर तट पर, तीन योजन लम्बे और एक योजन चौड़े, यक्षों के समागम-स्थान, सुन्दर महा-नागवन् उद्यान में तमाम लङ्कानिवासी यक्षों का महा-सम्मेलन है, भगवान् यक्षों के इस महा-सम्मेलन में पहुंचे; और उस सम्मेलन में जहा आज महियंगण[2] स्तूप है—उन के सिरके ऊपर आकाश में ठहर कर, उन को वर्षा, वायु, अन्धकार आदि से व्याकुल किया ॥२१-२४॥

इस से भयभीत हुये यक्षों ने निर्भय जिन से, अभय-दान की याचना की। अभयदाता भगवान् ने भयभीत यक्षों से कहा :—"हे यक्षो! मै तुम्हारे भय और दुःख को दूर करता हूं। तुम सब मुझे यहा बैठने के लिये स्थान दो" ॥२५-२६॥ यक्षों ने कहा :—"हे महानुभाव! हम सब यह सारा द्वीप आप को देते हैं। आप हमें अभय दान दें" ॥२७॥

---

[1] शब्दार्थ 'योग्य, अधिकारी'। जन्मरण के बन्धन से मुक्त।

[2] लोकानुश्रुति के अनुसार महावैलि (महावालुका) गङ्गा के दक्षिण तट पर स्थित बिन्तेन स्तूप।

फिर भगवान् उन यक्षों के भय, शीत और अन्धकार को दूर करके, उनकी दी हुई भूमि पर चर्म-खण्ड बिछा कर, उस पर विराजमान हुए ॥२८॥ आग की तरह दहकते हुये उस चर्म-खण्ड को बिछाया। उस चर्म-खण्ड के चारों ओर चारों सिरों पर गर्मी से व्याकुल और भयभीत यक्ष खड़े हुए ॥२९॥ तब भगवान् उन को गिरि-द्वीप[1] नामक रमणीय द्वीप में ले गये, और वहां उनका प्रवेश कराकर उन्हें यथा-स्थान स्थापित किया ॥३०॥

(भगवान्) नाथ ने चर्म-खण्ड समेट लिया। उसी समय देवता आ गये। उस सम्मेलन में शास्ता ने उन्हें धर्मोपदेश दिया ॥३१॥ करोड़ों प्राणियों को धर्म-दृष्टि प्राप्त हुई और अगणित प्राणियों ने शरण तथा शील[2] को ग्रहण किया ॥३२॥

स्रोतापत्तिफल[3] को प्राप्त करके सुमनकूट[4] पर्वत के महासुमन देवेन्द्र ने पूज्य भगवान् से पूजने के लिये कोई वस्तु मांगी ॥३३॥ प्राणियों का हित करने वाले, निर्मल, नीलवर्ण केशवाले भगवान् ने, सिर पर हाथ फेर कर हथेली भर केश उसको दिये ॥३४॥ उसने केशों को सोने की सुन्दर चँगेरी में लेकर, शास्ता (भगवान्) के बैठने के स्थान पर, नाना रत्नों से सजा, सात रत्न रख (वहां) केशों को स्थापित कर, नीलम के स्तूप से ढाक दिया, और नमस्कार किया ॥३५-३६॥

सम्बुद्ध (भगवान्) के परिनिर्वाण प्राप्त करने के बाद, सारिपुत्र के शिष्य स्थविर सर्वभू चिता से भगवान् की हसली (गले के नीचे की हड्डी)

---

[1]आग्नेय दिशा में कोई काल्पनिक द्वीप।

[2]जन साधारण के बुद्धधर्म ग्रहण से तात्पर्य है। क्योंकि जो बुद्धधर्म ग्रहण करते हैं वे बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाते हैं; और पांच शील पालने की प्रतिज्ञा करते हैं। पांच शील यह हैं:—

१ हिंसा का त्याग, २ चोरी का त्याग, ३ असंयम (काममिथ्याचार) का त्याग, ४ असत्य का त्याग, ५ नशीले पदार्थों का त्याग।

[3]आठ आर्य-पुद्गलों (पुरुषों) में द्वितीय आर्य-पुद्गल के पद को पाली में स्रोतापत्ति फल कहते हैं। जिसका अर्थ है कि वह निर्वाण-गामी स्रोत (धार) में पूर्णतया आ गया; उसका अधिक से अधिक सात जन्म में निर्वाण-प्राप्त होना निश्चित है।

[4]श्रीपाद, आदम की चोटी (Adam's Peak)।

लेकर ऋद्धि-बल से यहाँ आये ॥३७॥ और भगवान् के गले की उस अस्थि को, भिक्षुओं सहित, उसी चैत्य मे रख, उस पर पीतवर्ण पत्थर से आच्छादित बारह हाथ ऊचा स्तूप बनवाकर, वह महाऋद्धिमान् चले गये ॥३८-३९॥ देवानांप्रिय तिष्य राजा के भतीजे ऊर्ध्वचूळाभय ने उस अद्भुत चैत्य को देखकर, उसे आच्छादित कर तीस हाथ ऊँचा बनवाया ॥४०॥ महाराज दुष्टग्रामणी ने दमिळों को मर्दन कर, उस चैत्य को ढक कर एक तीस हाथ ऊचा चैत्य बनवाया। इस प्रकार इस महियंगण स्तूप की स्थापना हुई ।४१-४२॥

इस प्रकार इस द्वीप को मनुष्यों के रहने योग्य करके धीर और बडे पराक्रमी भगवान् उरुवेला को गये ॥४३॥

महियगणागमन समाप्त

महाकारुणिक, सब लोगों के हित में रत, भगवान् बुद्धत्व प्राप्ति के पाचवे वर्ष में जेतवन[1] मे रहते थे ॥४४॥ उस समय महोदर और चूळोदर नाम के मामा भानजा दो नागो को मणिमय सिंहासन के लिये दल-बल सहित सग्राम में उपस्थित होते देख, चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की अमावस्या को भगवान् प्रातःकाल ही श्रेष्ठ चीवर और पात्र लेकर नागों पर अनुकम्पा करने के लिये नागद्वीप[2] पहुँचे ॥४५-४७॥

महाशक्तिशाली नागराज महोदर भी तब साढे दससौ योजन विस्तार के समुद्र मे नागभवन मे रहता था। उसकी छोटी बहिन कणवर्धमान-पर्वत के नागराजा को ब्याही गई। चूळोदर उसका लड़का था ॥४८-४९॥ उस का नाना, उसकी मा को सुन्दर मणिमय सिंहासन देकर मर गया। उसी के लिये मामा के साथ भानजे का संग्राम उपस्थित हुआ। वह पर्वतनिवासी नाग भी महाऋद्धिमान् थे। ॥५०-५१॥

समृद्धिसुमन देवता जेतवनस्थित राजायतन (वृक्ष) नामक अपने सुन्दर भवन को, भगवान् के सिर पर छत्र की तरह धारण किये हुये, बुद्ध को अनुमति से, उस अपने पूर्व-निवास के स्थान पर आया ॥५२-५३॥ यह देवता अपने पूर्व

---

[1]कोसल देश में श्रावस्ती के समीप अनाथपिण्डक द्वारा भगवान् को समर्पित किया गया महान् बिहार और बाग़। यह स्थान इस समय बलरामपुर रियासत की सीमा में है। वर्तमान् सहेट-महेट, जिला गोंडा (यू० पी०)।

[2]लंका का उत्तरपश्चिमीय भाग।

जन्म में इसी नागद्वीप में मनुष्य था। उसने, राजायतन के नीचे बैठकर प्रत्येक बुद्धों[1] को भोजन करते हुये देख, चित्त में प्रसन्न हो, पात्र शुद्ध करने के लिये शाखायें दीं। उसी (पुण्य कर्म के प्रताप) से वह मनोरम जेतवन की पिछली ड्योढी के पास वाले, वृक्ष पर पैदा हुआ। (चहारदीवारी बनने पर) पीछे वह बाहर हो गया। ॥५४-५६॥ इस में उस देवता का तथा इस स्थान का हित देखकर देवों के देव (भगवान्) वृक्ष सहित उस देवता को यहा लाये ॥५७॥

अन्धकार-विनाशक नायक (भगवान्) ने वहा संग्राम के मध्य में, आकाश मे बैठे हुये, उन नागों के लिये भीषण अन्धकार कर दिया ॥५८॥ भगवान् ने उन्हें भयभीत देख आश्वासन देते हुये प्रकाश दिखाया। वे सुगत को देखकर सन्तुष्ट हुये और उन्होंने शास्ता के चरणों में प्रणाम किया। भगवान् ने उनका मेल रखने का उपदेश दिया। और उन दोनों ने (चरणों में) गिर कर वह सिंहासन भगवान् को अर्पण किया ॥५९-६०॥ आकाश से पृथ्वी पर उतर कर वहा आसन पर बैठे हुये शास्ता ने, उस नाग राज के दिव्य अन्न-पान से सतृप्त होकर, जल और स्थल में रहने वाले उन अस्सी करोड़ नागों को शरण और शील[2] मे प्रतिष्ठित किया ॥६१-६२॥

महोदर नाग का मामा कल्याणी[3] का मणि-अक्खिक नागराज, युद्ध करने के लिये वहा गया था ॥ ६३ ॥ वह बुद्ध के प्रथम आगमन के समय सद्धर्मोपदेश को सुन कर शरण-शील में स्थित हुआ, और (उसने) तथागत (बुद्ध) से याचना की:—

"हे नाथ! आप ने हम पर यह बड़ी अनुकम्पा की, आप के न आने से हम सब भस्मीभूत हो जाते ॥ ६४-६५ ॥ हे दयामय! हे निर्मम! मुझ पर आप की यह विशेष अनुकम्पा होवे। (कि आप) अपने पुनरागमन से मेरे निवास स्थान को पवित्र करें ॥६६॥

---

[1] निर्वाणप्राप्तों की तीन श्रेणियां होती हैं:— सम्यक् सम्बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और अर्हत्। इन में अर्हत् किसी सम्यक् सम्बुद्ध के आविष्कृत मार्ग पर चलने से जीवन्मुक्त होते हैं। प्रत्येकबुद्ध अर्हत् से ऊपर की श्रेणी के हैं। वे मार्ग के आविष्कारक होते हैं किन्तु उपदेष्टा नहीं होते। सम्यक् सम्बुद्ध मार्ग के आविष्कारक और उपदेष्टा दोनों होते हैं।

[2] १-३२ द्रष्टव्य।

[3] इस समय कल्याणी कोलम्बो के समीप समुद्र में गिरने वाली एक नदी का नाम है; उसके पास का स्थान।

भगवान् ने मौनद्वारा वहा आना स्वीकार करके, वहा ही राजायतन चैत्य स्थापित किया ॥६७॥ लोकनाथ ने वह राजायतन (वृक्ष) और वह बहुमूल्य सिंहासन भी उन नागराजों को पूजने के लिये दे कर कहा:—"हे तात ! तुम मेरे इस परिभोगचैत्य[१] को नमस्कार करो । यह तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा" ॥६८-६९॥ सब लोगों पर दया रखने वाले, सुगत (बुद्ध) नागों को इस प्रकार उपदेश देकर जेतवन[२] को गये ॥७०॥

नागद्वीप आगमन समाप्त

फिर तीसरे वर्ष नाग राज मणि-अक्खिक ने सम्बुद्ध के पास जाकर उन्हें सघ के सहित निमत्रित किया ॥७१॥ बोधि के आठवें वर्ष में जेतवन मे रहते हुये भगवान् पांच सौ भिक्षुओं के साथ दूसरे दिन भोजन का समय सूचित किये जाने पर रमणीय वैशाख पूर्णिमा को सघाटी[३] और पात्र धारण करके मणिअक्खिक के निवास स्थान कल्याणी प्रदेश को गये ॥७२-७४॥ जहा पीछे कल्याणी चैत्य बनाया गया, उस स्थान पर रत्नों से सजाये गये मण्डप मे बहुमूल्य सिंहासन पर सघ सहित बैठे ॥७५॥ परिजनों सहित प्रसन्नचित्त नागराज ने सघ समेत धर्मराज भगवान् (बुद्ध) को दिव्य खाद्य भोज्य से सतृप्त किया ॥७६॥

ससार पर द ा करने वाले शास्ता, धर्म का उपदेश देकर वहां से सुमन कूट[४] पर्वत पर गये, और (वहा) अपना चरण चिन्ह[५] अङ्कित किया ॥७७॥ उस पर्वत की जड़ में सघ सहित (बुद्ध) दिन भर विश्राम करके दीर्घवापी पहुंचे ॥७८॥ उस स्थान का गौरव बढाने के लिये, जहा बाद में चैत्य बना सघ सहित भगवान् ने उस स्थान पर बैठ कर समाधि लगाई ॥७९॥ कर्तव्य और अकर्तव्य के मर्म को जानने वाले महामुनि

---

[१]मेरे द्वारा उपयोग किये गये ।

[२]१-४४ द्रष्टव्य ।

[३]भिक्षुओं के तीन चीवरों (वस्त्रों) में उपर का दोहरा चीवर ।

[४]१-३३ द्रष्टव्य ।

[५]सुमनकूट पर्वत पर अङ्कित दो चरण-चिन्ह श्रीपाद के नाम से प्रसिद्ध हैं और उन की पूजा होती है ।

(बुद्ध) उस स्थान से उठ कर, पीछे जहा महामेघवनाराम[1] हुआ, उस स्थान पर आये ॥८०॥ वहा शिष्यों सहित बैठ कर, जहा महाबोधि है उस स्थान पर समाधिस्थ हुये। और फिर वहा जहा कि महास्तूप[2] है जाकर वैसे ही किया ॥८१॥ थूपाराम[3] में भी पीछे जहा स्तूप स्थित हुआ उस स्थान पर पूर्ववत् समाधि लगाई और वहा से उठ कर शिलाचैत्य[4] स्थान को गये ॥८२॥ साथ आये हुये देवताओं को उपदेश देकर फिर त्रिकालज्ञ गणनायक (भगवान्) जेतवन को गये ॥८३॥

अगाध बुद्धि, भविष्य के जानने वाले नाथ, ससार के प्रदीप दयामय (बुद्ध), उस काल मे लंका निवासी असुर और नागों के कल्याण को देखते हुए लका के हित के लिये, इस प्रकार तीन बार इस सुन्दर द्वीप में आये। उन के आगमन मे यह द्वीप सुजनों से आद्रित, धर्मद्वीप करके प्रख्यात हुआ ॥८४॥

कल्याणी आगमन समाप्त

सुजनो के प्रमाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'तथागता गमन' नामक प्रथम परिच्छेद।

---

[1] महामेघवनाराम अनुराधपुर (राजधानी) के पूर्व द्वार पर था। यह आराम (विहार) राजा देवानांप्रियतिष्य द्वारा संघ को समर्पित किया गया था।

[2] अनुराधपुर का रुवनवेलि चैत्य।

[3] वर्तमान थूपाराम (अनुराधपुर ।

[4] वर्तमान शिलाचैत्य (अनुराधपुर)।

द्वितीय परिच्छेद

महासम्मत वंश

महामुनि (बुद्ध) महासम्मत राजा के वंशज थे। इस कल्प के आदि में महासम्मत राजा, रोज, वररोज, कल्याणक (१), कल्याणक (२), उपोसथ, मन्धाता, चरक और उपचर, चेतिय, मुचल, महामुचल मुचलिन्द, सागर, सागरदेव, भरत, अङ्गीरस, रुचि, सुरुचि, प्रताप, महा-प्रताप, प्रणाद (१), प्रणाद (२), सुदर्शन (१), सुदर्शन (२), नेरु (१), नेरु (२), अर्चिमान और उस के पुत्र पौत्र, असंख्य आयु वाले यह अट्ठाइस राजा कुशावती,[1] राजगृह[2] और मिथिला[3] में हुये ॥१—६॥

फिर सौ,[4] छप्पन, साठ, चौरासी हजार, छत्तीस, बत्तीस, अट्ठाइस, बाईस, अठारह, सत्रह, पन्द्रह, चौदह, नौ, सात, बारह, पच्चीस और फिर पच्चीस, बारह और फिर बारह, नौ, चौरासी हजार मखादेव आदि,

---

[1]कसया, जिला गोरखपुर (यू० पी०)।

[2]आधुनिक राजगिर, जिला पटना (विहार)।

[3]प्राचीन विदेह देश की राजधानी। सम्भवतः वर्तमान जनकपुर (नैपाल की तराई)।

[4]अचिमा से कलारजनक तक के राजाओं की वंशावलियों का विस्तृत वर्णन दीपवंश (३-१४) में दिया है। प्रत्येक वंश के राजाओं की संख्या, उन की राजधानियां और उन के अंतिम राजाओं के नाम इस प्रकार हैं :—

१०० ने कपिल में,	अन्तिम	राजा	अरिन्दम
५६ ने अयुज्झा (अयोध्या) में	,,	,,	दुप्पसह
६० ने वाराणसी (बनारस) में	,,	,,	अभितत्त
८४००० ने कपिलनगर (कपिलवस्तु) में	,,	,,	ब्रह्मदत्त
३६ ने हत्थिपुर (हस्तिनापुर) में	,,	,,	कम्बलवसभ
३२ ने एकचक्खु में	,,	,,	पुरिन्दद
२८ ने वजिरा में	,	,,	साधीन
२२ ने मधुरा (मथुरा) में	,,	,,	धम्मगुत्त

चौरासी हजार कलारजनक आदि, सोलह ओक्काक के पुत्र पौत्र (हुये)। इस राजावलि ने क्रम से भिन्न २ नगरों में राज्य किया ॥७ – ११॥

ओक्काक (इक्ष्वाकु) राजा का ज्येष्ठ पुत्र ओक्कामुख (उल्कामुख) था। निपुण, चन्दिमा, चन्द्रमुख, शिवसञ्जय, वेस्सन्तर, जाली, सिंहवाहन, सिहस्सर आदि राजा उसके पुत्र पौत्र हुये। सिहस्सर राजा के बयासी हजार राजा पुत्र पौत्र हुए जिनमे अन्तिम राजा जयसेन था ॥१४॥ यह कपिलवस्तु[1] में अति प्रसिद्ध शाक्य राजा हुये।

जयसेन के पुत्र का नाम महाराज सिंहहनु और उन की कन्या का नाम यशोधरा था। देवदह में देवदह शाक्य नाम का राजा था, अञ्जन जिस का पुत्र, और कात्यायनी जिसकी कन्या थी। कात्यायनी सिंहहनु की रानी और यशोधरा अञ्जन (शाक्य) की रानी थी। अञ्जन की माया

---

१८ ने अरिट्ठपुर	में	,,	,,	सिट्ठी
१७ ने इन्दपत्त (इन्द्रप्रस्थ)	में	,,	,,	ब्रह्मदेव
१५ ने एकचक्खु	में	,,	,,	बलदत्त
१४ ने कौशाम्बी	में	,,	,,	भद्रदेव
६ ने कर्णगोच्छ	में	,,	,,	नरदेव
७ ने रोजननगर	में	,,	,,	महिन्द
१२ ने चम्पा	में	,,	,,	नागदेव
२५ ने मिथिला	में	,,	,,	बुद्धदत्त
२५ ने राजगृह	में	,,	,,	दीपंकर
१२ ने तक्कसिला (तक्षशिला)	में	,,	,,	तालिस्सर
११ ने कुसीनारा	में	,,	,,	सुदिन्नो
६ ने तामलित्थिय	में	,,	,,	सागरदेव

सागर देव का पुत्र हुआ मखादेव। मखादेव के वंश (८४००० राजाओं) ने मिथिला में राज्य किया। कलारजनक का पिता नेमिय अंतिम राजा हुआ। इन के पीछे समंकुर और फिर असोच हुये, जिनके पीछे ८४००० राजाओं के एक वंश ने बाराणसी (बनारस) में राज्य किया। इस वंश का अन्तिम राजा विजय था, जिसके पीछे विजितसेन, धम्मसेन, नागसेन समथ, दिसम्पति, रेणु, कुश, महाकुश, नवरथ, दसरथ, राम, बिलारथ, चित्तदस्सी, अत्थदस्सी, सुजात और ओक्काक आदि अनेक राजा हुए।

[1]शाक्यवंश की राजधानी ; सम्भवतः नैपाल राज्य का तिलौराकोट स्थान।

और प्रजापती दो कन्याये तथा दण्डपाणि और सुप्रबुद्ध दो पुत्र थे। सिंहहनु के शुद्धोदन, धौतोदन, शक्रोदन, शुक्लोदन, अमितोदन, यह पाच पुत्र, तथा अमिता और प्रमिता, यह दो कन्यायें थीं ॥१५-२०॥ सुप्रबुद्ध शाक्य की रानी अमिता थी। इनकी भद्रकात्यायनी (भद्दकच्चाना) और देवदत्त दो सन्तान थीं ॥२१॥ माया और प्रजापती, शुद्धोदन की रानियां थीं। शुद्धोदन और माया के पुत्र हमारे बुद्ध (जिन) थे ॥२२॥

इस प्रकार की अविच्छिन्न परम्परावाले, सारे क्षत्रिय वशों में शिरोमणि महासम्मत वश में महामुनि (बुद्ध) पैदा हुये ॥२३॥

कुमार बोधिसत्त्व सिद्धार्थ की रानी भद्रकात्यायनी थी। उसका पुत्र राहुल था ॥२४॥ बिम्बिसार और सिद्धार्थकुमार मित्र थे। उन दोनों के पिता भी आपस मे मित्र थे ॥२५॥ बोधिसत्व बिम्बिसार से पाच वर्ष बड़े थे। २६ वर्ष की आयु मे बोधिसत्त्व ने गृह त्याग किया था ॥२६॥ (वह) छः वर्ष की तपस्या के बाद बुद्धत्व प्राप्त करके क्रमशः पैंतिस वर्ष की आयु होने पर बिम्बिसार के पास पहुंचे ॥२७॥

महापुण्यात्मा बिम्बिसार को पन्द्रह वर्ष की आयु में, स्वय पिता ने अभिषिक्त किया; और राज्य-प्राप्त के सोलहवे वर्ष मे शास्ता (बुद्ध) ने उस का धर्मोपदेश किया। बावन (५२) वर्ष तक उस ने राज्य किया ॥२८-२९॥ भगवान् के स्वागत-सम्मेलन से पूर्व पन्द्रह वर्ष, और तथागत के जीवन काल मे सैंतीस वर्ष (राज्य किया) ॥३०॥ बिम्बिसार के पुत्र, महान् मित्रद्रोही दुर्बुद्धि अजातशत्रु ने पिता को मार कर बत्तीस वर्ष राज्य किया ॥३१॥ अजातशत्रु के आठवे वर्ष मे मुनि (बुद्ध) ने निर्वाण प्राप्त किया। इस के पश्चात् उसने चौबीस वर्ष (और) राज्य किया ॥३२॥

सकल गुणाग्रणी तथागत भी बेबस हो अनित्यता के वशीभूत हुये। इस तरह जो यहा भयङ्कर अनित्यता को देखता है, वह ससार के दुःख से पार होता है ॥३३॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'महासम्मत वश' नामक द्वितीय परिच्छेद।

तृतीय परिच्छेद

प्रथम धर्म-संगीति

पञ्चनेत्र[1] भगवान् ने पैंतालिस वर्ष तक, सब जगह लोक-हित के सारे कार्यों को किया; और वैशाख पूर्णिमा को कुशीनारा[2] में जोड़े श्रेष्ठ शाल-वृक्षों के बीच संसार का वह दीप बुझ गया ॥२॥ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, देवता तथा असख्य भिक्षु वहां एकत्र हुये ॥३॥ उन में सात लाख प्रधान-भिक्षु थे। उस समय महाकाश्यप स्थविर सब स्थविर थे ॥४॥ शास्ता के शरीर और शारिरिक-धातु सम्बन्धी कृत्य को समाप्त करके, उस महा स्थविर ने शास्ता (बुद्ध) के धर्म की चिरस्थिति की इच्छा से लोकनाथ, दशबल[3] भगवान् के परि निर्वाण के एक सप्ताह बाद, बूढ़े सुभद्र[4] के

---

[1]१ मांसचक्षु २ दिव्यचक्षु ३ प्रज्ञाचक्षु ४ बुद्धचक्षु ५ समन्तचक्षु। (दे० महानिद्देस, सारिपुत्त सुत्त)

[2]कसया, जिला गोरखपुर (युक्तप्रान्त)।

[3]१ स्थानास्थान ज्ञान २ कर्मविपाक ज्ञान ३ सर्वत्रगामिनी प्रतिपत्ति ४ नानाधातु (स्वभाव) ज्ञान ५ सत्वों की अधिमुक्ति (श्रद्धा) ज्ञान ६ इन्द्रिय-परापरिय ज्ञान ७ ध्यानविमोक्ष ज्ञान ८ पूर्वनिवासस्मृति ज्ञान ९ च्युतिउत्पत्ति ज्ञान १० आस्रवक्षय ज्ञान।

[4]भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण की खबर जब कुशीनारा और पावा के बीच में बैठे हुये महाकाश्यप की जमात के भिक्षुओं को मिली, तो वह नाना प्रकार से बिलाप करने लगे। उस समय बुद्ध सुभद्र (भिक्षु) ने कहाः—"अलं आवुसो! मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। सुमुत्ता मयं तेन महासमणेन। उप द्दुता चहोम। इदं वो कप्पति, इदं वो न कप्पतीति। इदानि पन मयं यं इच्छिस्साम, तं करिस्साम। यं न इच्छिस्साम तं न करिस्साम (बस आयुष्मानो! मत सोचो। मत विलाप करो। अच्छी तरह हम मुक्त हो गये, उस महाश्रमण से। 'यह तुम को योग्य है यह तुम को योग्य नहीं है'; ऐसा बोलकर बड़ा कष्ट दिया। अब हम जो चाहेंगें करेंगे, जो नहीं चाहेंगें सो नहीं करेंगें) (दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त; चुल्लवग्ग, पञ्चसतिक खन्धक)।

दुर्भाषित वचन का, भगवान द्वारा चीवर-दान[1] तथा अपनी समता देने का,[2] और सद्धर्म की स्थापना के लिये किये गये भगवान् (मुनि) के अनुग्रह का स्मरण करके, सम्बुद्ध से अनुमत सगीति (= मिलकर सद्धर्म का पठन) करने के लिये, नवाङ्ग[3] बुद्धोपदेश को धारण करने वाले, सर्वाङ्गयुक्त, आनन्द स्थविर के कारण पाच सौ से एक कम महाक्षीणास्रव[4] भिक्षु चुने। फिर आनन्द स्थविर ने भिक्षुओं के बार बार कहने पर सगीति में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन के बिना वह हो नहीं सकती थी ॥५-१०॥

एक सप्ताह उत्सव मे, एक सप्ताह धातु-पूजन में, इस प्रकार आधा महीना बिता कर, उन सर्व लोकोपकारी भिक्षुओं ने निश्चय किया कि वर्षा-वास पर्य्यन्त राजगृह में रह कर धर्म सग्रह करें, किन्तु दूसरे कोई (भिक्षु) वहा न रहें ॥११-१२॥ जहा तहा शोक से व्याकुल लोगों को आश्वासन देते, जम्बु-द्वीप में विचरते हुये, शुक्लपक्ष (सद्धर्म) की स्थिति के इच्छुक वह स्थविर आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष मे, भिक्षुओं की चारों अवश्यकताओं[5] से सम्पन्न, राजगृह पहुँचे ॥१३-१४॥

सम्बुद्ध के मत को जानने वाले, स्थिर-गुणों से युक्त, वहा वर्षावास करने वाले महाकाश्यप आदि स्थविरों ने, अजातशत्रु को कह कर, वर्षा के पहले मास में सब वास-स्थानों की मरम्मत कराई ॥१५-१६॥ विहारों की मरम्मत हो जाने पर राजा को कहा, "अब हम धर्म का सगायन करेंगे" ॥१७॥ राजा ने पूछा, "और क्या करना है"? स्थविरों ने कहा, "बैठक का स्थान चाहिये।" राजा ने स्थान पूछकर, उन के कथनानुसार बड़ी शीघ्रता से वैभार-पर्वत की तलहटी मे सप्त पर्णी[6] (सत्तपण्णी) गुफा के द्वार पर

---

[1] मनोरथपूर्णी, प्र० भाग महाकस्सपवत्थु ॥

[2] संयुत्त निकाय, निदान वग्ग कस्सप संयुत्त, ६ सुत्त।

[3] १ सुत्त २ गेय्य ३ वेय्याकरण ४ गाथा ५ उदान ६ इतिवुत्तक ७ जातक ८ अब्भुतधम्म ६ वेदल्ल रचना के अनुसार बुद्धोपदेश इन नौ भागों में विभक्त है।

[4] जिन के चार आस्रव (दोष—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टिआस्रव, अविद्यास्रव—क्षय हो चुके हैं।

[5] भिक्षुओं की चार अवश्यकतायें हैं:—

१ चीवर (वस्त्र) २ पिण्डपात (भोजन) ३ सेनासन (आसन) ४ गिलान पच्चय (रोगी का पथ्य)।

[6] राजगिर (जिला पटना)।

देवसभा के सदृश रमणीक मण्डप बनवाया ॥१८-१९॥ उसे सब तरह सजा कर, उसने भिक्षुओं की संख्या के अनुसार उस मे बहुमूल्य आसन बिछवाये ॥२०॥ उस मण्डप के दक्षिण भाग में उत्तर-मुख महार्घ स्थविरासन[1] और बीच में पूर्वाभिमुख सुगत के योग्य उत्तम धर्म्मासन[1] रक्खा गया था ॥२१-२२॥

राजा ने स्थविरों को कहा "मेरा कार्य्य समाप्त हुआ"। तब स्थविरों ने आनन्दकर आनन्द को कहा, 'हे आनन्द! कल बैठक आरम्भ होगी, तुम्हारा शैक्ष्य[2] रह कर उस में शामिल होना उचित नहीं; इस लिये तुम अर्हत् होने के लिये उद्योग करो ॥२३-२४॥ इस प्रकार इन स्थविरों से प्रेरित किये जाने पर (आनन्द) वीर्य्य की समता स्थापित कर ईर्यापथ[3] से मुक्त अर्हत्-पद को प्राप्त हुये ॥२५॥

वर्षा के दूसरे महीने के दूसरे दिन (भा० कृ० २) स्थविर लोग, उस सुन्दर मण्डप में एकत्रित हुये ॥२६॥ आनन्द स्थविर के अनुकूल आसन छोड़कर बाकी सब अर्हत् यथायोग्य आसनों पर बैठे ॥२७॥ 'हम अर्हत् हो गये हैं', यह जताने के लिये, आनन्द उन के साथ मण्डप में नहीं गये। किन्तु, जब किसी ने पूछा "आनन्द स्थविर कहां हैं'? तो पृथ्वी में समा कर ज्योति मार्ग से अपने निश्चित आसन पर आ बैठे ॥२८२९॥ सारे स्थविरों में विनय[4] के लिये उपाली स्थविर और शेष सारे धर्म[5] के लिये आनन्द स्थविर को प्रधान चुना ॥३०॥

विनय पूछने के लिये महास्थविर (महाकाश्यप) ने अपने लिए संघ की

---

[1]सभा में बुद्ध के योग्य जो आसन होता, उसके स्थान पर धर्मासन था। और महाकाश्यप स्थविर का आसन स्थविरआसन था।

[2]जो अभी अर्हत् नहीं हुआ। अतः शिक्षा ग्रहण करने के योग्य है।

[3]खड़ा रहना, चलना, बैठना तथा लेटना।

[4]विनय पिटक में (१) पाराजिका, (२) पाचित्तियादि, (३) महावग्ग, (४) चुल्ल वग्ग और (५) परिवार यह पांच ग्रन्थ हैं। इन में से पहले दोनों को विभंग और उस के बाद के दोनों को खन्धक कहते हैं। इन में भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के आचार सम्बन्धी नियमों का संग्रह है।

[5]धर्म (धम्म) से तात्पर्य्य सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक से है। सुत्त पिटक में पांच निकाय हैं :—

१ दीघ निकाय २ मज्झिम निकाय ३ संयुत्त निकाय ४ अंगुत्तर निकाय ५ खुद्दक निकाय।

स्वीकृति ली और उपाली स्थविर ने उसका उत्तर प्रदान करने की आज्ञा ली ॥३१॥ स्थविरासन पर बैठकर महास्थविर ने प्रश्न पूछे और धर्मासन पर बैठकर (उपाली) स्थविर ने, उन के उत्तर दिये ॥३२॥ विनय जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ उपाली (स्थविर के कथनानुसार उन सब धर्म जानने वालों ने उसका पाठ किया ॥३३॥ भगवान् (बुद्ध) के बहुश्रुत शिष्यों में सर्व श्रेष्ठ, महर्षि के (धर्म) कोषाध्यक्ष आनन्द से महा-स्थविर ने धर्म पूछा। तब संघ की सम्मति से धर्मासन पर बैठे हुये आनन्द (स्थविर) ने, सारे ही धर्म को कहा ॥३४-३५॥ वैदेह (विदेह के) मुनि (आनन्द) के कथनानुसार धर्म-तत्त्व के जानने वाले सभी स्थविरों ने, सारे धर्म का एक साथ पाठ किया ॥३६॥ सर्व-लोक-हितैषी स्थविरों ने इस प्रकार सात मास में सारे ससार के हित के लिये, धर्म सगीति समाप्त की ॥३७॥

महाकाश्यप स्थविर ने सुगत के इस शासन को पाच हजार वर्ष तक स्थिर रहने के योग्य कर दिया ॥३८॥ इसी लिये सगीति की समाप्ति पर प्रमुदित हुई पृथ्वी, समुद्र पर्य्यन्त, छः बार कम्पित हुई। ससार में और भी अनेक आश्चर्य्य हुये। स्थविरों द्वारा की जाने के कारण इस सगीति (सम्प्रदाय) को स्थविर (थेरिय, परम्परा कहते हैं ॥३६ ४०॥

यह प्रथम धर्म सग्रह करने के बाद, ससार का और भी बहुत उपकार करके, वह सब स्थविर आयु-पर्य्यन्त जीवित रह कर, निर्वाण को प्राप्त हुये ॥४१॥

ससार के अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने में समर्थ, वह महाप्रदीप तथा बुद्धि रूपी प्रदीप से अन्धकार का नाश करने वाले स्थविर भी मृत्यु रूपी घोर आधी द्वारा बुझा दिये गये। इस से भी बुद्धिमान् को जीवन का मद त्यागना ही उचित है ॥४२॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'प्रथम धर्म सगीति' नामक तृतीय परिच्छेद।

खुद्दक निकाय में यह १५ पुस्तकें हैं :—

१ खुद्दकपाठ २ धम्मपद ३ उदान ४ इतिवुत्तक ५ सुत्त-निपात ६ विमान-वत्थु ७ पेत-वत्थु ८ थेर-गाथा ९ थेरी-गाथा १० जातक ११ निद्देस १२ पटिसम्भिदा मग्ग १३ अपदान १४ बुद्धवंस १५ चरियापिटक।

अभिधम्म पिटक में यह सात ग्रन्थ हैं:—

१ धम्मसंगणि २ विभंग ३ धातुकथा ४ पुग्गलपञ्ञत्ति ५ कथावत्थु ६ यमक ७ पट्ठान।

चतुर्थ परिच्छेद

द्वितीय धर्म-संगीति

मित्रद्रोही उदयभद्र ने अपने पिता अजातशत्रु को मारकर सोलह वर्ष राज्य किया ॥१॥ अनुरुद्ध ने भी अपने पिता उदयभद्र और मुण्ड ने अपने पिता अनुरुद्ध को मार कर (४४३ ४३५ ई० पू०) राज्य किया ॥२॥ इन दोनों मित्र द्रोही, दुर्मति (राजाओं) का राज्य-काल आठ वर्ष (रहा) ॥३॥ पापी नागदास ने अपने पिता मुण्ड को मार कर (४३५—४११ ई० पू०) चौबीस वर्ष राज्य किया ॥४॥ 'यह पितृ-घातक वंश है' इसलिये क्रोधित हो, सब नागरिकों ने मिलकर, नागदास को गद्दी से हटा दिया, और शिशुनाग (४११—३९३ ई० पू०) नाम से प्रसिद्ध सम्माननीय अमात्य को सब के हित के लिये राज्य पर अभिषिक्त किया ॥५ ६॥ उस राजा (शिशुनाग) ने अठारह वर्ष राज्य किया। उसके पुत्र कालाशोक ने अट्ठाइस वर्ष ॥७॥

कालाशोक के शासन के दसवें वर्ष में भगवान् के परिनिर्वाण को सौ वर्ष पूरे हुये। उसी समय वैशाली[1] वासी अनेक लज्जारहित वज्जिपुत्र (भिक्षु) इन दस[2] बातों का समर्थन करने लगे —१ सींग का नमक,

---

[1]बसाढ़, जिला मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)

[2]सिंगि लोण-कप्प—सींग के खोल में नमक ले जाना।

२ द्वंगुल कप्प—निश्चित (मध्याह्न) समय के पश्चात् सूर्य्य के दो अंगुल अधिक उत्तर आने तक भोजन कर सकना।

३ गामंतर—मध्यान्ह काल के भोजन के बाद भी ग्राम में जाना और और निमन्त्रित किये जाने पर दुबारा भोजन कर सकना।

४ आवास कप्प—एक ही सीमित स्थान में रहने वाले भिक्षुओं के लिये अपना २ उपोसथागार पृथक पृथक बना सकना।

५ अनुमति कप्प—पीछे आने वालों से पीछे उपोसथ की स्वीकृति लेने की आशा से, थोड़े से भिक्षुओं से ही उपोसथकर्म को कर सकना।

२ दो अङ्गुल, ३ ग्रामान्तर, ४ आवास, ५ अनुमति, ६ आचीर्ण, ७ अमथित, ८ जलोगीपान, ९ बिना किनारी का आसन, १० सोना चादी। इसको सुनकर वज्जि-[1]देश में विचरते हुये छः अभिज्ञाप्राप्त[2] काकन्डक-पुत्र यश स्थविर उस (विवाद) को दूर करने के लिये उत्साह सहित महावन[3] (बिहार) गये ॥८—१२॥

वे (वज्जिपुत्र भिक्षु) उपोसथ के दिन जल-भरी कासे की थाली रखकर उपासकों (ग्रहस्थों से कहते थे, कि "सघ के लिये रुपया पैसा (कहापणादि[4]) चढाओ" ॥१३॥ यश स्थविर ने कहा:—यह धर्मानुकूल नहीं है, मत दो"। उन भिक्षुओं ने उन (यश स्थविर) को प्रतिसारणीय[5] कर्म से दण्डित किया ॥१४॥ यश स्थविर उन भिक्षुओं से साथ चलने के लिये आदमी लेकर, उसके साथ नगर मे गये; और नगर निवासियों (उपासकों) को अपना धर्मपक्ष समझाया ॥१५॥ यश (स्थविर) के साथ भेजे हुये आदमी से सब वृत्तान्त सुनकर, उन भिक्षुओं ने स्थविर का उत्क्षेपणीय[6] कर्म करने के लिये उनका वासस्थान घेर लिया ॥१६॥

---

६ आचिण्ण कप्प—(विनय की अपेक्षा भी) गुरु परम्परा के आचार को प्रमाण मानना।

७ अमथित कप्प भोजन काल के बाद भी, दूध और दही के बीच की अवस्था वाले दूध को पी सकना।

८ जलोगी कप्प—मद्य-भाव को अप्राप्त, बिना खिंची सुरा पी सकना।

९ अदसकनिसीदन कप्प बिना किनारी का आसन रख सकना।

१० जातरूप रजत कप्प – सोनाचांदी ग्रहण कर सकना।

[1]गङ्गा से उत्तर, गण्डक (नदी) से पूर्व, हिमालय से दक्षिण बाग्मती (नदी) से पश्चिम का प्रदेश, जिसमें आजकल बिहार के मुजफ्फरपुर और चम्पारण के जिले हैं।

[2]छः अभिज्ञा हैं—ऋद्धिविध, दिव्यश्रोत, परचित्तविजाननम्, पूर्वनिवासानुस्मृति, दिव्यचक्षु तथा आस्रवक्षयज्ञान।

[3] सम्भवतः बसाढ़ से दो मील उत्तर-पश्चिम वर्तमान कोल्हुआ, जहां पर अशोक स्तम्भ अब भी वर्तमान है।

[4]कहापण (संस्कृत कार्षापण)।

[5]गृहस्थों से क्षमा मांगने आने का दण्ड।

[6]संघ से निकाल बाहर करने का दण्ड।

यश (स्थविर) जल्दी ही आकाश मार्ग से चले गये और कौशाम्बी[1] में ठहर कर, वहाँ से पावा[2] और अवन्ती[3] के भिक्षुओं के पास दूत भेजा ॥१७॥ वहा से स्वय अहोगंग[4] पर्वत पर जा, सानवासी सम्भूत स्थविर से सब हाल कहा ॥१८॥

पावा वाले साठ और अवन्ती वाले अस्सी, यह सब महाक्षीणास्रव स्थविर, अहोगंग (पर्वत) पर आये ॥ १९॥ जहा तहा से आ कर आपस में सम्मति करके सब नव्वे हजार भिक्षु एकत्रित हुये ॥२०॥ वे बहुश्रुत, अनाश्रव, सौरेय्यरेवत स्थविर को उस काल में सब से प्रमुख जानकर, उनसे मिलने के लिये निकले ॥२१॥ उन की बात को अपनी दिव्य शक्ति से जान, सौरेय्यरेवत स्थविर, सुख से पहुचने की इच्छा से (उसी क्षण) वैशाली[5] चल दिये ॥२२॥ उन (रेवत स्थविर) के सवेरे छोड़े हुये स्थान पर शाम को पहुचते हुये, स्थविरों ने अन्त में उन्हें सहजाति[6] स्थान पर देखा ॥२३॥

सम्भूत स्थविर के कहने पर यश-स्थविर ने सद्धर्म सुनने के अनन्तर उत्तम रेवत स्थविर से दस बाते पूछीं। स्थविर ने अस्वीकृत किया और विवाद सुन कर कहा: –"यह निषिद्ध है" ॥२४-२५॥

दुष्ट (वज्जीपुत्र) भी अपने पक्ष के समर्थन के लिये, रेवत स्थविर के दर्शनार्थ, भिक्षुओं के बहुत परिष्कार लेकर, भोजन के समय भोजन करते हुए शीघ्र ही नावद्वारा सहजाति पहुचे ॥२६-२७॥

सहजाति में रहने वाले अनास्रव साल्ह स्थविर ने सोच कर देखा— "पावावाले धर्मवादी हैं"। महाब्रह्मा ने उनके पास आकर कहा, "धर्म में

---

[1]वर्तमान कोसम (ज़ि॰ इलाहाबाद) यमुना के किनारे वत्स देश की राजधानी थी।

[2]पाश्चात्य, (द्रष्टव्य ४-२०)

[3]वर्तमान मालवा, जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

[4]सम्भवतः हरिद्वार के ऊपरी पर्वत।

[5]७-३ द्रष्टव्य।

[6]भीटा (ज़िला इलाहाबाद), जहां पर 'सहजातिये निगमस' की मुद्रा मिली है (रिपोर्ट पुरातत्त्व विभाग १९११—१२; पृ॰ ३८)

स्थिर रहो"। उन्हों ने उत्तर दिया, "हम नित्य ही धर्म में दृढ है" ॥२८-२९॥

वे (वज्जीपुत्र) उपहार लेकर रेवत (स्थविर) के पास पहुचे, लेकिन स्थविर ने उन के पक्ष को स्वीकार नहीं किया, और उस पक्ष के ग्रहण करने वाले (अपने शिष्य[१]) को भी हटा दिया ॥३०॥ वहा से वह वैशाली गये ; और वहा से उन निर्लज्जा ने पटना (पुष्पपुरम्) जाकर कालाशोक राजा को कहा:— 'महाराज! हम अपने शास्ता (उपदेष्टा) की गन्ध-कुटी[२] की रक्षा के लिये वहा वज्जी-भूमि में महावन विहार में रहते हैं। बस्ती-वाले भिक्षु विहार छीनने के लिये आते हैं। आप उन्हें रोकें" ॥३१-३३॥ इस प्रकार राजा को दुराग्रही बनाकर, वह वैशाली लौट आये।

यहा सहजाति मे ११ लाख नब्बे हजार भिक्षुओं ने रेवत स्थविर के पास आकर कहा: —"इस झगड़े को (आप) शान्त करें' ॥३४-३५॥ स्थविर ने कहा —"झगड़े के (जो) मूल (हैं, उनके) बिना इस झगड़े का शमन नहीं हो सकता। इस लिये वह सब भिक्षु (वहा से) वैशाली गये ॥३६॥

उस दुरगृहीत राजा ने अपने आमात्यों को वहा (वैशाली) भेजा। (किन्तु) वह देवताओं के प्रभाव से (मार्ग) भूल कर दूसरी जगह चले गये ॥३७॥ उन को भेजकर राजा ने रात को स्वप्न में अपने आप को लोह-कुम्भी (कुम्भी पाक-नरक) मे पड़े हुये देखा ॥३८॥ राजा बहुत भयभीत हुआ। उस को आश्वासन देने के लिये, आकाश मार्ग से उस की बहिन अनास्रवा[३] नन्दा थेरी आई ॥३९॥ "तूने बहुत बुरा किया। धार्मिक आर्य्यों से क्षमा माग और उन का पक्ष ले बुद्धधर्म की रक्षा कर। ऐसा करने से तेरा कल्याण होगा" कह कर चली गई। राजा प्रातः काल ही वैशाली के लिये चल दिया ॥४०-४१॥ महावन[४] जाकर उसने भिक्षुसघ को इकट्ठा किया और दोनों पक्षों का विवाद सुन कर, धर्म पक्ष का ग्रहण करते हुये, सब धार्मिक भिक्षुओं से क्षमा मागी। राजा ने अपने आप को धर्म-पक्ष की ओर

[१]चुल्ल वग्ग १२-२-३ द्रष्टव्य।

[२]भगवान् जिस कुटी में ठहरते थे उसे गन्धकुटी कहते हैं। पुष्पादि चढ़ते रहने से सुगन्धित रहने के कारण यह नाम पड़ा जान पड़ता है।

[३]अर्हत्।

[४]४-१२ द्रष्टव्य।

बताया और कहा:—"कि आप जैसे चाहें, वैसे बुद्धधर्म को उन्नति करें"। उन की रक्षा का प्रबन्ध करके वह (राजा) अपने नगर को लौट गया ॥४२-४४॥

(इस के बाद) सघ उन दस बातों का निश्चय करने के लिये एकत्रित हुआ। उस समय वहा सघ में अनेक अनर्गल बाते होने लगीं ॥४५॥ तब रेवत स्थविर ने सारे सघ को सुना कर निश्चय किया कि इन बातों का पञ्चायत (उब्बाहिका) के द्वारा फैसला होना चाहिये ॥४६॥ उस विवाद की शान्ति के लिये चार पूर्व के, चार पश्चिम (पावा) के भिक्षुओं को पच चुना ॥४७॥ सर्वकामी, साळ्ह क्षुद्रशोभित और वृषभग्रामी (वासभगामी) यह चार पूर्व वाले; रेवत, साणसम्भूत, काकन्डक-पुत्र यश और सुमन यह चार पावा[1] वाले (यह) आठ अनास्रव स्थविर उस विवाद को शान्त करने के लिये भीड-भाड़ से शून्य, शान्त वालुकाराम[2] में गये ॥४८-५०॥

महामुनि के मत को जानने वाले यह महास्थविर वहा तरुण अजित द्वारा बिछाये गये सुन्दर आसनों पर विराजमान हुये ॥५१॥ प्रश्न पूछने में चतुर महास्थविर रेवत ने, उन दस बातों में से एक २ बात क्रम से सर्वकामी स्थविर से पूछी ॥५२॥ महास्थविर के पूछने पर सर्वकामी स्थविर ने कहा:—"यह तमाम बातें धर्म-विरुद्ध हैं"[3] ॥५३॥ उन्हों ने वहा क्रम से विवाद का निश्चय करके, फिर सघ में भी उसी तरह प्रश्नोत्तर किया ॥५४॥ महा-स्थविरों ने उन दस बातों के प्रचारक दस हजार भिक्षुओं का निग्रह (दमन) किया ॥५५॥

सर्वकामी महा-स्थविर को उस समय उपसम्पन्न-भिक्षु हुये एक सौ बीस वर्ष हो गये थे, वही उस समय पृथ्वी पर सघ-स्थविर थे ॥५६॥

सर्वकामी, साळ्ह, रेवत, क्षुद्रशोभित, काकन्डक-पुत्र यश और साण-वासी सम्भूत यह आनन्द स्थविर के शिष्य थे। वृषभग्रामी (वासभगामी) और सुमन यह दो अनुरुद्ध स्थविर के शिष्य थे। इन आठ भाग्यवान् स्थविरों ने भगवान् (बुद्ध) के दर्शन किये थे ॥५७ ५८॥

बारह लाख भिक्षु एकत्र हुये। उस समय रेवत स्थविर सब भिक्षुओं में

---

[1]पावा से सम्भवतः पाश्चात्य मतलब है, मल्लों की राजधानी पावा नहीं।

[2]वैशाली (वर्तमान बसाढ) के समीप का संघाराम।

[3]सूत्र तथा विनय विरुद्ध हैं।

प्रधान थे ॥६०॥ रेवत स्थविर ने चिरकाल तक धर्म की स्थिरता के लिये, धर्म संगीति करने के निमित्त सब भिक्षुओं में से अर्थ, धर्म आदि पटिसम्भिदाओं के ज्ञान में प्रवीण, त्रिपिटकज्ञ सात सौ अर्हत् भिक्षुओं को चुना ॥६१-६२॥ उन सब ने कालाशोक की सरक्षता में वालुकाराम में, रेवत-स्थविर की प्रधानता में धर्म-सग्रह किया ॥६३॥ जिस तरह पहिले धर्म का (संग्रह) किया गया, तथा पीछे (उसकी) घोषणा का गई; वैसे ही धर्म को ग्रहण कर, आठ मास में इस सगीति को समाप्त किया ॥६४॥

इस प्रकार दूसरी सगीति का सम्पादन कर रागादि रहित, वह महायशस्वी स्थविर भी, काल पाकर निर्वाण को प्राप्त हुये ॥६५॥

इसलिये, परमबुद्धिमान्, सफलमनोरथ, तीनों[1] योनियों के हितैषी, लोकनाथ (भगवान्) के पुत्र उन (स्थविरों) की मृत्यु का स्मरण और जीवन (संस्कार) की असारता का ध्यान करके हमें अप्रमत्त होना चाहिये ॥६६॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का "द्वितीय संगीति" नामक चतुर्थ परिच्छेद ॥४॥

---

[1]मनुष्य, देव, तिर्यक् (पशु पक्षी आदि)।

पञ्चम परिच्छेद

तृतीय-धर्म-संगीति

महाकाश्यप आदि महास्थविरों ने आरम्भ से जिस धर्मसंगीति को किया, वह स्थविरीय (थेरिया) संगीति कही जाती है ॥१॥

प्रथम (बुद्ध-) शताब्दी में केवल एक स्थविर-वाद ही था। अन्य आचार्यवाद पीछे पैदा हुये ॥२॥ दूसरी संगीति करने वाले स्थविरों द्वारा मर्दन किए गये उन दस हजार दुष्ट भिक्षुओं ने **महासांघिक** नामक आचार्य-वाद की स्थापना की। फिर उनसे **गोकुलिक** और **एकव्यवहारिक** पैदा हुये। **गोकुलिकों** से **प्रज्ञप्तिवादी** तथा **बाहुलिक** और उन्हीं से **चैत्यवाद**। **महासांघिकों** के सहित यह छ हुये ॥२-५॥

फिर स्थविरवाद ही में से (**महीशासक**) भिक्षु और **वज्जिपुत्तक** (वात्सीपुत्रीय) यह दो (सम्प्रदाय) हुये ॥६॥ **वज्जिपुत्तीय** भिक्षुओं से **धर्म्मोत्तरीय**, **भद्रयानिक**, **छन्दागारिक** और **सम्मितीय** हुये। ७॥ **मही-शाशक** भिक्षुओं में से **सर्वास्तिवाद** और **धर्मगुप्तिक** यह दो सम्प्रदाय हुये ॥८॥ **सर्वास्तिवाद** से **काश्यपीय**, जिनसे **सांक्रांतिक** और (फिर) जिनसे **सुत्तवाद** (**सूत्रवादी**) हुये ॥९॥ स्थविरवाद के सहित यह सब बारह होते हैं, और पहले कहे गये छ (मिलकर) कुल अठारह हुये ॥१०॥ दूसरी (बुद्ध-) शताब्दी मे यह सत्रह सम्प्रदाय ही पैदा हुये, अन्य सब सम्प्रदाय पीछे हुये ॥११॥

हैमवत, राजगृहीय, सिद्धार्थक, पूर्वशैलीय, अपरशैलीय और **वाजि-रीय**—यह छ सम्प्रदाय जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) में अलग हुये, तथा **धर्मरुचि**[1] और **सागलीय**[1] सम्प्रदाय लङ्का में अलग हुये ॥१२-१३॥

आचार्य कुलवादकथा समाप्त

कालाशोक (३६५-३४३ ई० पू०) के लड़के दस भाई थे, जिन्होंने बाईस वर्ष राज्य किया ॥१४॥ उनके बाद **नव नन्द** (३४३-३२१ ई० पू०) क्रम

---

[1] "निकाय संग्रह" के अनुसार स्थविरवाद से धर्मरुचि (वाद) ४५४ बुद्धाब्द में और सागलीय (वाद) ७९५ बुद्धाब्द में पृथक हुआ (पृ० १०,११)

से राजा हुये, उन्होंने भी बाईस वर्ष राज्य किया ॥१५॥ फिर **मौर्य्य** (क्षत्रिय) वंश म प्रसिद्ध महाराज **चन्द्रगुप्त** हुये, जिन्हें महाक्रोधी ब्राह्मण **चाणक्य** ने नवें नन्द **धननन्द** का मरवा कर, सकल **जम्बूद्वीप** का राजा बनाया ॥१६-१७॥ उसने चौबीस वर्ष और उसके पुत्र **बिन्दुसार** (२९७-२६९ ई० पू०) ने अठाइस वर्ष राज्य किया ॥१८॥ बिन्दुसार के एक सौ एक पुत्र थे, उनमें सब से अधिक पुण्य, तेज बल और ऋद्धि वाले **अशोक** थे। उन्होने अपने निन्नानवे सौतेले भाइयों को मार कर सकल **जम्बूद्वीप** का एक छत्र राज्य प्राप्त किया ॥२०॥

भगवान बुद्ध के निर्वाण के पश्चात और अशोक के अभिषेक के पूर्व दो सौ अठारह २१८) वर्ष व्यतीत हुए जानने चाहिये ॥२१॥

महायशस्वी (अशोक) ने एकछत्र राज्य प्राप्त करने के चार वर्ष बाद **पाटलिपुत्र** (पटना) मे अपना अभिषेक कराया ॥२२॥ अभिषेक के समय से उस की आज्ञा (घोषणा) आकाश और भूमि में नित्य योजन तक पहुँचती थी ॥२३॥ देवता प्रतिदिन **मानसरोवर**[1] से आठ बँहगी जल लाते थे, और राजा अशोक उसको अपने लोगों में बाटते थे ॥२४॥ हिमालय मे देवता नागलता की हजारों दातवने, आवला और हरीतकी की औषधिया तथा सुन्दर वर्ण, रस और गन्ध वाले आम लाते थे। मरुदेवता **षड्दन्त** (छद्दन्त) सरोवर से पाच रंग के वस्त्र, हाथ पोंछने का पीला अंगोछा और दिव्य-पान लाते थे ॥२५-२७॥ नाग (देवता) नागभवन से सुमन-पुष्प सदृश सूत रहित वस्त्र, दिव्य कवल, उबटन तथा अजन लाते थे ॥२८॥ तोते प्रति दिन **षड्दन्त** (छद्दन्त) सरोवर (से ही) नब्बेहजार बँहगी धान लाते थे ॥२९॥ चूहे उस धान से भूसी और कण पृथक कर बिना टूटे चावल निकालते थे। राजकुल के लिये उसी का भात बनता था ॥३०॥ मधुमक्खिका उसके लिये लगातार मधुसग्रह करती थीं; और उसके कारखानों (कर्म्मशाला) में भालू हथौड़ा चलाते थे ॥३१॥ मनोहर मधुर स्वर वाले कोयल पक्षी उस राजा के पास मीठा कूजन करते थे ॥३२॥

राज्याभिषेक के बाद **अशोक** ने अपने सगे छोटे भाई राजकुमार **तिष्य** को उपराज (युवराज) अभिषिक्त किया ॥३३॥

धर्माशोक अभिषेक कथा समाप्त

पिता साठहजार ब्रह्ममतानुयायी ब्राह्मणों को भोजन कराता था। अशोक भी उन्हे वैसे ही तीन वर्ष तक भोजन कराते रहे ॥३४॥ परोसने के

---

[1] अनवतप्त

समय हल्ला होते देख कर, आमात्यों को हुक्म दिया कि दान चुनाव कर दिया जायगा ॥६५॥ बुद्धिमान राजा ने अनेक मतावलम्बियों (नाना पाषण्डिकों) को पृथक-पृथक बुलवाकर सभा मे उन की (योग्यता) विचार करके भोजन करा विदा किया ॥३६॥

खिड़की पर बैठे हुये अशोक एक समय यति न्यग्रोध सामणेर को शान्त भाव से राजाङ्गन से गुजरते देख बड़े प्रसन्न हुये ॥३७॥ वह सामणेर बिन्दुसार के सब से बड़े बेटे राजकुमार सुमन का पुत्र था ॥३८॥ बिन्दुसार के बीमार पड़ने पर अशोक पिता के दिये हुये उज्जैनी राज्य को छोड़ पाटलि पुत्र चले आये ॥३९॥ पिता के मरने पर नगर को अपने आधीन कर, बड़े भाई को मरवा श्रेष्ठ नगर का राज्य अपने हाथ मे लिया ॥४०॥

कुमार सुमन की भार्य्या सुमना देवी उस समय गर्भवती थी। वह पूर्व दरवाजे से बाहर निकलकर चण्डाल ग्राम का चली गई। वहा एक वट (न्यग्रोध) वृक्ष पर रहने वाले देवता ने उसे नाम लेकर बुलाया और घर बना कर दिया ॥४१-४२॥ उसी दिन उस देवी को एक सुन्दर पुत्र पैदा हुआ। देवता के अनुग्रह से प्राप्त होने के कारण, उसका नाम न्यग्रोध रक्खा ॥४३॥ चण्डालों के चौधरी ने उस (देवी) को देख, अपनी स्वामिनी के सदृश मानते हुये, सात वर्ष तक अच्छी तरह सेवा की ॥४४॥ महावरुण अर्हत् स्थविर ने उस कुमार को उपनिस्सय[1] लक्षणो से युक्त देख, उसकी माता से पूछकर, उसे भिक्षु बना लिया। वह मुण्डन के स्थान पर ही अर्हत्व का प्राप्त हो गया। एक दिन उसने अपनी माता के दर्शनार्थ जाते हुये दक्षिण द्वार से नगर मे प्रवेश किया। उस गाव के मार्ग पर जाते हुये, वह राजा के आगन में से गुजरा ॥४५-४७॥ शान्त भाव से जाते हुये (न्यग्रोध) को देख कर राजा प्रसन्न हुआ, और पूर्व जन्म का सहवासी होने के कारण उससे प्रेम हो गया ॥४८॥

पूर्व काल मे तीन भाई मधु का रोजगार करते थे। एक मधु बेचता था, और दो इकट्ठा करके लाते थे ॥४९॥

एक पत्येक-सम्बुद्ध[2] जखम से पीड़ित था। दूसरा प्रत्येक-सम्बुद्ध उस के लिये मधु लाने की इच्छा से मधुकरी-मागने वालो के नियमानुसार नगर में प्रविष्ट हुआ। पानी के लिये घाट पर जाती हुई एक दासी ने उसे देखा।

---

[1] वह सब लक्षण ; जिन से भविष्य में अर्हत् होना निश्चित हो।
[2] १-११ द्रष्टव्य।

पूछने पर जब मालूम हुआ, कि मधु चाहते हैं, तो उस ने हाथ के संकेत से कहा:—"भन्ते ! वह मधु की दुकान है, वहा जायें" ॥५०-५३॥ वहा जाने पर उस श्रद्धालु दुकानदार ने (प्रत्येक-) बुद्ध का पात्र शहद से मुंह तक छलकता हुआ भर दिया ॥५३॥ मुह तक भरे हुये पात्र, और उस से छलक कर भूमि पर गिरते हुये मधु को देख, वह प्रसन्न हुआ ; और उस ने मन में संकल्प किया कि इस दान के प्रताप से मै सकल जम्बूद्वीप का राजा होऊ, तथा आकाश और भूमि मे योजन योजन तक मेरी आज्ञा प्रचलित हो ॥५४-५५॥

भाइयों के आने पर उस ने कहा: - "मै ने एक ऐसे पुरुष को मधु दिया है ; तुम उस (दान) का अनुमोदन करो, क्योंकि शहद तुम्हारा भी है ॥५६॥ बड़े भाई ने असन्तुष्ट होकर कहा:—"वह निश्चय से चाण्डाल था ; क्योंकि, चाण्डाल ही सदा काषाय वस्त्र पहनते हैं" ॥५७॥ मझले भाई ने कहा:—"इस प्रत्येक-बुद्ध को समुद्र पार फको" । (किन्तु) फिर दान के फल मे हिस्सेदार बनने की बात सुनकर उन्हो ने अनुमोदन किया ॥५७-५८॥

उस दुकान बतलानेवाली ने इच्छा की, कि मै उस (चक्रवर्ती राजा) की रानी बनू, और मेरा रूप सर्वाङ्गपूर्ण[1] अति मनोहर हो ॥५६॥

वही मधुदाता अशोक हुआ, और वही दासी असन्धिमित्रा हुई । (प्रत्येक-बुद्ध) का चण्डाल कहने वाला न्यग्रोध और 'समुद्रपार' कहने वाला राजकुमार तिष्य हुआ ॥६०॥ 'चण्डाल' कहने के कारण वह चण्डाल ग्राम में पैदा हुआ । मोक्ष की चाहना करने से उसने उसे सात वर्ष में प्राप्त कर लिया ॥६१॥

प्रेम-बद्ध राजा (अशोक) ने उसे अति शीघ्रता से अपने पास बुलाया, किन्तु वह शान्त-वृत्ति से राजा के पास आया । राजा ने कहा, "हे तात ! उचित आसन ग्रहण करो" । किसी अन्य भिक्षु को वहा न देख, वह सिंहासन के पास चला आया । उसके सिंहासन के पास आने पर राजा ने सोचा, "आज यह सामणेर[2] मेरे घर का स्वामी होगा" ॥६४॥ राजा के हाथ का सहारा लेकर (न्यग्रोध) सिहासन पर चढ श्वेत राज-छत्र के नीचे बैठ गया ॥६१॥ उस को वहा बैठे हुये देख, गुणानुसार सन्मान करके महाराज अशोक बड़े प्रसन्न हुये ॥६६॥ अपने लिये बने हुए भोजन से उसको सतृप्त करके, फिर (अशोक ने)

---

[1] "अविस्समान् सन्धि" (अदृश्यमान् हड्डियों का जोड़) ।

[2] भिक्षु प्रव्रजित हो कर, उपसम्पन्न न होने तक सामणेर कहलाता है ।

सामणेर से भगवान् (बुद्ध) द्वारा कहा गया धर्म पूछा। सामणेर ने अप्रमाद वर्ग (अप्पमाद वग्ग[1]) का उपदेश दिया, जिसे सुनकर राजा की बुद्धधर्म में आस्था हुई ॥६८॥

राजा ने कहा, "हे तात ! मैं तुम्हें आठ भात (आठ जनों का भोजन) देता हूं।" उस ने कहा :—"मैं उसे (समस्त भोजन को) अपने उपाध्याय[2] को समर्पित करता हूं ॥६६॥ फिर आठ भात देने पर उसने उसे अपने आचार्य्य[2] को समर्पित किया, और फिर आठ भात देने पर, उसने उसे भिक्षु-संघ के लिये अर्पण कर दिया ॥७०॥ फिर आठ देने पर उस बुद्धिमान् ने उन्हें स्वीकार कर लिया और अगले दिन बत्तीस भिक्षुओं को साथ लेकर गया ॥७०॥ राजा ने अपने हाथ से भोजन कराया, और उसने जनसमूह सहित राजा को धर्मोपदेश देकर शील और शरण[3] मे स्थापित किया ॥७२॥

न्यग्रोध-सामणेर दर्शन समाप्त

फिर प्रसन्नचित्त राजा ने प्रति दिन दुगुनी करते हुये भिक्षुओं की संख्या साठ हजार तक बढ़ा दी[4] ॥७३॥ साठ हजार अन्य मतावलम्बियों को निकाल कर वह साठ हजार भिक्षुओं का प्रति दिन घर पर भोजन कराता था[4] ॥७४॥ साठ हजार भिक्षुओं के भोजन के लिये उस ने जल्दी से अच्छे २ पदार्थ बनवाये। फिर शहर को सजवाकर संघ को निमन्त्रित करके घर पर लाया ॥७५॥ भिक्षुओं के भोजन कर चुकने पर, उन के योग्य बहुत सारे उपहार देकर (राजा ने) उन से पूछा :—"बुद्ध (शास्ता) के दिये गये उपदेश कितने हैं"? मोग्गलिपुत्त-तिष्य स्थविर ने उसका उत्तर दिया। "धर्म के चौरासी (हजार) स्कन्ध (विभाग) हैं" सुनकर राजा ने कहा "मैं प्रत्येक के लिये विहार बनवा कर उन सब की पूजा करूंगा" ॥७६-७८॥ तदनन्तर राजा ने छियानवे करोड़ देकर, जम्बुद्वीप (पृथ्वी) के चौरासी हजार नगरों में वहां

[1] धम्मपद, द्वितीय वग्ग।

[2] बौद्ध भिक्षुओं के दो गुरु होते है। प्रधान को उपाध्याय और दूसरे को आचार्य्य कहते हैं।

[3] १-३२ द्रष्टव्य।

[4] श्लोक ७३-७४ प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। महावंस-टीकाकार भी यहां चुप है।

वहां के राजाओं से विहार बनवाने आरम्भ किए। और स्वयं भी अशोकाराम[1] बनवाना आरम्भ किया ॥७९-८०॥

बुद्ध धर्म में रत्नत्रय,[2] न्यग्रोध और रोगी इन मे से प्रत्येक के लिये वह हर रोज एक २ लाख खर्च करता था ॥८१॥ बुद्ध के लिए दिये गये धन से अनेक विहारों मे विविध प्रकार की स्तूप-पूजा होती थी ॥८२॥ धर्म के लिए दिये गये धन से लोग सदा धर्मधारी भिक्षुओं के पास उन की चार आवश्यकतायें ले जाते थे ॥८३॥ मानसरोवर के जल की आठ बँहगियों में से, राजा, चार संघ को, एक प्रतिदिन साठ त्रिपिटकधारी स्थविरों को, एक असन्धि मित्रा को देकर, दो अपने उपयोग मे लाता था ॥८४-८५॥ वह साठ हजार भिक्षुओं तथा सोलह हजार रानियों (स्त्रियों) को प्रति दिन नागलता की दातवन बाटता था ॥८६॥

एक दिन राजा ने चारों बुद्धों को देखे हुये, कल्पआयु वाले, दिव्य शक्ति धारी, महाकाल नामक नागराज के बारे मे सुन कर, उसे लिवा लाने के लिये सोने की जजीर का बन्धन भेजा। उस के आने पर, उसे श्वेत छत्र के नीचे सिंहासन पर बिठा, फूलों से उसका सम्मान कर तथा सोलहहजार स्त्रियों से घेर कर कहा:—"आप मुझे सद्धर्म-चक्रवर्ती, अनन्तज्ञान के स्वामी, महर्षि (बुद्ध) के दर्शन करावें" ॥८७-९०॥

नाग-राज ने बत्तीस लक्षणों[3] और अस्सी व्यञ्जनों[4] से युक्त, बड़ी आभा और तेज वाले बुद्ध-स्वरूप की रचना की; जिसे देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और आश्चर्य्य से चकित होकर कहने लगा, "यह नकली स्वरूप तो ऐसा है, तथागत का (असली) स्वरूप कैसा रहा होगा"। वह प्रेम से फूला न समाया ॥९१-९३॥ वैभवशाली महाराज (अशोक) सप्ताह भर, निरन्तर, अक्षिपूजा (अक्खीपूजा) नामक महोत्सव कराते रहे ॥९४॥

(अशोक) का धर्म-प्रवेश समाप्त

पूर्व ही में जितेन्द्रियों ने दिव्य दृष्टि से श्रद्धालु, महानुभाव राजा (अशोक) तथा मोग्गलिपुत्त को देखा था, द्वितीय संगीति के अवसर पर स्थविरों ने

[1] पटना में अशोक का बनवाया विहार।

[2] बुद्ध, धर्म, संघ—यह तीन रत्न हैं।

[3-4] बुद्ध के शरीर में महापुरुषों के शंख, चक्र आदि बत्तीस लक्षण, और अस्सी उपलक्षण थे।

भविष्य को देखते हुए जाना कि उस राजा के काल में धर्म पर सङ्कट आयेगा ॥६६॥ सारे लोकों में उस उपद्रव के रोकने की सामर्थ्य रखने वाले को ढूढते हुये, ब्रह्म-लोक से शीघ्रही च्युत होने वाले तिष्य-ब्रह्मा को देखा ॥६७॥ उन्हों ने उस महामति के पास जाकर, उस उपद्रव को शान्त करने के लिये मनुष्य-जन्म ग्रहण करने की प्रार्थना की ॥६८॥ धर्म का प्रकाश करने की इच्छा से, उसने उन्हें (मनुष्य-जन्म ग्रहण करने का) वचन दे दिया। तब उन्हों ने सिग्गव और चण्डवज्जि नामक दो युवक यतियों को कहा :-- "(आज से) एक सौ अठारह वर्ष के बाद धर्म पर सङ्कट आयेगा। हम उसे देखने के लिए नहीं रहेंगें ॥६६-१००॥ हे भिक्षुओ! तुमने इस अधिकरण (द्वितीय सगीति के कार्य्य) में भाग नहीं लिया, इसलिये दण्ड के योग्य हो, और तुम्हारे लिये दण्ड यह है ॥१०१-१०२॥ धर्म का प्रकाश करने की इच्छा से (जब) महामति तिष्यब्रह्मा मोग्गलि ब्राह्मण के घर में जन्म ले, (तब) उस समय (के) आने पर तुम में से एक उस कुमार को भिक्षु बनावे, और दूसरा उस को अच्छी तरह बुद्धवचन पढावे" ॥१०३॥

उपालि स्थविर के शिष्य दासक; जिनके शिष्य सोणक थे। इन्हीं सोणक के शिष्य यह दानों—सिग्गव और चण्डवज्जि थे ॥१०४॥

पूर्वकाल में वैशाली मे दासक नाम का (एक) श्रोत्रिय (ब्राह्मण) रहता था। तीन सौ शिष्यों में सब से प्रमुख हो, आचार्य्य के पास रह कर बारह वर्ष ही (की अवस्था) में समस्त वेद पढ, अपने साथियों के साथ घूमते हुये, एक दिन, उसने बालुकाराम[1] में रहने वाले, सगीति समाप्त कर चुके, उपालि महास्थविर को देखा। उन के पास बैठ कर उसने वेद के कुछ कठिन स्थलों के बारे में प्रश्न किया। उन्हों ने उन (स्थलों) की व्याख्या की ॥१०५-१०७॥

(फिर) स्थविर ने (धर्म के) नाम के बारे मे पूछा:—"हे माणवक! एक धर्म सब धर्मो से पीछे पैदा हुआ है, और उस में सब धर्म मिलते हैं; वह कौनसा (धर्म है)?" माणवक (विद्यार्थी) ने अपनी अज्ञानता प्रगट करते हुये पूछा:—"यह कौन सा मंत्र है?" स्थविर ने कहा, "बुद्ध मंत्र"। माणवक बोला, "आप मुझे वह मंत्र दें"। स्थविर ने उत्तर दिया, 'वह हम अपने (जैसे) भेषधारियों को (ही) देते हैं ॥१०८-११०॥ तब उसने माता, पिता तथा गुरु के पास जाकर उस मत्र के (ग्रहण करने के) लिये पूछा ॥

[1] ४-२० द्रष्टव्य।

माणवक ने अपने तीन सौ साथियों के साथ स्थविर से पहले प्रव्रज्या ग्रहण करके, पीछे उपसम्पदा ग्रहण की। हजार क्षीणास्रवों को, जिन में दासक सब से मुख्य थे, उपालि स्थविर ने सारा त्रिपिटक पढाया ॥१११-११२॥ इन के अतिरिक्त और अगणित आर्य्यों तथा दूसरे पृथकजनों ने भी उपालि स्थविर से त्रिपिटक पढा ॥११३॥

काशी[1] (देश) मे सोणक नामक एक सत्थवाह का लड़का था। वह अपने माता पिता के साथ वाणिज्य के लिये राजगृह (गरिब्बज) गया ॥११४॥ वहा, वह पन्द्रह वर्ष का कुमार अपने पचपन साथियों के साथ, वेणुवन[2] (वेलुवन) मे पहुचा ॥११५॥ वहा शिष्यों सहित दासक स्थविर को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रव्रज्या की याचना की। दासक स्थविर ने कहा, "पहले गुरु की आज्ञा ले आओ" ॥११६॥ माता पिता को आज्ञा न देते देख, उसने तीन दिन भोजन छोड कर उन की आज्ञा प्राप्त की और फिर प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये आया ॥११७॥ साथियों सहित उस कुमार ने दासक स्थविर के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त करके त्रिपिटक को ग्रहण किया ॥११८॥ स्थविर के हजार क्षीणास्रव, त्रिपिटकधारी शिष्यों मे यति सोणक सब से प्रमुख हुआ ॥११९॥

पाटलिपुत्र नगर मे सिग्गव नाम का एक बुद्धिमान् अमात्य-पुत्र था ॥१२०॥ अठारह वर्ष की आयु मे, तीनों ऋतुओं के अनुकूल तीन महलों मे रहते हुये, वह अपने मित्र चण्डवज्जि (अमात्य-पुत्र) के सहित, पाच सौ (और) आदमियों को साथ लेकर कुक्कुटाराम[3] मे सोणक स्थविर के पास गया ॥१२१-१२२॥ इन्द्रिया को वश मे करके ध्यान मे बैठे स्थविर को, वन्दना करने पर भी उत्तर न देते देखकर, उसने सघ से (इस का कारण) पूछा ॥१२३॥ सघ ने जवाब दिया :—"समाधिस्थ बोला नहीं करते।" उस ने फिर प्रश्न किया: —'समाधि से जागते कैसे हैं'? भिक्षुओं

[1] गङ्गा और सरयू के बीच का प्रदेश, जिस में आजकल बनारस, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया और आजमगढ जिलों के अधिकांश भाग सम्मिलित हैं।

[2] राजगिर में तप्त कुण्ड के उत्तर तरफ वैभार पर्वत की जड़ में, नदी के दोनों ओर एक बगीचा था; जिसे राजा बिम्बसार ने बुद्ध को अर्पण किया था।

[3] पटना में सम्भवतः रानीपुर के पूर्ववाले भींटा की जगह पर यह विहार था।

ने उत्तर दिया: "शास्ता (बुद्ध) के वाक्य से, सघ के वाक्य से, (निश्चित) समय की समाप्ति पर अथवा आयु का अन्त (समीप) होने पर समाधि से उठते हैं" ॥१२५॥ यह कहकर भिक्षुओं ने उनकी अर्हत्व-प्राप्त की सभावना देख, सघ की ओर से सूचना भेजी। वह (स्थविर) उठकर वहां आगये ॥१२६॥

कुमार ने पूछा! "भन्ते! आप क्यों नहीं बोलते थे"? उत्तर दिया, "जो भोगने योग्य है, उसे भोग रहे थे"! कुमार ने कहा, "वह भोग हमें भी भोगने दीजिये"। स्थविर ने कहा "हमारे ऐसा बनकर ही तुम उसे भोग सकते हो" ॥१२८॥ माता पिता की आज्ञा से कुमार सिग्गव और चण्डवज्जि तथा उन के साथ पाच सौ अन्य आदमियों ने भी सोणक स्थविर से प्रव्रज्या और उपसम्पदा ग्रहण की ॥१२६॥ उपाध्याय सोणक स्थविर के पास ही रह कर उन दोनों ने त्रिपिटक ग्रहण किया, और साथ ही बड़ उत्साह के साथ छः अभिज्ञाओं[1] का भी प्राप्त किया ॥१३०॥

तिस्स (तिष्य) को पैदा हुआ जानकर, सिग्गव स्थविर उसके घर में सात वर्ष तक नियम से (भिक्षा के लिए) जाते रहे। सात वर्ष मे उन को एक बार, "जाओ" शब्द भी प्राप्त नहीं हुआ। आठवे वर्ष उन को उस घर से 'जाओ' शब्द मिला ॥१३१-१३२॥ घर में प्रवेश करते हुये मोग्गलि ब्राह्मण ने, उन को (अपने घर मे) निकलते देख कर पूछा, "हमारे घर से कुछ मिला"? उन्होंने उत्तर दिया 'हा" ॥१३३॥ (मोग्गलि) ब्राह्मण ने घर मे पूछ कर, फिर दूसरे दिन घर पर आये स्थविर को कहा, "आप झूठ बोले" ॥१३४॥ (लेकिन) स्थविर के उत्तर से ब्राह्मण का मन प्रसन्न हुआ, और वह अपने लिये बने भोजन मे से प्रति दिन उन को भिक्षा देता था ॥१३५॥ क्रम से सभी घर वाले श्रद्धालु हो गये, और स्थविर को घर में बिठाकर प्रतिदिन भोजन कराने लगे ॥१३६॥

इस तरह समय व्यतीत होने पर, कुमार सोलह वर्ष का हो गया, और उसने तीनों वेदों के समुद्र को पार कर लिया ॥१३७॥

शायद आज इस तरह बात-चीत हो सके; इस लिये स्थविर ने (उस दिन) घर में ब्रह्मचारी के आसन के अतिरिक्त और सभी आसनों को अपने (योग-बल से) गुम कर दिया ॥१३८॥ ब्रह्मलोक से आने के कारण वह

---

[1] १ ऋद्धिविधज्ञान २ दिव्यश्रोत्र ज्ञान ३ पूर्वनिवासानुस्मृति ४ दिव्य चक्षु ज्ञान ५ परचित्तविजानन ज्ञान ६ आस्रवक्षय ज्ञान [द्रष्टव्य ४-१२]

(ब्रह्मचारी) शुद्धि-प्रिय था। इस लिये उस का एक आसन अलग रक्खा[1] रहता था ॥१३९॥ घर-वालों ने स्थविर को खड़े देखकर, दूसरा आसन न मिलने से, जल्दी में उन्हें ब्रह्मचारी का ही आसन दे दिया ॥१४०॥ ब्रह्मचारी ने (अपने) आचार्य्य के पास से लौट कर (स्थविर) को अपने आसन पर बैठा देख, क्रोध से कड़ी बातें कहीं ॥१४१॥ स्थविर ने उसे पूछा:— "ब्रह्मचारी क्या मंत्र जानते हो"? उसने भी उलट कर स्थविर से वही प्रश्न किया ॥१४२॥ स्थविर के यह कहने पर कि 'जानता हूं;' उसने स्थविर से बेद के कुछ कठिन स्थल पूछे। स्थविर ने उन की व्याख्या कर दी ॥१४३॥ (क्योंकि) बेद-पारंगत तो वह गृहस्थ में हीं हो चुके थे; और प्रतिसम्भिदा-प्राप्त तो किस की व्याख्या नहीं कर सकता? ॥१४४॥ "जिस का चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता, उसका चित्त निरुद्ध होगा, उत्पन्न न होगा, लेकिन जिसका चित्त निरुद्ध होगा उत्पन्न नहीं होगा; उस का चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता" ॥१४५॥

विद्वान् स्थविर ने चित्तयमक[2] का उक्त प्रश्न उसे से पूछा। यह उस (ब्रह्मचारी) के लिये अन्धेरा सा था। तब उसने स्थविर से पूछा। "हे भिक्षु! इस मत्र का क्या नाम है"? स्थविर ने कहा "बुद्ध मन्त्र"। ब्रह्मचारी बोला:— "मुझे इसे दो"। स्थविर ने उत्तर दिया, "यह मत्र मैं (केवल) अपने (जैसे) भेषधारी को देता हूं" ॥१४६-१४७॥ मंत्र पाने के लिए उसने माता पिता की आज्ञा ले प्रव्रज्या ग्रहण की। स्थविर ने उस को यथायोग्य प्रव्रजित करके योग-विधि दी ॥१४८॥

उस महामति ने 'भावना' करते हुये थोड़े ही काल में स्रोतापत्ति फल[3] को प्राप्त कर लिया। स्थविर ने यह मालूम करके उसे अभिधम्म और सुत्तपिटक पढने के लिये चण्डवज्जि स्थविर के पास भेज दिया। उसने वहा जाकर, उन (दोनों पिटकों) को ग्रहण किया ॥१४९-१५०॥

तदनन्तर यति सिग्गव ने उसे उपसम्पन्न कर, विनय पढ़ा; एक बार दुबारा सुत्त और अभिधम्म पिटक पढाया ॥१५१॥

---

[1] "वासयित्वा लगीयति"—शब्दार्थ है बसा कर लगा रहता था। श्लोक कुछ संदिग्ध है। पाली-टिकाकार भी इस पर चुप है।

[2] अभिधम्म पिटक के यमक ग्रन्थ का एक प्रकरण है।

[3] द्रष्टव्य १-३३।

उस युवक तिष्य ने विपस्सना[1] बढ़ा कर, कुछ समय में षडभिज्ञता प्राप्त की और वह स्थविर-भाव को प्राप्त हुआ ॥१५२॥

(आगे चल कर यह तिष्य स्थविर) चाँद सूर्य की तरह अतिप्रसिद्ध हुये, और संसार में उन का वचन बुद्ध-वचन की तरह माना गया ॥१५३॥

मोग्गलिपुत्रतिष्य स्थविर का जन्म-वृत्तान्त समाप्त

एक दिन शिकार खेलते हुये उपराज (कुमार तिष्य) ने बन में क्रीड़ा करते हुये मृगों को देख कर सोचा कि बन में घास खा कर रहने वाले यह मृग भी जब इस प्रकार मौज करते हैं; तो सुख-पूर्वक आहार-विहार करने वाले भिक्षु क्यों न मौज करते होंगे? ॥१५४-१५५॥

घर आकर उसने अपना यह विचार महाराज (अशोक) से कहा। उन्हों ने उसे शिक्षा देने की इच्छा से एक सप्ताह के लिये राजा बना दिया; और कहा, "एक सप्ताह तक तुम इस राज को भोगो, इस के बाद मैं तुम को मार दूंगा" ॥१५६-१५७॥ एक सप्ताह के बीतने पर, जब महाराज ने पूछा "कुमार! तुम दुबले क्यों हो गये?" तो उस ने कहा "मरने के भय से"। तब राजा ने कहा, "हे तात! एक सप्ताह के बाद मरने के भय से तुम ने मौज नहीं की, तो सदैव मृत्यु का ध्यान रखने वाले, यह यति (भिक्षु) कैसे मौज कर सकते हैं?" ॥१५८-१५९॥ भाई का यह वचन सुनकर उसकी (बुद्ध-) धर्म में आस्था हुई।

एक बार शिकार के समय उस ने संयमी, अनास्रव महाधर्मरक्षित स्थविर को एक वृक्ष की जड़ में बैठे, और उन पर एक नागराज को साखु वृक्ष की शाखा से पंखा करते हुये देखा ॥१६०-१६१॥ बुद्धिमान् (राजकुमार-तिष्य) सोचने लगा, "मैं किस दिन बुद्धधर्म में प्रव्रजित हो, इन स्थविर की तरह बन में विचर सकूंगा"? ॥१६२॥ स्थविर, राजकुमार की (धर्म में) आस्था बढ़ाने के लिये, आकाश-मार्ग द्वारा अशोकाराम के तालाब के जल पर आकर खड़े हुये। वहाँ (उन्हों ने) सुन्दर चीवरों (वस्त्रों) को आकाश में छोड़कर, तालाब में प्रवेश कर, अपने शरीर को शुद्ध किया १६३-१६४॥ स्थविर की इस सिद्धि को देखकर उपराज की धर्म में आस्था बढ़ी, और उस बुद्धिमान् ने निश्चय किया, "कि (मैं) आज ही प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा" ॥१६५॥

---

[1]सच्ची अध्यात्म-दृष्टि को विपस्सना कहते हैं। अर्हतों की इस योग्यताओं में एक यह भी है।

उस ने, महाराज अशोक के पास जाकर उन से प्रव्रजित होने की आज्ञा मागी। अशोक उसे प्रव्रजित होने से न रुकते देख, बड़े जलूस के साथ विहार को ले गये। वहा वह महाधर्मरक्षित स्थविर के पास प्रव्रजित हुआ, और उसके साथ चार लाख मनुष्य और भी प्रव्रजित हुये। जो उस से पीछे प्रव्रजित हुये, उन की तो गिनती (ही) नहीं है ॥१६८॥

राजा का अग्निब्रह्मा नाम का एक भानजा था, जो कि राजा की लड़की सङ्घमित्रा का पति था ॥१६९॥ उन दोनों के पुत्र का नाम सुमन था। उस (अग्निब्रह्मा) ने राजा से आज्ञा माग कर उपराज के साथही प्रव्रज्या ग्रहण की। लोगों के महान् हित के लिये उपराज की यह प्रव्रज्या महाराज अशोक के अभिषेक के चतुर्थ वर्ष मे हुई ॥१७०-१७१॥ इसी वर्ष उपराज ने, जिसकी अर्हत्व-प्राप्त निश्चित थी, उपसम्पन्न हो, प्रयत्न करके छः अभिज्ञाओं सहित अर्हत्पद को प्राप्त किया ॥१७२॥

जो विहार बनवाने आरम्भ किये थे, वह तीन वर्षों मे सभी नगरों मे अच्छी तरह बन कर तैयार हो गये ॥१७३॥ पटना मे विहार बनवाने के अध्यक्ष इन्द्रगुप्त स्थविर के ऋद्धिबल से वह अशोकाराम शीघ्र बन कर तैयार हो गया ॥१७४॥ राजा ने भगवान् के निवास से पवित्र हुये स्थानों पर, जहा तहा सुन्दर चैत्य बनवाये ॥१७५॥ चौरासी हजार नगरों से एक ही दिन लेख (समाचार) आया कि "विहार बन कर तैयार हो गया" ॥१७६॥

इन लेखों को सुनकर महान तेजस्वी और पराक्रमी महाराज (अशोक) ने, सब आरामो (विहारो) का (प्रतिष्ठा-) महोत्सव करने की कामना से नगर मे ढिंढोरा पिटवा दिया, कि आज से सातवे दिन सभी देशों में, सभी स्थानों पर, सब आरामों का महोत्सव मनाया जाय ॥१७७-१७८॥ पृथ्वी (राज्य) मे योजन २ पर महादान दिया जाय। गाव के आराम (विहार) और मार्ग सजाये जाये। सभी जगह विहारों मे भिक्षु-संघ के लिये समय और सामर्थ्यानुसार बड़े बड़े दान दिये जाये। दीपमाला और पुष्पमाला से अलकृत कर, नाना वाद्यों के सहित अनेक प्रकार के उपहारों को लेकर, (लोग) उपोसथ व्रत धारण करें, धर्म सुने और (भी) अनेक प्रकार की पूजा करें। १७९-१८२॥ सब लोगों ने सभी जगह (राज-) आज्ञा के अनुसार और उस से भी बढ़ कर, अधिक दिव्य मनोरम पूजा की ॥१८३॥

उस (महोत्सव के) दिन सभी अलकारों से युक्त महाराज (अशोक) अपने रनिवास, मन्त्रियों और सेना के सहित पृथ्वी को चूर्ण करते हुये की तरह, अशोकाराम में आये; और उत्तम सघ की वन्दना करके, सङ्घ के बीच में

खड़े हुये ॥१८४-१८५॥ उस समागम में अस्सी करोड़ भिक्षु एकत्रित थे, जिन में एक लाख क्षीणास्रव यति थे ॥१८६॥ (और) नव्वे लाख भिक्षुणियां थीं, जिन में एक हज़ार क्षीणास्रवायें थीं ॥१८७॥

धर्म्माशोक राजा की धर्म में आस्था बढाने के लिये उन क्षीणास्रव भिक्षुओं ने लोक-विवरण नामक चमत्कार दिखाया ॥१८८॥ पाप-कर्म करने की वजह से जो (अशोक) पहले चण्डाशोक नाम से प्रसिद्ध थे, वही पीछे पुण्य-कर्म करने से धर्म्माशोक के नाम से प्रसिद्ध हुये ॥१८९॥ महाराज अशोक ने समुद्रपर्य्यन्त जम्बुद्वीप को तथा नाना प्रकार की पूजा आदि से सुशोभित विहारों को ('लोक-विवरण' सिद्धि के प्रताप से) देखा ॥१९०॥

फिर उन्हें देखने से अतीव सतुष्ट हुये राजा ने बैठ कर संघ से पूछा :—"भन्ते ! बुद्ध धर्म में किस का त्याग महात्याग है ?" ॥१९१॥ मोग्गलिपुत्त (तिस्स) ने राजा के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा, "भगवान् (बुद्ध) के जीवन-काल में भी तेरे समान कोई त्यागी नहीं था" ॥१९२॥ इसे सुनकर सन्तुष्ट हुये राजा ने फिर पूछा, "क्या मेरे समान (त्यागी) धर्म का सगा (दायाद) कहला सकता है ?" ॥१९३॥ धर्मधुरन्धर स्थविर ने राजपुत्र महेन्द्र और राजकुमारी सङ्घमित्रा के भविष्य को जान तथा उनके द्वारा धर्म का हित होने वाला देख कर, राजा को कहा, "राजन् ! तुम्हारे जैसे महात्यागी को भी धर्म का सगा (दायाद) नहीं कह सकते, दाता (दायक) ही कह सकते हैं। किन्तु जो अपने लड़के अथवा लड़की को धर्म में प्रव्रजित कराता है, वह धर्म का दायाद और दायक दोनों होता है" ॥१९४-१९७॥ तब राजा ने धर्म का सगा (दायाद) बनने की इच्छा से, वहीं खड़े हुये महेन्द्र और सङ्घमित्रा को पूछा, "तात ! क्या प्रव्रज्या ग्रहण करोगे ? प्रव्रज्या बड़ी महान् है" । पिता के इस वचन को सुन कर उन दोनों ने कहा, "देव ! यदि आप की आज्ञा (इच्छा) हो, तो हम आज ही प्रव्रजित हो सकते हैं। (हमारे) भिक्षु बनने से हमें और आप दोनों को (पुण्य) लाभ होगा" ॥२००॥ उपराज की प्रव्रज्या के समय से (ही) महेन्द्र और अग्निब्रह्मा[1] की प्रव्रज्या के समय से ही सङ्घमित्रा प्रव्रजित होने का निश्चय कर चुकी थी ॥२०१॥ राजा, महेन्द्र को उपराज बनाना चाहता था, किन्तु प्रव्रज्या को उस (उपराज-पद) से भी अधिक महत्वपूर्ण समझ, उसने इसी को पसन्द किया ॥२०२॥ बुद्धि, रूप और बल से युक्त प्यारे महेन्द्र और पुत्री

---

[1]देखो ५, १६७-१७० ।

सङ्घमित्रा को, राजा ने बड़े समारोह के साथ प्रव्रजित कराया ॥२०३॥ प्रव्रज्या के समय राज-पुत्र महेन्द्र बीस वर्ष के और राजकुमारी सङ्घमित्रा अठारह वर्ष की थीं ॥२०४॥ महेन्द्र की प्रव्रज्या और उपसम्पदा उसी दिन हो गई तथा सङ्घमित्रा की प्रव्रज्या और शिक्षा-दान[1] भी उसी दिन हो गया ॥२०५॥ कुमार के उपाध्याय मोग्गलिपुत्र (तिष्य) और प्रव्रज्या देने वाले महादेव (स्थविर) हुये। मध्यमिक (स्थविर) ने कर्मावाचा[2] पढ़ा। महात्मा (महेन्द्र) ने उपसम्पन्न होते समय ही प्रतिसम्भिदा सहित अर्हत्पद प्राप्त कर लिया ॥२०६-२०७॥ सङ्घमित्रा की उपाध्याया प्रसिद्ध धर्मपाला और आचार्या आयुपाला हुई। समय पाकर सङ्घमित्रा भी अनास्रवा (अर्हत्) हो गई ॥२०८॥ धर्मप्रकाशक, लङ्काद्वीपोपकारक महेन्द्र और सङ्घमित्रा दोनों की प्रव्रज्या महाराज (धर्म) अशोक के (शासन के) छठे वर्ष मे हुई ॥२०९॥ लङ्काद्वीप पर कृपा करने वाले महामहेन्द्र ने, उपाध्याय के पास रह कर, तीन वर्ष मे तीनों पिटक ग्रहण किये ॥२१०॥ भिक्षुणी (सङ्घमित्रा) और भिक्षु महेन्द्र चाँद और सूर्य की तरह बुद्धधर्म रूपी आकाश को सुशोभित करते रहे ॥२११॥

पूर्व समय मे पाटलिपुत्र के बन मे विचरते हुये, किसी बन-चर ने कुन्ती नाम की एक किन्नरी से सहवास किया ॥२१२॥ उस सहवास मे उस किन्नरी को दो पुत्र पैदा हुये, जिन मे से बड़े का नाम तिष्य और छोटे का सुमित्र रखा गया ॥२१३॥ काल पाकर उन दोनों ने महावरुण स्थविर के पास प्रव्रजित होकर, छः अभिज्ञाओं के सहित अर्हत् पद प्राप्त किया ॥२१४॥

(एक बार) किसी विषैले कीड़े के काटने से जेठे भाई के पैर में पीड़ा उत्पन्न हुई। जब छोटे भाई ने पूछा—"औषध क्या चाहिये?" तो उसने कहा—"पसर (चुल्लू) भर घी" ॥२१५॥ किन्तु सुमित्र ने राजा को पथ्य के लिये कहने और भोजन-काल के बाद घी के लिये जाने में आनाकानी की ॥२१६॥ तब तिष्य स्थविर ने सुमित्र स्थविर को कहाः—"पिण्डपात[3] में जो घी तुम्हें प्राप्त हो, उसे (मेरे पास) ले आना" ॥२१७॥ लेकिन पिण्डपात के समय उसे पसर भर घी मिला (ही) नहीं; जिस से (काल पाकर) रोग

---

[1] 'विनय' के अनुसार स्त्री को उपसम्पदा पाने के पूर्व दो वर्ष तक उम्मेदवार रहना पड़ता है।

[2] भिक्षुओं की उपसम्पदा में एक क्रिया।

[3] मध्याह्न काल की भिक्षा।

का सौ घड़े घी से भी दूर करना असाध्य हो गया ॥२१८॥ उसी व्याधि के कारण मरणासन्न हो गये स्थविर ने (दूसरे को) अप्रमाद से रहने का उपदेश देते हुये, अपने मन में निर्वाण-प्राप्ति का निश्चय किया ॥२१९॥ तेजोध्यान के द्वारा आकाश में आमन लगा, स्वेच्छानुसार शरीर को थाम कर (स्थविर) निर्वाण को प्राप्त हुये ॥२२०॥ शरीर से निकली हुई योगाग्नि ने स्थविर के मास को जला कर भस्म कर दिया। हड्डिया नहीं जलीं ॥२२१॥

महाराज (अशोक, स्थविर की इस प्रकार की निर्वाण-प्राप्ति को सुनकर, जनसमूह के सहित अशोकाराम मे आये ॥२२२॥ (वहा) हाथी के कन्धे पर खड़े होकर अशोक ने उन अस्थियों को (जो आकाश में ठहरी हुई थीं) नीचे उतारा और धातु-सत्कार करके, सघ से स्थविर की व्याधि पूछी ॥२२३॥ उसे सुनकर राजा को बडा दुःख हुआ। उन्होंने नगर के द्वारों पर कुण्ड बनवा कर उन्हें औषधियों से भरवा दिया और 'भिक्षुसघ को औषध मिलना दुर्लभ न हो' विचार से वे प्रतिदिन भिक्षुसंघ को औषध दिलवाते रहे ॥२२४-२२५॥ सुमित्र स्थविर चक्रमण-स्थान पर टहलते टहलते निर्वाण को प्राप्त हो गये। इससे भी लोगों का धर्म में अनुराग बढा ॥२२६॥ कुन्ती-पुत्र यह दोनों लोक-हितकारी स्थविर महाराज अशोक के (शासन के) आठवे वर्ष मे निर्वाण को प्राप्त हुये ॥२२७॥

इस समय से सघ को बहुत पूजा मिलने लगी; क्योंकि पीछे से धर्म में अनुरक्त हुये लोग भी सघ को पूजा देने लगे ॥२२८॥ तैर्थिक (अन्य मतावलम्बी साधु) (भी), जिन का लाभ-सत्कार घट गया था, लाभ के लोभ से अपने आप ही काषाय वस्त्र रग कर भिक्षुओं के साथ रहने लगे ॥२२९॥ वे अपने अपने सिद्धान्तों को बुद्ध का सिद्धान्त कह कर प्रगट करते और अपने मनमाने ढग से रहते ॥२३०॥

तब स्थिर-गुणों से युक्त, दूरदर्शी, मोग्गलि-पुत्र स्थविर, धर्म पर आई हुई इस कठिन विपत्ति के शान्त करने का समय निकट न देखकर, अपना भिक्षु-गण (जमात) महेन्द्र स्थविर को सौंप, गङ्गा के ऊपर की ओर अहोगङ्ग पर्वत[1] पर चले गये और सातवर्ष तक वहीं ध्यानमग्न होकर एकान्तवास करते रहे ॥२३३॥

दुर्वचनी तैर्थिकों की अधिकता के कारण भिक्षु शान्ति-पूर्वक उनका शासन

[1] ४-१८ द्रष्टव्य।

नहीं कर सकते थे ॥२३४॥ इसलिये उन्हों (भिक्षुओं) ने जम्बुद्वीप के सभी विहारों में सात वर्ष तक उपोसथ[1] और प्रवारण[2] नहीं की ॥२३५॥

महाराज (धर्म) अशोक ने यह सुन कर एक आमात्य को अशोकाराम भेजा और कहा "(जाकर) इस झगड़े का निबटारा करो और सघ से मेरे आराम में उपोसथ कराओ" ॥२३६-२३७॥ वहा जा उस मूर्ख ने भिक्षु-सघ को एकत्र कर, राजा का हुकम सुनाया, "उपोसथ करो" ॥२३८॥ भिक्षु-सघ ने उस मूढ-मति को उत्तर दिया, "हम तैर्थिकों के साथ उपोसथ नहीं कर सकते" ॥२३९॥ उस अमात्य ने तलवार से एक ओर से कुछ स्थविरों का सिर काट कर कहा, "मैं उपोसथ कराके छोड़ूगा" ॥२४०॥ राजा के भाई तिष्य स्थविर, इस कृत्य को देख जल्दी से जाकर उस (अमात्य) के आसन के समीप बैठ गये ॥२४१॥ (तिष्य) स्थविर को देख, अमात्य ने (स्थविरों का मारना छोड़) राजा के पास आकर सब वृत्तान्त निवेदन किया, जिसे सुन कर राजा बड़ा दुःखी हुआ ॥२४२॥ वह घबराया हुआ शीघ्र ही सघ के पास गया और पूछने लगा—"इस कुकर्म का दोषी कौन है?" उन में से कुछ, जो अपडित थे, बोले, "तेरा दोष है"। कुछ ने कहा, "दोनों का है"। किन्तु जो पण्डित थे, उन्हों ने कहा, "तुम्हारा दोष नहीं है" ॥२४३-२४४॥ उसे सुनकर महाराज (अशोक) ने पूछा :—"क्या कोई ऐसा सामर्थ्यवान् भिक्षु है जो मेरा शकाओं को दूर कर सके और (साथ ही) धर्म का सग्रह कर सके?" ॥२४५॥ सघ ने उत्तर दिया, "हा राजन्! महापुरुष मोग्गलिपुत्र (तिष्य) स्थविर हैं"। (अशोक) को इससे सतोष हुआ। उसी दिन उसने एक एक हजार भिक्षुओं के सहित चार स्थविरों को और एक एक हज़ार आदमियों के सहित चार अमात्यों को, अपने सदेशे के साथ स्थविर (मोग्गलिपुत्र तिष्य) को लिवा लाने के लिये भेजा। उन्होंने जाकर प्रार्थना की; किन्तु वे नहीं आये ॥२४६-२४८॥

राजा ने यह सुनकर, फिर आठ स्थविरों और आठ अमात्यों को, एक एक हज़ार भिक्षुओं और एक एक हज़ार आदमियों के साथ (वहा) भेजा। किन्तु पहले की तरह ही वे नहीं आये ॥२४९॥ तब राजा ने पूछा, "स्थविर किस प्रकार आ सकते हैं?" भिक्षुओं ने स्थविर के आ सकने का उपाय बतलाया ॥२५०॥

---

[1] भिक्षुओं का इकट्ठे होकर परस्पर अपराध स्वीकृत करना।

[2] वर्षा-काल के बाद आश्विन की पूर्णिमा के उपोसथ को प्रवारणा कहते हैं

राजा ने फिर सोलह स्थविरों और सोलह अमात्यों को पहले ही की तरह एक एक हज़ार भिक्षुओं और एक एक हज़ार आदमियों के साथ (स्थविर को लिवा लाने के लिये) भेजा और कहा, "यद्यपि स्थविर वृद्ध हैं, तो भी वह सवारी पर नहीं चढ़ेंगे; इसलिये उन्हें गङ्गा के मार्ग से नाव पर लाना" ।।२५३।। उन्होंने जाकर स्थविर से वैसे ही (जैसे भिक्षुओं ने बताया था) निवेदन किया ; जिसे सुन कर वे चलने के लिये उठ खड़े हुये। वे लोग नाव द्वारा स्थविर को ले आये। राजा स्थविर की अगवानी करने के लिये आगे गया और जाघ भर पानी में प्रवेश करके, स्थविर को नाव से उतारने के लिये अपना दहिना हाथ गौरव सहित आगे बढ़ाया ।।२५५।।

पूजनीय दयालु स्थविर, दया करके, राजा के दहिने हाथ का सहारा लेकर नाव से उतरे ।।२५६।। राजा स्थविर को रतिवर्धन उद्यान में ले गया। वहा स्थविर के पाव को धोया और माखा[1]। फिर पास बैठकर स्थविर का योग-बल जाचने के लिये राजा ने कहा—"भन्ते! मैं कोई सिद्धि (चमत्कार) देखना चाहता हूँ"। 'कौनसी सिद्धि ?" पूछने पर राजा ने कहा, "भूकम्प"। स्थविर ने पूछा, "सारी भूमि का अथवा एक भाग का ? यदि एक भाग का, तो कितने भाग का (भूकम्पन) देखना चाहते हो ?" ।।२५६।। राजा ने पूछा, "दोनों में कौन कठिन है ?" "एक भाग का अधिक कठिन है" सुन कर राजा ने कहा, "उसी को देखना चाहता हूँ" ।।२६०।। रथ, घोड़ा, आदमी और जल-भरी थाली चारों ओर एक योजन घेरे की सीमा पर रखवा, स्थविर ने वहा बैठे हुये राजा को, उन चारों चीज़ों के केवल आधे हिस्से (अन्दर की ओर के हिस्से) के सहित योजन भर पृथिवी को कपा कर दिखाया ।।२६१-२६२।।

(फिर) राजा ने स्थविर से पूछा, "अमात्य द्वारा भिक्षुओं के मारे जाने का पाप हमको लगेगा अथवा नहीं ?" ।।२६३।। स्थविर ने राजा को तित्तिरजातक[2] सुना कर समझाया "कर्म दोषयुक्त नहीं होता, जब तक उस के साथ मन दोषयुक्त न हो" ।।२६४।।

स्थविर एक सप्ताह तक मनोहर राजोद्यान में ठहर कर राजा को मङ्गलमय बुद्धधर्म की शिक्षा देते रहे ।।२६५।।

---

[1] 'मक्खेत्वा', यहां मक्ख धातु का प्रयोग उसी अर्थ में किया गया है जिस में कि बिहार में 'तेल माखना' होता है।

[2] जातक ३७ ; ११७ ; ३१९ ; ४३८।

उसी सप्ताह राजा ने दो यक्षों को भेजकर पृथ्वी भर के तमाम भिक्षुओं को एकत्र कराया ।।२६६।। सातवें दिन मनोरम अशोकाराम में जाकर सारे भिक्षु-संघ का इकट्ठ किया ।।२६७।। (वहां) राजा ने स्थविर सहित एकान्त में एक कनात की ओट में बैठ, एक एक मत के भिक्षु को बारी बारी से बुला कर पूछा—"भन्ते! बुद्ध का क्या वाद (मत) था?" उन्हों ने अपने अपने मत के अनुसार शाश्वत आदि दृष्टियों (मन्तव्यों) को कहा ।।२६८-२६९।। राजा ने उन सब मिथ्या-दृष्टिवालों की प्रव्रज्या छीन ली। इस प्रकार निकाले हुये (भिक्षुओं) की संख्या साठ हजार हुई ।।२७ ।।

राजा ने धार्मिक भिक्षुओं से भी पूछा—"सुगत (बुद्ध) का क्या वाद था?" उन्हों ने उत्तर दिया, "विभजवादी (विभज्यवादी)[1] थे"। तब राजा ने स्थविर (मोग्गलिपुत्त) से पूछा, "भन्ते! क्या सम्बुद्ध विभजवादी थे?" उन्हों ने कहा, "हां"। फिर राजा ने सतुष्ट हो स्थविर से कहा, "भन्ते! अब संघ शुद्ध हो गया है; इस लिये संघ उपोसथ करे"। संघ की रक्षा का प्रबन्ध करके राजा नगर को लौट आया। तब सारे संघ ने एकत्र होकर उपोसथ किया ।।२७१-२७४।।

स्थविर ने बहु-संख्यक भिक्षु-संघ में से एक हजार बुद्धिमान्, षडभिज्ञ, त्रिपिटक के जानने वाले और पटिसम्भिदा[2]-प्राप्त भिक्षुओं को सद्धर्म संग्रह करने के लिये चुना और उनके साथ अशोकाराम में ही सद्धर्म-संग्रह (संगीति) किया ।।२७५-२७६।। महाकाश्यप स्थविर ने और यश स्थविर ने जैसे उन (दो) धर्म-संगीतियों को कराया, वैसे ही तिष्य स्थविर ने (भी) वह (तीसरी) धर्म-संगीति कराई ।।२७७।।

स्थविर ने उस संगीति में अन्य मतों का मर्दन करने के लिये कथावस्तु प्रकरण[3] (कथावत्थुपकरण) का प्रतिपादन किया ।।२७८।।

इस प्रकार महाराज (अशोक) की संरक्षता मे एक हजार भिक्षुओं ने नौ मास में यह (तीसरी) धर्म-संगीति समाप्त की ।।२७९।। राजा के (शासन के)

---

[1] 'थेरवाद'—जिसको हीनयान भी कहते हैं—की सर्वास्तिवाद आदि अनेक शाखायें हैं। जिन से पृथक् करने के लिये पाली बौद्ध-धर्म को 'विभजवाद' कहते हैं; जिसका अर्थ है:—"विभाग करके ग्रहण करना"।

[2] १ अर्थ-ज्ञान २ धर्म-ज्ञान ३ निरुक्ति-ज्ञान ४ प्रतिभान-ज्ञान।

[3] अभिधम्म पिटक के सात ग्रन्थों में पांचवां ग्रन्थ, द्रष्टव्य १-३०।

सत्रहवें वर्ष में ७२ वर्ष की आयु वाले उस स्थविर ने महाप्रवारणा को वह संगीति समाप्त की ॥२८०॥

संगीति की समाप्ति पर मानों धर्म की स्थापना पर साधुवाद कहने के लिये पृथ्वी कंपित हुई ॥२८१॥

जब कृतकृत्य स्थविर ने श्रेष्ठ, मनोज्ञ ब्रह्मलोक को तुच्छ समझ, छोड़ सद्धर्म के हित के लिये संसार में जन्म ग्रहण किया, तो फिर कौन दूसरा है जो सद्धर्म कृत्य में प्रमाद करेगा ?

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का "तृतीय-(धर्म)-संगीत" नामक पञ्चम परिच्छेद ।

षष्ठ परिच्छेद

विजय आगमन

पूर्व-काल में वङ्गदेश[1] के, वङ्ग नगर में (एक) वङ्ग राजा था। कलिङ्ग-राज की लड़की उसकी रानी थी ॥१॥ उस देवी से राजा को एक लड़की हुई, जिसके विषय में ज्योतिषियों ने कहा, "इसका मृगराज (शेर) से सहवास होगा" ॥२॥ वह अतीव रूपवती और अतीव काम-परायण थी। उस घृणित-कन्या ने राजा और रानी को लज्जित किया ॥३॥

स्वच्छन्द जीवन के सुख की इच्छा से वह अकेली घर से निकल कर, चुपचाप, मगध जाने वाले बजारों[2] के साथ चली गई ॥४॥ लाळ[3] (लाट) देश के जंगल में शेर ने उन बनजारों पर हमला किया। और तो सब दूसरी दूसरी तरफ भागे, किन्तु वह (राजकुमारी) जिधर से शेर आया था, उसी तरफ भागी ॥५॥

शिकार लिये जाता हुआ शेर, दूर से उसे देखकर, उस पर मोहित हो गया। और कान गिराये हुये, पूछ हिलाता हुआ, उसके पास आया ॥६॥ उसने सिंह को देखकर ज्योतिषियों से सुने बचन का स्मरण किया और भय रहित होकर, प्यार करती हुई उसके अङ्गों का स्पर्श करने लगी ॥७॥ उस के स्पर्श से अति अनुरक्त हो शेर, उसे अपनी पीठ पर बिठा कर गुफा में ले गया, और वहा ले जाकर उस से सहवास किया। उस के सहवास से समय पाकर राजकुमारी को दो जमुवे बच्चे—एक लड़का और एक लड़की—हुये ॥८-९॥ लड़के के हाथ पाव सिंह के सदृश थे, इसलिये उसका नाम सिंहबाहु रखा; और लड़की का सिंहसीवली ॥१०॥

सोलह वर्ष की आयु होने पर लड़के ने माता से शंका की, "मा! तुम्हारा और हमारे पिता का रूप एक सा क्यों नहीं है?" ॥११॥ माता ने

---

[1] बङ्गाल।

[2] मूल में सत्थ (संस्कृत, सार्थ) है, जिस के लिये उर्दू शब्द "कारवाँ" विशेष उपयुक्त होगा।

[3] मध्य और दक्षिण गुजरात (एपिग्राफिका इण्डिका भाग ४; पृ० २४६)

लड़के से सब हाल कह दिया। लड़का बोला, "(फिर यहां से) चलें क्यों न चलें ?" उस ने उत्तर दिया, "तेरे पिता ने गुफा (का द्वार) पत्थर से ढक दिया है" ॥१२॥ वह (लड़का) उस गुफा के भारी पत्थर को अपने कन्धे पर उठा कर, एक ही दिन पचास योजन गया और वापिस आया ॥१३॥

(एक दिन) जब शेर शिकार के लिये गया हुआ था, सिंहबाहु मां को दहिने कन्धे पर और छोटी बहिन को बायें कन्धे पर बिठाकर वहां से शीघ्र निकल भागा ॥१४॥ (शरीर को) वृक्षों की शाखाओं से ढाक कर, वे एक सीमा पर के गांव में पहुंचे। वहां उस समय राजकुमारी के मामा का बेटा[1] रहता था ॥१५॥ वह बङ्ग-राज का सेनापति वहां सीमान्त को ठीक करने के लिये आया था और उस समय एक बरगद के नीचे बैठा, काम करवा रहा था ॥१६॥

उन को (आते) देखकर, सेनापति ने पूछा। उन्हों ने कहा, "हम बनवासी हैं"। सेनापति ने उन को वस्त्र दिलवाये। वे वस्त्र बहुमूल्य वस्त्र हो गये। पत्तों पर उन को भात दिलवाया। उन के पुण्य के प्रताप से वे पत्ते सुवर्ण-पात्र बन गये ॥१६-१८॥ सेनापति ने विस्मित होकर पूछा—"तुम कौन हो ?" राजकुमारी ने अपनी जाति और गोत्र निवेदन किया ॥१९॥ तब सेनापति (अपनी) फुफेरी बहन को बङ्ग नगर ले गया और अपनी स्त्री बनाया ॥२०॥

(उधर) सिंह ने जल्दी से गुफा में वापिस आकर, तीनों जनों को नहीं देखा पुत्र-शोक से पीड़ित हो, उसने न कुछ खाया न पिया ॥२१॥ उन बच्चों को खोजता हुआ, वह सीमान्त के ग्रामों में पहुंचा। जिन जिन ग्रामों में वह गया, वे वे ग्राम खाली होते गये ॥२२॥ सीमान्त वासियों ने राजा से जाकर निवेदन किया, "हे देव ! तुम्हारे राष्ट्र को एक सिंह बहुत कष्ट दे रहा है। उस की रोक करें" ॥२३॥

उस को रोकने वाला कोई न मिला। (तब) राजा ने एक हाथी के कंधे पर एक हजार (मुद्रा) रखकर, उसे नगर में फिरवाया ; और उस के साथ घोषणा कराई, "जो कोई सिंह को पकड़ लाये ; वह यह मुद्रा ले ले"। उसी प्रकार फिर दो हजार की, और फिर तीन हजार को घोषणा कराई। सिंहबाहु को उसकी माता ने दो बार रोका ; (किन्तु) तीसरी बार (उसने) माता की आज्ञा के बिना ही अपने पिता को मारने के लिये तीन हजार मुद्रा

---

[1] उसका नाम था अनुरक्त (महावंश टीका)।

ले ली ॥२४-२६॥ लोग कुमार को राजा के सामने ले गए। राजा ने कुमार को कहा, "यदि तू सिंह को पकड़ लेगा, तो मै तुझे वह ही राज्य दे दूगा" ॥२७॥

वह (सिंहबाहु) गुफा के द्वार पर पहुंचा। दूर से ही पुत्र-स्नेह के कारण सिंह को पास आते देख, उसने उसे मारने के लिये बाण छोड़ा ॥२८॥ बाण उस के मस्तक पर लगा। किन्तु शेर के दिल मे मैत्री का भाव होने के कारण (बाण) लौट कर कुमार के पाव में भूमि पर गिर पड़ा ॥२६॥ तीन बार ऐसा ही हुआ। (तब) सिंह को क्रोध आ गया। इसीलिये (चौथी बार) फैंका हुआ बाण उसके शरीर को बेध कर पार हो गया ॥३०॥ कुमार केसर[1] सहित सिंह का सिर लिये हुये अपने नगर में पहुचा। बङ्गराज को मरे उस समय एक सप्ताह हो गया था ॥३१॥

राजा निस्सन्तान था। (सिंहबाहु) की वीरता से वे प्रसन्न थे। (इस पर भी) जब उन्होंने उसको राजा का नाती सुना और उसकी मा को पहचाना (तो) सब मन्त्रियों ने इकट्ठ हो एक मन से कुमार सिंहबाहु को कहा, "(तुम) राजा होवो" ॥३२-३३॥ उसने वह राज्य ग्रहण करके अपनी माता के पति को दे दिया। और स्वय सिंहसीवली को लेकर अपनी जन्मभूमि को चला गया ॥३४॥ वहा उसने (एक) नगर बसाया, जिसका नाम सिंहपुर[2] हुआ, और उस के आस-पास सौ योजन बन मे गाव बसाये ॥३५॥

लाळ (लाट) देश के इस नगर में राजा सिंहबाहु, सिंहसीवली को अपनी रानी बना राज्य करता रहा ॥३६॥ काल पाकर उस रानी को सोलह बार जुडवे पुत्र उत्पन्न हुये, जिन मे सब से बडा विजय और उस से छोटा सुमित्र था। वे सब बत्तीस थे। राजा ने कुछ काल के बाद विजय को युवराज अभिषिक्त किया ॥३७-३८॥

विजय और उस के साथी दुराचारी थे। उन्हों ने अनेक असह्य दुष्कर्म किये ॥३६॥ प्रजा ने क्रोधित हो, राजा से पुकार की। राजा ने उन्हें आश्वासन दे पुत्र को समझाया ॥४०॥ फिर दूसरी बार और तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ। तब लागो ने क्रोधित हो, राजा से कहा, "अपने पुत्र को मारो" ॥४१॥ राजा ने विजय और उस के सात सौ साथियों का आधा सिर मुडवा, उन को जहाज मे डाल कर समुद्र मे छुड़वा दिया; उन के

---

[1] सिंह के कंधे के बाल।

[2] काठियावाड़ में वाला (पुरातन—वलभी) के पास आधुनिक सिहोर।

और बच्चों को भी ॥४२-४३॥ वे पुरुष, स्त्रिया और बच्चे अलग अलग बिछुड़ कर, पृथक् पृथक् द्वीपों में जाकर उतरे, और (वहीं) बसे ॥४४॥ जिस द्वीप पर बच्चे जाकर उतरे, उस का नाम 'नग्ग (नग्न)-द्वीप' हुआ। जिस पर स्त्रिया उतरीं, उसका नाम 'महिला द्वीप हुआ ॥४५॥ कुमार विजय सुप्पारक पट्टन[1] पर उतरा। किन्तु अपने साथियों की उद्दण्डता से डर कर, उसे फिर नाव पर चढना पड़ा ॥४६॥

स्थिरमति विजय-कुमार लङ्का में ताम्रपर्णी[2] नामक स्थान पर उसी दिन उतरा, जिस दिन (कुशीनगर मे) भगवान् (बुद्ध) निर्वाण प्राप्ति के लिये जोड़े शाल (साखू)-वृक्षों के बीच लेटे ॥४७॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का "विजयागमन" नामक षष्ठ परिच्छेद।

---

[1]सोपारा, जिला थाना; बम्बई से ३७ मील उत्तर तथा बसई (बसीन) से प्रायः चार मील उत्तर-पूर्व; जहां पर अशोक का एक लेख-खण्ड भी मिला है। पुराने समय में यह 'अपरान्त' देश का प्रधान नगर और पच्छिमी समुद्र का सब से प्रधान बन्दर था।

[2]सम्भवतः मलवत्त ओय (नदी) के दक्षिण का बन्दर।

सप्तम परिच्छेद

विजयाभिषेक

सब लोगों का हित कर, परम शांति को प्राप्त कर, लोकनायक (भगवान् बुद्ध) निर्वाण प्राप्ति के लिये परिनिर्वाण शय्या पर लेटे हुये थे। उस समय महामुनि के पास बहुत से देवता आये हुये थे। वक्ताओं में श्रेष्ठ (भगवान्) ने पास खड़े हुये इन्द्र को कहा—"लाळ (लाट) देश से राजा सिंहबाहु का लड़का, विजय (सिंह) सात सौ अनुयाइयों के साथ अभी लङ्का पहुँचा है। देवेन्द्र! लङ्का में मेरा धर्म स्थापित होगा। इसलिये तुम, विजय, उस के अनुयाइयों और लङ्का की रक्षा करो" ॥४॥

देवेन्द्र ने तथागत (भगवान) के वचन को सादर सुनकर, लङ्का की रक्षा का भार विष्णु (उत्पलवर्ण देवता) को सौंपा ॥५॥ इन्द्र के कहते ही वह देवता, शीघ्र ही लङ्का पहुँच कर, सन्यासी का भेष धर, एक वृक्ष के नीचे बैठा ॥६॥ विजय तथा उस के अनुयाइयों ने उस देवता के पास जाकर पूछा, "क्यों जी! यह कौन सा द्वीप है?" देवता ने उत्तर दिया, "लङ्का द्वीप", और कहा, "यहा कोई मनुष्य नहीं है, तुम्हें कोई भय नहीं होगा"। इतना कह कमण्डल में से उन पर जल छिड़क, उन के हाथों में सूत्र[1] बाध, वह आकाश द्वारा चला गया।

उन्हें, कुतिया का शकल धारण किये एक नौकरानी[2] यक्षिणी दिखलाई दी ॥७-९॥ उन में से एक आदमी विजय के मना करने पर भी कुतिया के पीछे चला गया। उसने सोचा, "जहा गाव होते हैं, वहीं कुत्ते होते हैं" ॥१०॥

उस (कुतिया के भेष में नौकरानी) की स्वामिनी एक कुवर्णा नाम की यक्षिणी थी। वह तपस्विनी की भाँति वृक्ष के नीचे बैठी कात रही थी ॥११॥ उस पुष्करिणी तथा उस के पास बैठी तपस्विनी को देख, उस ने वहा स्नान किया और पानी पिया। (किन्तु) जब वह पोखरी से कमल की डण्डिया और उन में पानी लेकर (जाने के लिये) उठा तो उस (तपस्विनी) ने कहा,

---

[1] रक्षा-बन्धन।

[2] कुवर्णा की सीसपातिका नाम की नौकरानी (टीका)।

"ठहर ! तू मेरा आहार है"। वह आदमी बंधा हुआ सा वहां ठहर गया ॥१२-१३॥ उस रक्षा-सूत्र के तेज के कारण वह उसे भक्षण नहीं कर सकी। आदमी ने यक्षिणी के मांगने पर भी, वह सूत्र उसे नहीं दिया ॥१४॥ यक्षिणी ने उस के चिल्लाते रहने पर भी, उसे पकड़ कर सुरंग में डाल दिया। इस प्रकार एक एक कर उस ने (विजय के) सारे सात सौ आदमियों को वहीं डाल दिया ॥१५॥

उन सब के वापिस न लौटने पर, भय से शङ्कित विजय पांचों हथियार बांध[1] (उन्हें ढूंढने) गया। उस सुन्दर तालाब के पास किसी मनुष्य का पद-चिन्ह न देख कर, और उस तपस्विनी को वहां बैठे देख, उस ने सोचा, "इसी ने निश्चय से मेरे नौकरों को क़ैद किया है"। (तब) पूछा, "क्यों जी ! तुमने मेरे नौकरों को देखा है ?" वह बोली, "राजपुत्र ! नौकरों से क्या (लेना है), पानी पीओ और स्नान करो" ॥१६-१८॥

"यह यक्षिणी है, क्योंकि मेरी जाति (भी) जानती है"। निश्चय कर राजकुमार जल्दी से अपना नाम सुना, धनुष चढा, पास आया ॥१६॥ (फिर) बाण की रस्सी के बन्धन से उस की गर्दन लपेट, बायें हाथ में उस के केश, और दाये हाथ मे तलवार लेकर कहा, "दासी ! मेरे नौकर दे, नहीं तो तुझे मारना हूं"। भयभीत हो उस यक्षिणी ने प्राणों की भिक्षा मांगी— "स्वामी ! मुझे जीवन दान दो, मैं आप को राज दूंगी"। आप के लिये स्त्री कृत्य और आप की इच्छानुसार दूसरे कुल काम करूंगी ॥२०-२२॥ पक्का करने के लिये राजकुमार ने शपथ कराई ; और उस के 'मेरे नौकरों को शीघ्र ला' कहने पर वह यक्षिणी उन को ले आई ॥२३॥

राजकुमार के 'ये आदमी भूखे हैं' कहने पर यक्षिणी ने उन्हें नाव पर रक्खे हुये चावल और अन्य विविध प्रकार के बहुत से खाद्य पदार्थ दिखाये। यह सब माल उन व्यापारियों का था, जिनको वह मार कर खा गई थी ॥२४॥ नौकरों ने भात और तेमन (व्यञ्जन) तैयार करके, पहले राजपुत्र को खिलाया और फिर सब ने खाया ॥२५॥

विजय के प्रथम दिये हुये भोजन को खाकर यक्षिणी प्रसन्न हुई। (तब) सब अलङ्कारों से अलकृत सोलह वर्ष की कन्या का सुन्दर रूप धारण कर राजपुत्र के पास आई। उसने एक वृक्ष के नीचे एक अनर्घ शय्या तैयार की। उस के चारों ओर कनात और ऊपर चन्दवा तनवाया। यह सब देख,

---

[1] तलवार, तीरकमान, फरसा, भाला और ढाल—ये पांच हथियार हैं।

राजकुमार ने भविष्य का ख्याल करते हुये, यक्षिणी के साथ सहवास कर, उस शय्या पर सुख पूर्वक शयन किया। उस के सब नौकर कनात को घेर कर लेटे ॥२६-२६॥

रात को उसने बाजे और गीत की आवाज सुनकर, साथ लेटी हुई यक्षिणी से पूछा, "यह कैसा शब्द है ?" ॥३०॥ "सब राक्षसों को मरवा कर, स्वामी को राज्य देना है, (नहीं तो) राक्षस मनुष्यों को (लका में) बसाने के कारण मुझे मार डालेंगे" सोच उस ने राजकुमार से कहा—"स्वामी यह सिरीसवत्थु नामक यक्षों का नगर है। लङ्का नगर वासी प्रधान यक्ष की कन्या यहा लाई गई है। उस के साथ उस की माता भी आई है[1]। उसी के विवाह-मङ्गल मे यहा सात दिन से महोत्सव हो रहा है। यह उसी का शब्द है, क्योंकि यहा बहुत लोग एकत्र हुये हैं ॥३ -३४॥ आज ही यक्षों को मारो, नहीं तो फिर नहीं हो सकता"। उस ने कहा, "उन अदृश्यों को मै कैसे मारू गा" ॥३५॥ (यक्षिणी ने कहा)—"जहा वे होंगे, मै वहा शब्द करू गी, आप उस शब्द पर प्रहार करें। मेरे मन्त्र के प्रभाव मे हथियार उन के शरीर पर ही जाकर लगेंगे" ॥३६॥

यह सुन कर राजकुमार ने वैसा ही किया। सारे यक्षों को मार विजय प्राप्त की। (तब) यक्षों के राजा की पोशाक स्वय पहन कर, बाकी पोशाके अपने आदमियो को पहनाईं। कुछ दिन वहीं ठहर कर, (बाद में वह) ताम्रपर्णी (तम्बपण्णी) स्थान पर आया ॥३७-३८॥ वहा विजय ने ताम्रपर्णी नगर बसा कर यक्षिणी और अमात्यों के सहित वास किया ॥३६॥ जब विजय और उस के आदमी नाव से पृथ्वी पर उतरे, तो थकावट के कारण पृथ्वी पर हाथ टेक कर बैठे थे ॥४०॥ ताम्रवर्ण की मिट्टी के स्पर्श से (उन के हाथ) ताबे के पत्र (तम्बपण्णी) से हो गये। इसी लिये उस प्रदेश और द्वीप का नाम ताम्रपर्णी (तम्बपण्णी) हुआ ॥४१॥ राजा सिंहबाहु, सिंह (मार) लाये थे। इस लिये वह सिंहल (सिंह + ल) कहलाये। और उसी सम्बन्ध से ये सब (लङ्कावासी) सिंहल हुए ॥४२॥

अनेक स्थानों पर विजय के अमात्यों ने गाव बसाये। अनुराध ग्राम उसी नाम के किसी (अमात्य) ने कदम्ब[2] नदी के समीप बसाया ॥४३॥

---

[1]पाली टीकाकार ने लड़की का नाम 'पोलमित्ता'; लड़की की माँ का नाम 'गोण्डा'; लड़की के पिता का नाम 'महाकालसेन' लिखा है।

[2]वर्तमान मलवत्तु ओय।

अनुराध (-ग्राम) से उत्तर गम्भीर[1] नदी के किनारे उपतिष्य पुरोहित ने उपतिष्य-ग्राम बसाया ॥४४॥ तीन अमात्यों ने पृथक् पृथक् उज्जैनी, उरुवेला[2] और विजितपुर[3] नामक तीन नगर बसाये ॥४५॥

देश को बसा चुकने पर, सब अमात्यों ने इकट्ठे हो राजकुमार से कहा, "स्वामी ! अब (आप) राज्याभिषिक्त हों" ॥४६॥ ऐसा कहने पर, राजकुमार ने एक क्षत्रिय कन्या के पटरानी हुये बिना अपना राज्याभिषेक कराना नहीं चाहा ॥४७॥ (किन्तु) स्वामी के अभिषेक के लिये अत्यधिक इच्छुक, दुष्कर कार्य्यों में भी भय के कारण का अतिक्रमण कर चुके स्वामी भक्त अमात्यों ने बहुत से आदमियों को मणिमुक्ताओं की अमूल्य भेट के सहित दक्षिण मधुरा[4] (मथुरा नगर को भेजा, (कि वहा से) स्वामी के लिये पाण्डु-राज की कन्या तथा अमात्यों और अन्य लोगो के लिये दूसरी कन्याये (विवाहार्थ) लायें ॥५०॥

उन दूतो ने शीघ्र ही नाव द्वारा मधुरा नगर में पहुंच कर (वह) लेख और भेट राजा को समर्पित की ॥५१॥ राजा ने मन्त्रियों की सलाह से अपनी लड़की को (लङ्का) भेजना निश्चय किया। इसके साथ अन्य मन्त्रियों के लिये और भी मौ से कुछ कम कन्याये पाकर ढ़ंढोरा पिटवा दिया, "जो कोई अपनी लड़की को लङ्का भेजना चाहे, वह दो जोड़े वस्त्रों सहित उन्हे अपने गृह-द्वार पर (तैयार) रक्खे। उस चिन्ह से भेजने की इच्छा जान कर हम उसे ग्रहण करेंगे" ॥५४॥

इस प्रकार बहुत सी कन्याये प्राप्त कर, उनके परिवारों को (धनादि से) तृप्त कर, अपनी लड़की को सब अलङ्कार और अन्य आवश्यक सामान से सम्पन्न कर, अन्य कन्याओं का भी यथायोग्य सत्कार कर, राजा ने उन्हें एक राजा के उपयुक्त हाथी, घोड़े, रथ और अठारह श्रेणियों के एक हजार शिल्पी-परिवार साथ मे देकर, लेख (पत्र) सहित शत्रुजित विजय के पास भेजा ॥५७॥ यह सब लोग नाव से महातीर्थ[5] स्थान पर उतरे। उसी से उस पत्तन का नाम महातीर्थ पड़ा ॥५८॥

---

[1]सम्भवतः अनुराधपुर से सात आठ मील उत्तर वर्तमान योदि एल'।

[2]सम्भवतः 'मदरगम अरु' के मुहाने के पास मरिच्चुकट्टि।

[3]जनश्रुति के अनुसार अनुराधपुर से चौबीस मील दक्षिण कालवापी (कल वेव) झील के समीप वर्तमान विजितपुर।

[4]आधुनिक मदुरा।

[5]मनार-द्वीप के सामने वर्तमान मन्तोट।

उस यक्षिणी से विजय के एक लड़का और एक लड़की थी। राज-कन्या का आगमन सुन, विजय ने यक्षिणी को कहा—"अब आप इन दोनों बच्चों को छोड़ कर चली जायें, क्योंकि मनुष्य अमनुष्यों (यक्षों) से सदा डरते हैं" ॥६०॥ यह सुन, यक्षों के भय से यक्षिणी भयभीत हुई। तब (राजकुमार ने) कहा—"चिन्ता मत करो, मैं तुम्हें एक हजार (के खर्च से) बलि दिलवाऊगा" ॥६१॥

बार बार उस (यक्षिणी) ने याचना की (किन्तु वह अस्वीकृत हुई)। लाचार होकर वह (यक्षिणी) यक्षों से डरती हुई भी अपनी दोनों सन्तानों सहित लङ्का नगर चली आई ॥६२॥ बच्चों को बाहर बिठाकर वह स्वयं नगर मे गई। यक्षों ने उसे पहचान लिया और 'भेदिया' समझकर बिगड उठे। एक क्रूर यक्ष ने यक्षिणी को एक हाथ के प्रहार से ही मार डाला ॥६३-६४॥

उसी समय उस (यक्षिणी) के मामा ने नगर से बाहर जाते समय, उन दो बच्चों को देखकर पूछा, "तुम किस के लडके हो ?" और यह सुनकर कि "कुवर्णा के हैं" उसने कहा, "तुम्हारी मा यहा मार दी गई है, तुम्हें भी देखने पर मार देंगे, इस लिये जल्दी भाग जाओ" ॥६६॥ तब वे जल्दी से भाग कर सुमन कूट पर्वत[1] पर चले गये। बडे होने पर जेठे ने अपनी छोटी बहिन के साथ सहवास किया ॥६७॥ पुत्र-पौत्र से बढ कर उनका वश वहीं मलय प्रदेश[2] मे, राजाज्ञा से रहने लगा। यही पुलिन्दों[3] की उत्पत्ति है ॥६८॥

पाण्डु-राज के दूतों ने भेट और अन्य कन्याओं के साथ राजकुमारी को विजय कुमार को अर्पण किया ॥६९॥ विजय ने दूतों का आदर सत्कार करके, वे कन्यायें यथा योग्य अमात्यो को और अन्य लोगों को दीं ॥७०॥ सब अमात्यों ने मिलकर विजय को यथाविधि राज्य पर अभिषिक्त किया और महोत्सव मनाया ॥७१॥ तब राजा विजय (-कुमार) ने पाण्डु-राज की कन्या को बड़े ठाठ के साथ पटरानी के पद पर अभिषिक्त किया ॥७२॥

---

[1] ऐडम पीक (द्रष्टव्य १-३३)।

[2] लङ्का का मध्यवर्ती पहाड़ी-प्रदेश।

[3] लङ्का की जङ्गली जाति। इन को इस समय वेद्दा (संस्कृत 'व्याध') कहते हैं।

(विजय ने) अमात्यों को बहुत धन दिया और अपने ससुर को वह प्रति-वर्ष दो लाख मूल्य की शख-मुक्ता भेजता रहा ॥७३॥

अपने पहले के दुष्ट आचरण को त्याग कर, धर्म पूर्वक लङ्का पर शासन करते हुये, विजय नरेन्द्र ने तम्बपण्णी नगर में अड़तीस वर्ष राज्य किया ॥७४॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'विजयाभिषेक' नामक सप्तम परिच्छेद ।

अष्टम परिच्छेद

पाण्डुवासुदेव का राज्याभिषेक

अपने अंतिम वर्ष के प्राप्त होने पर महाराज **विजय** ने सोचा— "मैं बूढ़ा हो गया हूं, और मेरे कोई लड़का नहीं है। यह इतने कष्ट से बसाया हुआ राज्य मेरे बाद नाश हो जायगा। इस (की रक्षा के) लिये मै अपने भाई **सुमित्र** (सुमित्त) को बुलाऊगा' ॥१-२॥ अपने अमात्यों से परामर्श करके, उन्हों ने वहां (अपने भाई के पास) लेख भेजा, किन्तु लेख भेजने के थोड़े समय बाद वह स्वर्गवास कर गये ॥३॥ उन के मरने पर क्षत्रिय (राजकुमार) के आगमन की प्रतीक्षा करते हुये अमात्यों ने, उपतिष्य-ग्राम मे ठहर कर, राज्य-कार्य्य चलाया ॥४॥ राजा विजय की मृत्यु स लेकर, राजकुमार के आगमन तक, एक वर्ष पर्यन्त **लङ्का** द्वीप बिना राजा के रहा ॥५॥

वहां **सिंहपुर**[1] मे राजा **सिंहबाहु** के मरने के बाद उस का लड़का **सुमित्र** राजा हुआ। **मद्द**[2] (मद्र) के राजा की कन्या से सुमित्र के तीन पुत्र थे। दूतों ने **सिंहपुर** पहुंच राजा को लेख (पत्र) दिया ॥६-७॥ पत्र को सुन कर राजा ने अपने तीनों पुत्रों को बुलाया और कहा, "तात! मैं (तो) अब बूढ़ा हो गया हू, तुम मे से कोई एक, मेरे भाई के पास सुन्दर, अनेक गुणयुक्त **लङ्का** को जावे; और उस के मरने के बाद वहीं अच्छी तरह से राज्य करे" ॥८-९॥

सब से छोटा राजकुमार **पाण्डुवासुदेव**, "मै जाऊंगा" सोच, यात्रा के बारे में ज्योतिषियों की सम्मति जान, पिता की आज्ञा से अमात्यों के बत्तीस लड़कों को साथ लेकर, सन्यासी के भेष मे नाव पर चढ़ा ॥१०-११॥ वह (सब) **महाकन्दर**[3] नदी के मुहाने पर उतरे। सन्यासी देखकर, लोगों ने उनका अच्छी तरह सत्कार किया ॥१२॥ देवताओं से रक्षित वह लोग, नगर (का मार्ग) पूछ कर, क्रम से उपतिष्य-ग्राम मे पहुंचे ॥१३॥

---

[1] द्रष्टव्य ६-३५।

[2] रावी नदी से नमक की पहाड़ियों (Salt Range) तक का प्रदेश।

[3] सम्भवतः आधुनिक 'माकंदुरु ओय'।

(अन्त) अमात्यों के परामर्श से एक अमात्य ने, ज्योतिषी से, राजकुमार के आगमन के बारे में पूछा। उस ने राजकुमार का आगमन तथा दूसरी बातें कहीं :—"सातवें दिन राजकुमार यहां आ जायगा। उस का एक वंशज यहां बुद्ध-धर्म की स्थापना करेगा" ॥१४-१५॥

सातवें दिन ही उन सन्यासियों को वहां पहुँचा देख अमात्यों ने पूछ कर, उन्हें पहचाना। तब उन्होंने पाण्डुवासुदेव को लङ्का का राज्य अर्पण किया। पाण्डुवासुदेव ने पटरानी न होने से, राज्याभिषेक नहीं कराया ॥१६-१७॥

अमितोदन-शाक्य का एक लड़का पाण्डुशाक्य था। शाक्यों के विनाश को जान, वह अपने आदमियों को लेकर, किसी उपाय से गङ्गा-पार चला गया ; और वहां एक नगर बसा कर राज्य करने लगा। उस की सात सन्तान थीं ॥१८-१९॥ भद्रकात्यायनी, उस की छोटी कन्या था। वह सुवर्ण की सी काया वाली अत्यन्त रूपवती थी। कितने ही लोग उस से विवाह करने के इच्छुक थे ॥२०॥ उस (से विवाह करने) के लिये सात राजाओं ने, राजा के पास बहुमूल्य भेंट भेजीं ॥२१॥

उन राजाओं के भय से और ज्योतिषियों से यह जान, कि यात्रा मङ्गलमयी होगी तथा इस का फल अभिषेक (तक) होगा ; उस ने बत्तीस सहेलियों के सहित अपनी लड़की को नाव पर चढ़ा दिया ; और नाव को गङ्गा में छोड़ कर कहा, "जिस में शक्ति हो, वह मेरी लड़की को ग्रहण करे"। वे नाव को नहीं पकड़ सके। नाव बड़े वेग से चली गई ॥२२-२३॥ दूसरे ही दिन वह (सब) गोण-ग्राम नामक पट्टन पर पहुँचीं ; और सन्यासनियों के भेष में वहां उतरीं ॥२४॥ देवताओं से रक्षित वह (स्त्रियां) नगर (का मार्ग) पूछ कर, क्रम से उपतिष्य-ग्राम में पहुँचीं ॥२५॥

ज्योतिषी के वचन को सुन कर, अमात्यों ने जब वहां आई हुई उन स्त्रियों को देखा, तो (सब हाल) पूछ कर, उन्हें राजा को समर्पित किया ॥२६॥ (फिर) उन शुद्ध-बुद्धि वाले अमात्यों ने सर्व मनोरथपूर्ण राजा पाण्डुवासुदेव का राज्याभिषेक किया ॥२७॥

अत्यन्त रूपवती भद्रकात्यायनी को पटरानी के पद पर अभिषिक्त कर, उस के साथ आई हुई (और कुमारियों) को अपने साथियों को दे, राजा सुख से रहने लगा ॥२८॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'पाण्डु-वासुदेवाभिषेक' नामक अष्टम परिच्छेद।

नवम परिच्छेद

अभयाभिषेक

रानी के दस पुत्र और एक कन्या हुई। जेठे पुत्र का नाम अभय और सब से छोटी कन्या का नाम चित्रा (चित्ता) रक्खा ॥१॥ मन्त्र-पारगत ब्राह्मणों ने उस कन्या को देख कर भविष्यद्वाणी की "इसका लड़का राज्य के लिये अपने मामों की हत्या करेगा" ॥२॥ (इस पर) भाईयों ने छोटी (बहिन) को मार डालने का निश्चय किया। अभय ने उनको रोका; और कुछ समय बाद उस को एक खम्भे पर बनाये घर में रख दिया। इस घर का प्रवेश-द्वार राजा के शयनागार मे बनवाया; और (रक्षा के लिये) अन्दर एक दासी तथा बाहर सौ आदमी रखे ॥३-४॥ वह अपने रूप (के देखने) मात्र से ही आदमियों को उन्मत्त बना देती थी। (इसी लिये) उस का उपनाम उन्माद-चित्रा (चित्ता) हुआ ॥५॥

भद्रकात्यायनी देवी का लङ्का जाना सुनकर, माता की प्रेरणा से, एक को छोड़ बाकी (छः) भाई भी लङ्का आ गये ॥६॥ लङ्का आकर उन्हों ने लङ्केश पाण्डुवासुदेव का दर्शन किया और (फिर) अपनी छोटी (बहिन) को मिल कर उसके साथ रोये ॥७॥ राजा ने उनका आदर सत्कार किया, और फिर राजा की आज्ञा से, वह लङ्का द्वीप मे विचर कर इच्छानुसार बस गये ॥८॥

राम का निवास स्थान रामगोण कहलाता है। वैसे ही उरूवेला और अनुराध के निवास स्थान (उनके नामों से प्रसिद्ध हैं)। इसी प्रकार विजित, दीर्घायु और रोहण के निवास स्थान विजित-ग्राम, दीर्घायु-ग्राम और रोहण-ग्राम कहलाते हैं ॥९-१०॥ अनुराध ने एक बड़ी झील बनवाई और उसके दक्षिण एक राज-महल बनवाकर वहा निवास किया ॥११॥

कुछ समय बाद महाराज पाण्डुवासुदेव ने अपने जेठे पुत्र अभय को, उप-राजपद पर अभिषिक्त किया ॥१२॥

कुमार दीर्घायु के पुत्र दीर्घगामणी ने जब उन्माद चित्रा के बारे में सुना, तो उस की इच्छा से वह उपतिष्य ग्राम पहुँचा। वहा जाकर वह राजा से मिला। राजा ने उसे उपराज के साथ (किसी) राज-कार्य पर नियुक्त कर दिया ॥१३-१४॥

खिड़की के सामने वाले स्थान पर खड़े हुए ग्रामणी को देख कर अनुरक्त हो चित्रा ने दासी से पूछा, "यह कौन है?" यह सुन कर "कि मामा का पुत्र है" उसने दासी को उस काम पर लगा दिया। ग्रामणी दासी से मिल, रात को खिड़की में कर्कट यन्त्र फंसा ऊपर चढ़ गया; और दरवाज़े को काट कर अन्दर प्रविष्ट हुआ ॥१५-१७॥ उस के साथ सहवास करके वह सबेरे ही निकल गया। इसी प्रकार वह नित्य करता था। छिद्र के अभाव से बात प्रकट नहीं हुई ॥१८॥

इस से (उन्माद चित्रा को) गर्भ ठहर गया। गर्भ परिपक्व हो जाने पर दासी ने (उसकी) माता से कहा। मा ने बेटी को पूछ कर राजा को कहा। राजा ने पुत्रों से परामर्श करके कहा, "वह भी हमारा पोष्य है, इस लिये इसे ग्रामणी को ही दे दो" ॥१९-२०॥ यह सोच कर, "यदि लड़का होगा तो उसे मार देंगे", उन्होंने उसे उसको दे दिया ॥२१॥

प्रसव-काल आने पर उसने प्रसूति-गृह मे प्रवेश किया। ग्रामणी के दो नौकरों चित्र (ग्वाला) और काळवेल दास—पर शक करके, कि यही उस कार्य्य में सहायक थे, उनके प्रतिज्ञा न करने पर, राजकुमारों ने उन्हें मरवा डाला। मृत्यु के बाद वह दोनों यक्ष हो गये और उन्हों ने गर्भ में कुमार की रक्षा की ॥२२-२३॥

चित्रा ने अपनी दासी से उसी काल में प्रसूता होने वाली दूसरी स्त्री का पता लगा रक्खा था। चित्रा को लड़का उत्पन्न हुआ, पर उस (दूसरी स्त्री) को लड़की हुई ॥२४॥ चित्रा ने दासी के द्वारा एक हजार मुद्रा के साथ अपने पुत्र को भेज कर, (बदलेमे) उस (दूसरा स्त्री) की लड़की मंगवा कर अपने पास सुला ली ॥२५॥

जब राजकुमारों ने सुना कि "लड़की हुई है," तो सब सन्तुष्ट हुये। मां और नानी दोनों ने नाना (पाण्डुवासुदेव) और जेठे मामा (अभय) का नाम मिला कर लड़के का नाम 'पाण्डुकाभय' रक्खा ॥२६-२७॥

लंकेश्वर पाण्डुवासुदेव ने तीस वर्ष राज्य किया। पाण्डुकाभय के जन्म लेने पर उनकी मृत्यु हुई ॥२८॥

राजा के मरने पर सब राजपुत्रों ने इकट्ठे होकर अभय देने वाले अपने भाई अभय का राज्याभिषेक बड़े उत्साह से किया ॥२९॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'अभयाभिषेक' नामक नवम परिच्छेद।

दशम परिच्छेद

पाण्डुकाभयाभिषेक

उन्मादचित्रा की आज्ञानुसार दासी बच्चे को एक टोकरी में रख कर द्वारमण्डलक[1] (गांव) को चली ॥१॥ राजपुत्र तुम्बर कन्दर बन में शिकार खेलने गये थे। उन्हों ने दासी का देख कर पूछा, "कहा जाती है?"; "यह क्या है?" ॥२॥ वह बोली:—'द्वारमण्डलक को जाती हूँ और इस में बेटी के लिये गुड़ के पूए हैं"। राजकुमारों ने कहा "उतारो" ॥३॥ उस (बच्चे) की रक्षा के लिए चित्र और कालबेल (दोनों यक्षों) ने, उसी क्षण एक बड़ा भारी सूअर निकला हुआ दिखाया ॥४॥ राजकुमारों ने सूअर का पीछा किया, और दासी बच्चे को लेकर चल दी। वहा पहुँच कर उस ने, एकान्त में बालक और एक हजार (मुद्रा) नियुक्त-आदमी को दिये ॥५॥ उस की स्त्री को उसी दिन बच्चा हुआ। "मेरी स्त्री को जुड़वा पुत्र हुये हैं" प्रसिद्ध कर उसने बालक को पाला ॥६॥

जब वह सात वर्ष का हुआ, तो उस के मामों ने जान लिया। उन्होंने तालाब में खेलते हुये (सभी) बालकों को मारने के लिये (अपने आदमियों को) नियुक्त किया ॥७॥ वह (बालक) जल मे डुबकी लगाकर एक जल-स्थित वृक्ष की जल मे ढकी हुई खोखल मे प्रविष्ट होकर देर तक वहीं ठहरा रहता था ॥८॥ फिर उसी तरह बाहर आने पर जब और बालक उसे पूछते; तो वह उनको और२ बातें कह कर बहला देता ॥९॥ आदमियों के आने के दिन, कुमार (अपने) वस्त्रों समेत पानी मे प्रविष्ट हो, खोखल में जाकर छिप गया ॥१०॥ बच्चों की गिनती कर, बाकी सब बालकों को मार, उन्हों ने (राजा को) जाकर कहा "सब बालक मार डाले" ॥११॥ उन के चले जाने पर (कुमार) अपने पालने वाले के घर गया। वहा उस से आश्वासित रहता हुआ वह बारह वर्ष का हुआ ॥१२॥

कुमार को जीवित सुन उसके मामों ने, फिर अपने आदमियों को सब ग्वालों को मार डालने के लिये नियुक्त किया ॥१३॥ उसी दिन ग्वालों को

---

[1] म व २३-२३ के अनुसार अनुराधपुर चैत्यगिरि (मिहिन्तलै) के समीप।

एक शिकार (चतुष्पाद) मिला। उन्होंने कुमार को आग लाने के लिये गाव में भेजा ॥१४॥ घर जाकर (कुमार) ने, अपने पोषक के लड़के को यह कह कर भेज दिया कि "मेरा पाव दुखता है, तू ग्वालों के पास आग लेजा; वहा तुझे अगार पर भुना हुआ मास मिलेगा।" यह सुन कर वह ग्वालों के पास आग ले गया ॥१५-१६॥ उसी क्षण भेजे हुये आदमियों ने सब ग्वालों को घेर कर मार दिया; और मामों से (जाकर) निवेदन किया ॥१७॥

कुमार के सोलह वर्ष का होने पर, मामों को (फिर) पता लगा। कुमार की मा ने उस को एक हजार (मुद्रा) भेजकर, रक्षा के लिये आदेश दिया। पोषक ने उसकी मा का सब सदेश उस को कह दिया; और एक हजार देकर उसे, एक दास के साथ पाण्डुल के पास भेजा ॥१६॥

पाण्डुल धनाढ्य और वेद पारगत ब्राह्मण था। वह दक्षिण देश में पाण्डुल[1] गांव मे रहता था ॥२०॥ कुमार ने वहा पहुंच कर पाण्डुल-ब्राह्मण के दर्शन किये। उस (पाण्डुल-ब्राह्मण) ने "तात! क्या तुम पाण्डुकाभय हो", पूछकर "हा" कहने पर उसका सत्कार करके कहा "तुम राजा होगे और (पूरे) सत्तर वर्ष राज्य करोगे"। इस लिये "तात! तुम विद्या ग्रहण करो"। (फिर) उस ने उसे विद्या सिखलाई। कुमार और उस के अपने पुत्र चन्द्र (चन्द) ने एक साथ ही शीघ्र विद्या प्राप्त करली ॥२१-२३॥ ब्राह्मण ने (कुमार) को सेना इकट्ठी करने के लिये एक लाख दिये; और जब उस ने पाच सौ योद्धा एकत्र कर लिये, तो उसने कहा:—"जिस स्त्री के स्पर्श से पत्ते साने के हो जाये, उस को तुम अपनी पट-रानी और मेरे पुत्र चन्द्र को अपना पुरोहित बनाना"। यह कह, धन दे कर, योद्धाओं के सहित उस को विदा किया। वह पुण्यात्मा कुमार अपना नाम सुना (प्रणाम करके) वहा से निकला ॥२४-२६॥

कास-पर्वत[2] के समीप पण नगर से, सात सौ मनुष्य और सब के लिये भोजन ले कर, (कुल) बारह सौ आदमियों सहित कुमार गिरिकण्ड[3] पर्वत को गया ॥२७-२८॥

पाण्डुकाभय का एक मामा, जिसका नाम गिरिकण्ड-शिव था;

---

[1]उपतिष्य ग्राम के दक्षिण में एक गांव।
[2]अनुराधपुर से १५ मील दक्षिण कहगल।
[3]कहगल के समीप एक नगर।

पाण्डुवासुदेव की दी हुई जागीर का उपभोग करता था ॥२६॥ उस समय (भी) वह क्षत्रिय, एक सौ करीष[1] खेती कटवा रहा था। उसके एक पाली नाम की अत्यन्त रूपवती कन्या थी ॥३०॥ वह सुन्दर सवारी पर चढ़ी हुई, बहुत से लोगों के साथ अपने पिता और मजदूरों के लिये भोजन लिवा कर आ रही थी ॥३१॥

कुमार के आदमियों ने वहा कुमारी को देख कर कुमार को सूचना दी। कुमार ने शीघ्र ही पहुँच अपने अनुयायियों का दो भागों मे बाट कर अनुयायियों सहित अपने रथ को उस के पास ले जाकर पूछा, "कहा जाती हो?" ॥३२-३३॥ उस क सब हाल कह देने पर, उस पर मोहित कुमार ने उस से, भात में से अपने लिये मागा ॥३४॥ उस ने सवारी से नीचे उतर, राज-कुमार को बरगद के नीचे, सुवर्ण-पात्र मे भात दिया ॥३५॥ और बाकी आदमियों को खिलाने के लिये बरगद के पत्ते लिये। वह पत्ते उसी क्षण सुवर्ण के पात्र बन गये ॥३६॥ यह देख, ब्राह्मण के वचन को स्मरण कर, राजपुत्र सतुष्ट हुआ, कि मुझे पट-रानी के योग्य कन्या मिल गई ॥३७॥ उस (कन्या) ने सब को खिलाया, किन्तु वह भोजन कम नहीं हुआ, यही दिखाई दिया कि एक (आदमी) का ही हिस्सा लिया गया है ॥३८॥ उस समय से, पुण्य-गुणों से युक्त उस सुकुमार कुमारी का नाम सुवर्णपाली हुआ ॥३९॥ कुमार ने कुमारी को रथ पर चढ़ा, अपनी भारी सेना के साथ, वहा से निश्शक प्रस्थान किया ॥४०॥

यह सुन कर उस के पिता ने अपने सब आदमियों को (पीछे) भेजा। वह गये और जाकर कलह किया; किन्तु उन से डराये जाकर वापिस आ गये। (इसी लिये) उस स्थान पर बसे गाव का नाम कलह-नगर[2] पड़ा। यह सुन फिर उस के पाच भाई (भी) लड़ने के लिये गये। उन सब को पाण्डुल के पुत्र चन्द्र ने ही मार दिया। लोहितवाह खण्ड' उन की युद्ध भूमि थी ॥४१-४३॥

फिर वहा से पाण्डुकाभय अपने भारी दल बल के साथ गङ्गा के दूसरे किनारे पर दोळ पर्वत पर गया ॥४४॥ वहा चार वर्ष रहा। उस के मामा उस को वहा सुन, राजा को पीछे छोड़, लड़ने के लिये आये ॥४५॥

---

[1] एक करीष = ४ अम्मण। चार अम्मण बीज बोने की जगह।

[2] मिन्नेरी झील (मचीहीर) के दक्षिण में अम्बन गङ्गा के बायें किनारे आधुनिक कलहगल।

धूमरक्ख पर्वत[1] के समीप छावनी डालकर, उन्होंने अपने भानजे से संग्राम किया। भानजे ने मामों का गङ्गा-पार तक पीछा किया। उन्हें भगा पीछे लौट कर दो वर्ष तक उन्हीं की छावनी में निवास किया ॥४६-४७॥

उपतिष्य गाव पहुंच कर उन्हों ने सब हाल राजा से कहा। राजा ने कुमार को चुपके से लिख भेजा :—

"गङ्गा के पार तुम भोगो (और) गङ्गा के इस पार मत आओ"। जब राजा के नौ भाइयों ने यह सुना तो वह क्रोधित हुये और बोले :—"तुम देर से उस (पाण्डुकाभय) के सहायक हो, अब उसे राज्य देते हो, इस लिये हम तुम्हें मार डालेंगे" ॥४८-५०॥ राजा ने राज्य उन को समर्पित किया। उन सब ने एक राय से तिष्य भाई को नायक (परिणायक) बनाया ॥५१॥ इस प्रकार अभयदायक अभय ने बीस वर्ष तक उपतिष्य-गाव में राज्य किया ॥५२॥

धूम-रक्ख पर्वत पर रहने वाली चैत्या (चेतिया) नाम की एक यक्षिणी घोड़ी के रूप में तुम्बरियङ्गण[2] तालाब के समीप चरा करती थी ॥५३॥ किसी मनुष्य ने उस श्वेत अङ्ग और लाल पैर वाली मनोरम (घोड़ी) को देख कर कुमार को कहा, "यहा एक इस तरह की घोड़ी है" ॥५४॥

कुमार रस्सी लेकर उस को पकड़ने के लिये गया। कुमार को पीछे आता देख, उस के तेज से वह डर गई; और बिना अदृश्य हुये भागी। कुमार ने उस भागती हुई का पीछा किया। दौड़ते दौड़ते उस ने तालाब के सात चक्कर काटे और फिर महागङ्गा[3] में उतर कर, तथा (दूसरी तरफ किनारे पर) चढ कर, धूम-रक्ख पर्वत के सात चक्कर लगाये ॥५५-५७॥ फिर एक बार उसने तालाब के तीन चक्कर लगाये और कच्छक घाट[4] पर गङ्गा में उतरी। यहा कुमार ने उसे पूछ से पकड़ लिया, और पानी पर बहता हुआ एक ताड़ का पत्ता लिया। वह पत्ता उस के पुण्य से एक बड़ी तलवार बन गया ॥५८-५९॥ (तब) उस ने तलवार उठाकर कहा, "मैं तुझे मारूगा"। वह बोली :—"मुझे मत मार, मैं तुझे राज्य लेकर दूगी" ॥६०॥

कुमार ने उसे गर्दन से पकड़ कर तलवार की नोक से उस की नाक

---

[1] महावेलि गङ्गा के बायें किनारे।

[2] धूम-रक्ख पर्वत पर एक झील।

[3] महावेलि गङ्गा।

[4] महागंतोट।

छेद कर, उस में रस्सी बांधी। इस से वह उस के वश में हो गई ॥६१॥ वह महाबलशाली उस पर चढ कर धूम-रक्ख (पर्वत) पर आया, और वहां चार वर्ष रहा ॥६२॥ वहां से निकल कर वह सेना सहित अरिट्ठ पर्वत[1] पर आ गया, और युद्ध करने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करता हुआ वहां सात वर्ष रहा ॥६३॥

दो मामों को छोड़ कर बाकी आठ मामे, युद्ध के लिये तैयार होकर अरिट्ठ पर्वत के समीप आये। वहां उन्हों ने एक नगले (नगर) के पास छावनी डाल, और सेनापति को नियुक्त कर, अरिट्ठ पर्वत को चारों ओर से घेर लिया ॥६४-६५॥

यक्षिणी से परामर्श कर के, उस की बताई युक्ति के अनुसार कुमार ने अपनी कुछ सेना को राजकीय परिष्कार (वस्त्राभूषण) और भेंट के शस्त्र देकर, पहले ही यह कहला भेजा—आप इन्हें स्वीकार करें, मैं आप से (अपने को) क्षमा कराऊंगा ॥६६-६७॥ "जब आयगा, तो पकड़ लेंगे," इस तरह उन के विश्वस्त हो जाने पर कुमार बड़ी भारी सेना के साथ उस यक्षिणी घोड़ी पर चढ कर लड़ाई के लिये चला। यक्षिणी ने घोर शब्द किया। उस की सेना ने भी (शत्रु को छावनी के भीतर और बाहर तुमुल नाद किया ॥६८-६९॥ कुमार के आदमियों ने शत्रु की सेना के बहुत सारे आदमियों और आठों मामों का मार कर, उन के सिरों का ढर लगा दिया ॥७०॥

सेनापति ने भाग कर 'गुम्ब स्थान' (घना जंगल) में प्रवेश किया। इसी से इस स्थान का नाम 'सेनापति-गुम्बक' पड़ा ॥७१॥ सिरों के ढेर के ऊपर मामों के सिर रखे हुये देख कर कुमार ने कहा, "लाबू (तूम्बों) के ढेर की तरह है"। इसी से वह स्थान लाबूगामक[2] हुआ ॥७२॥

इस प्रकार संग्राम में विजयी होकर पाण्डुकाभय अपने नाना अनुराध के निवास स्थान पर आया ॥७३॥ उस के नाना ने, अपना राजमहल उसे देकर, अपना निवास अन्य स्थान पर कर लिया। पाण्डुकाभय उस महल में रहने लगा ॥७४॥ वास्तु विद्या जानने वालों तथा ज्योतिषी को पूछ कर उसी गाव में (उसने) सुन्दर नगर बसाया ॥७५॥ दो अनुराधों[3] के रहने की

---

[1]आधुनिक रिति गल।

[2]रितिगल (पर्वत) के उत्तर पश्चिम आधुनिक लबुनोरुव।

[3]अनुराध नाम का विजय का एक मन्त्री और पाण्डुकाभय का अपना मामा।

जगह होने से, और अनुराधा नक्षत्र में बसाये जाने से उस का नाम अनुराधपुर[1] हुआ ॥७६॥

मामों के छत्र को मंगवा उसे यहा (अनुराधपुर)-स्थित सरोवर में धुलवा कर धारण किया। उसी सरोवर के जल से पाण्डुकाभय ने अपना राज्याभिषेक कराया तथा देवी सुवर्णपाली को अपनी पट-रानी अभिषिक्त किया ॥७७-७८॥ अपने पुरोहित का पद यथाविधि चन्द्र कुमार को दिया; और बाकी अनुयाइयों को भी उन की योग्यतानुसार दूसरे पदों पर नियुक्त किया ॥७६॥ माता और अपने पर उपकार करने के कारण उसने अपने जेठे मामा अभय को नहीं मारा। उसे उसने रात्रि-काल का राज्य देकर स्वय नगर गुत्तिक (नगर-रक्षक) बनाया। उसी समय से नगर में 'नगर गुत्तिक' होने लगे ॥८०-८१॥ अपने ससुर गिरिकण्ड शिव को भी न मार कर, गिरिकण्ड देश उस को दे दिया ॥८२॥

उस सरोवर को खुदवाकर, (उसने) उस में बहुत पानी भरवा दिया। उस मे से अभिषेक के लिये जल लेने से उस का नाम जयवापी[2] हुआ ॥८३॥ उस ने कालवेल (यक्ष) को नगर के पूर्व भाग में रखा; और चित्रराज (यक्ष) को अभयवापी[3] के नीचे ॥८४॥ उस कृतज्ञ ने पूर्व (काल) मे उपकार करने वाली, यक्ष योनि में उत्पन्न हुई दासी को नगर के दक्षिण दरवाजे पर स्थान दिया ॥८५॥ घोड़े के मुह वाली यक्षिणी को उस ने राजमहल में स्थान दिया। उन को और दूसरों को भी वह प्रतिवर्ष बलि देता था ॥८६॥ उत्सव-काल में वह राजा चित्रराज (यक्ष) के साथ बराबर के आसन पर बैठकर, देवों और मनुष्यों का नाटक करवाकर, रति-क्रीड़ा में लीन हो मौज करता था। उस ने चार द्वारग्राम और अभयवापी बनवाई ॥८८॥ उस ने श्मशान भूमि, बध्य-भूमि, पश्चिमीय रानियों के लिये(?), कुबेर का बरगद (स्थान), व्याधि देवता का ताड (स्थान), यवनों के लिये अलग बस्ती और बलिदान-गृह—यह सब नगर के पश्चिम दरवाजे की ओर बनवाये ॥६०॥

उस ने पाच सौ चण्डाल नगर की सफाई के लिये, दो सौ चण्डाल नालियों की सफाई के लिये, डेढ सौ चण्डाल मुर्दे उठाने के लिये और डेढ़

[1] लंका की राजधानी।

[2] अनुराधपुर के समीप एक तालाब।

[3] आधुनिक 'बसवक कुलमं।

सौ ही श्मशाम में पहरा देने के लिये रक्खे ॥६१-६२॥ श्मशान के पश्चिमोत्तर में उस ने उन (चण्डालों) का गाव बसाया। वह अपने अपने नियत कार्य को नित्य करते थे ॥६३॥

उस चाण्डाल गाव की पूर्वोत्तर की दिशा में उसने चण्डालों के लिये एक नीच श्मशान बनवाया ॥६४॥ फिर उम श्मशान के उत्तर और पाषाण-पर्वत के बीच उसने शिकारियो के लिये घरों की कतार बनवाई ॥६५॥ उसके उत्तर मे ग्रामणीवापी तक अनेक तपस्वियों के लिये आश्रम बनवाया ॥६६॥ उसी श्मशान के पूर्व में राजा ने जोतिय निगण्ठ[१] के लिये घर बनवाया ॥६७॥ उसी स्थान पर गिरि नामक निगण्ठ तथा और भी अनेक मतों के बहुत से साधु (श्रमण) रहते थे ॥६८॥ वहीं राजा ने कुम्भण्ड (निगण्ठ) के लिये एक देवालय बनवाया, जो उसी के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६९॥

उम (देवालय) के पश्चिम में तथा शिकारियों के घरों से पूर्व की ओर पाच सौ अन्य मतावलम्बी[२] परिवार बसते थे ॥१००॥ जोतिय के घर से परली तरफ और ग्रामणीवापी से वरली तरफ, उसने परिव्राजकों के लिये एक आराम बनवाया ॥१०१॥ आजीवकों के लिये घर, ब्राह्मणों का निवास स्थान, जहा तहा प्रसूतिका-गृह तथा रोगी-गृह बनवाये ॥१०२॥

लकेश्वर पाण्डुकाभय ने अभिषेक के दसवे वर्ष, समस्त लंकाद्वीप मे गावों की सीमा बदी की ॥१०३॥

यक्ष और भूत जिस के सहायक थे, (ऐसा) राजा कालवेल और चित्र-राज दोनों दृश्यमान (यक्षों) के साथ सम्पत्ति का उपभोग करता था ॥१०४॥

पाण्डुकाभय और अभय के बीच सत्रह वर्ष बिना राजा के ही रहे ॥१०५॥

बुद्धिमान् पाण्डुकाभय ने सैंतीस वर्ष की आयु मे राजा होकर रम्य, समृद्धिशाली अनुराधपुर मे पूरे सत्तर वर्ष राज्य किया ॥१०६॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'पाण्डुकाभया-भिषेक' नामक दशम परिच्छेद ॥१०७॥

---

[१] जैन साधु।

[२] मिथ्या-दृष्टि वाले।

एकादश परिच्छेद

देवानांप्रियतिष्याभिषेक

उस (पाण्डुकाभय) के बाद, सुवर्णपाली के पुत्र प्रसिद्ध मुटसीव ने उस निष्कण्टक राज्य को प्राप्त किया ॥१॥ उस राजा ने फल फूल वाले वृक्षों से युक्त महामेघवन नामक सुन्दर उद्यान बनाया, जो 'यथा नाम तथा गुण' था ॥२॥ उद्यान का स्थान ग्रहण करने के समय वहा अकाल में ही महामेघ बरसा। इसी से वह उद्यान महामेघवन[1] हुआ ॥३॥

राजा मुटसीव ने लंका भूमि के सुन्दरवदन समान अनुराधपुर में साठ वर्ष राज्य किया। उस के परस्पर-हितैषी दस पुत्र तथा समान सौन्दर्य्य वाली, कुल के अनुकूल दो कन्यायें थीं ॥५॥ (उसका) दूसरा पुत्र देवानांप्रियतिष्य सब भाइयों मे अधिक भाग्यशाली और बुद्धिमान् था ॥६॥ पिता के बाद, वह देवानांप्रियतिष्य राजा हुआ। उसके अभिषेक के समय बहुत सी अद्भुत घटनाये हुईं ॥७॥ सारे लंका-द्वीप में पृथ्वी के नाचे गड़े हुये खजाने और रत्न निकल कर पृथ्वी के ऊपर आगये ॥८॥ (और) लंका-द्वीप के पास टूटने वाली नावों पर के रत्न और वहा (समुद्र मे) पैदा हुये रत्न सब स्थल पर आगये ॥९॥ छात-पर्वत की जड़ में तीन बास की छड़िया उगीं, जो परिमाण मे रथ के चाबुक के बराबर थीं ॥१०॥ उन (बास की छड़ियों) में एक रुपहली 'लता-छड़ी' थी जिस पर रुचिर स्वर्ण-वर्ण वाली तथा मनोरम लताए दिखाई देती थीं ॥११॥ एक 'फूल-छड़ी' थी; जिस पर नाना प्रकार के अनेक रग वाले फूल खिले थे। (और) एक 'शकुन-छड़ी' थी, जिस पर बने हुये अनेक प्रकार के, अनेक रग वाले पशुपक्षि और मृग सजीव से दिखाई पड़ते थे ॥१३॥ घोड़े, हाथी, रथ, आवले, कगन, अगूठी, ककुधफल, पाकर (वृक्ष) ये आठ जाति के मोति; देवनांप्रियतिष्य के पुण्य के प्रताप से समुद्र से निकल कर किनारे पर ढेर की तरह लग गये ॥१५॥

नीलम, हीरे, लाल, मणि, ये रत्न और मोतीं तथा वह छड़िया, सप्ताह

---

[1] द्रष्टव्य १-८।

के भीतर ही राजा के पास पहुंचा दी गई। उन्हें देख कर प्रसन्नचित्त राजा ने सोचा :—"यह बहुमूल्य रत्न मेरे मित्र धर्म्माशोक के योग्य हैं; और किसी के योग्य नहीं। इसलिये इन्हें मैं उसी को दूं"। देवानांप्रियतिष्य और धर्म्माशोक दोनों राजा एक दूसरे को न देखने पर भी चिर काल से मित्र चले आरहे थे ॥१६-१६॥

राजा ने अपने भानजे महारिष्ट प्रधानमन्त्रि, पुरोहित, मन्त्रि और गणक—इन चार जनों को दूत बना, ये बहुमूल्य रत्न, तीन जाति की मणि, तीनों रथ की छड़ियां, दक्षिणावर्त शङ्ख और आठ जाति के मोती देकर सेना सहित वहां (पाटलिपुत्र) भेजा ॥२०-२२॥

जम्बूकोल[1] मे नाव पर चढ कर सात दिन में वह बन्दरगाह[2] पर पहुचे, और वहा से फिर एक सप्ताह मे पटना[3] (पाटलिपुत्र) पहुच कर, उन्हों ने वह भेंट धर्म्माशोक राजा को समर्पित की, जिसे देख कर वह प्रसन्न हुआ ॥२३-२४॥

राजा ने सोचा, "इस प्रकार के रत्न मेरे यहा नहीं हैं," और प्रसन्न होकर अरिष्ट को सेनापति का, ब्राह्मण को पुरोहित का, अमात्य को दण्डनायक (जज) का और गणक को (श्रेष्ठी) का पद दिया ॥२५-२६॥

उन (आगन्तुकों) को बहुत भारी भोग की सामग्री और रहने के लिये निवासस्थान देकर, राजा ने अमात्यों से सलाह करके बदले की भेंट—पखी, पगड़ी, तलवार, छत्र, जूता, मूड़ी, मुकुट, वटम,[4] पामगु,[5] भिंगार, चन्दन, सदा निर्मलवस्त्र, बहुमूल्य अंगोछा, नागों का लाया हुआ अञ्जन, लाल मिट्टी, मानसरोवर और गङ्गा का जल, नन्दीवृत शङ्ख, वर्धमाना कुमारी, सोने के बरतन-भांडे, महाघ पालकी, हरड़, आवले, बहुमूल्य अमृतौषध, तोतों के लाये हुये चावल के साठ सौ भार, अभिषेक का सब सामान—देकर, लोग बाग के साथ दूतों को अपने मित्र (देवानांप्रियतिष्य) के पास भेजा; और साथ ही यह सद्धर्म की भेंट भी भेजी ॥२७-३३॥ "मैंने बुद्ध, धर्म और सघ की शरण ग्रहण की है; और शाक्य-पुत्र के शासन में उपासक हूं। हे

---

[1]लंका के उत्तर में 'सम्बलतुरि' नामक बन्दर।

[2]ताम्रलिप्ति का बन्दरगाह।

[3]बिहार की राजधानी पटना।

[4]कर्णाभरण।

[5]रतन-माला।

नरोत्तम ! आप भी आनन्द-पूर्वक श्रद्धा के साथ इन उत्तम रत्नों की शरण ग्रहण करें" ॥३४-३५॥

राजा ने अपने मित्र के अमात्यों को यह कह कर आदर सहित विदा किया कि, "मेरे मित्र का राज्याभिषेक दुबारा करें" ॥३६॥ पाच महीने तक बड़े सम्मान पूर्वक रह कर, वह अमात्य और दूत वैशाख शुक्ल-पक्ष की परवा को वहा से निकले ॥३७॥ ताम्रलिप्ति[1] से नाव पर चढ कर जम्बूकोल[2] में उतरे। (फिर) द्वादशी के दिन राजा के दर्शन कर, भेंट का सब सामान उनको समर्पित किया। लकापति ने भी उनका बड़ा सत्कार किया ॥३९॥

उन स्वामिभक्त अमात्यों ने लंका के हित में रत, अगहन शुक्ल प्रतिपदा के दिन प्रथमाभिषिक्त लकेश्वर को, लंकाहितैषी धर्म्माशोक का सदेश कह कर द्वितीय बार अभिषिक्त किया ॥४०-४१॥

इस प्रकार 'देवानांप्रिय' उपनामक, जनसुखदायक राजा ने, आनन्द और उत्साह-पूर्ण लका मे, वैशाख-मास की पूर्णिमा को (अपना) अभिषेक कराया ॥४२॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'देवानांप्रिय-तिष्याभिषेक' नामक एकादश परिच्छेद ॥

---

[1]रूपनारायण नदी के पश्चिम तट पर आधुनिक तमलुक; ज़ि॰ मेदनीपुर, बंगाल।

[2]द्रष्टव्य ११-२३।

द्वादश परिच्छेद

नाना देश प्रचार

संगीति समाप्त करके बुद्ध-धर्म (जिन-शासन) प्रकाशक स्थविर मोग्गलि पुत्र ने भविष्य को देखते हुये, प्रत्यन्त-देशों मे[1] शासन की स्थापना का विचार करके, कार्तिक मास मे उन उन स्थविरों को उन उन स्थानों पर भेजा ॥१-२॥

स्थविर मज्झन्तिक (माध्यमिक) को कश्मीर और गन्धार[2] को भेजा और महादेव स्थविर को महिष्मण्डल[3] भेजा ॥३॥ रक्षित नामक स्थविर को बनवास[4] की ओर भेजा, और यवन धम्मरक्षित को अपरान्त[5] देश मे भेजा ॥४॥ महाधर्मरक्षित स्थविर को महाराष्ट्र में (और) महारक्षित स्थविर को यवन लोगों मे भेजा ॥५॥ हिमवन्त (हिमालय) प्रदेश मे मज्झिम स्थविर को भेजा (और) स्वर्णभूमि[6] मे सोण और उत्तर दो स्थविर भेजे ॥६॥ अपने शिष्य महा-महेन्द्र स्थविर तथा इट्टीय, उत्तीय, सम्बल और भद्रशाल—इन पाच स्थविरों को यह कह कर लंका भेजा—तुम मनोज्ञ लका-द्वीप में मनोज्ञ बुद्ध-धर्म (जिन-शासन) की स्थापना करो ॥७-८॥

उस समय कश्मीर-गन्धार देश मे बडी दिव्य शक्ति वाला अरवाल नाम का एक क्रूर नागराज रहता था। वह सारी पकी हुई फसल ओले और वर्षा कर समुद्र मे डाल देता था। मुज्झन्तिक स्थविर आकाश मार्ग से जल्दी वहा पहुचे, और अरवाल[7] सरोवर के जल पर टहलने लगे। उन्हें देखकर नाग बहुत रुष्ट हुये और (अपने) राजा से जाकर निवेदन किया ॥९-११॥ नागराज ने क्रोधित हो, अनेक प्रकार के भय दिखलाये—जोर की

---

[1] पड़ोसी देशों में।

[2] पंजाब में पेशावर और रावलपिंडी का ज़िला।

[3] आधुनिक खानदेश ; नर्मदा से दक्षिण।

[4] वर्तमान मैसूर का उत्तरीय भाग।

[5] समुद्र तट पर बम्बई से सूरत तक का प्रदेश।

[6] वर्तमान पेगु, ब्रह्मा।

[7] रवालसर (रियासत मण्डी)।

आंधी आई, मेघ गर्जने और बर्षने लगे, बिजली कड़कने और चमकने लगी और वृक्ष तथा पर्वत-शिखर गिरने लगे ॥१२-१३॥

चारों ओर से भीषण स्वरूप वाले नाग डराते थे। स्वय (नागराज) जलता था, धुआ देता था और अनेक प्रकार से कोसता था ॥१४॥

उन तमाम भयों को अपने योगबल से दूर करके, स्थविर ने अपनी उत्तम शक्ति का परिचय देते हुये नागराज से कहा :—"यदि देवताओं सहित सारा ससार भी आकर मुझे डरावे, (तो भी) यह सारा डर भय मेरा कुछ नहीं कर सकता ॥१५॥ हे महानाग ! यदि तू समुद्र और पर्वत सहित इस सारी पृथ्वी को भी उठा कर मेरे ऊपर फैंके, तो भी मैं उस से डर नहीं सकता। इस से हे सर्पराज ! उलटा तुम्हारा ही नाश होगा" ॥१५-१८॥

इसे सुन कर नागराज का मद टूटा। (तब) स्थविर ने (उसको) धर्म का उपदेश दिया। फिर नागराज ने और हिमालय-प्रदेश के चौरासी हज़ार नागों, बहुत सारे गन्धर्वों, यक्षों तथा कुम्भण्डों ने शरण और शील को धारण किया ॥१९ २०॥ पाच सौ पुत्रों और हारीति यक्षिणी के साथ पण्डक नामक यक्ष ने आदि-फल[1] (सोतापत्ति-फल) को प्राप्त कर लिया ॥२१॥

स्थविर ने उनको यह कह कर उपदेश दिया, "अब इस के बाद पहले की तरह क्रोध मत उत्पन्न करना, खेती का नाश मत करना, क्योंकि सब प्राणी सुख की कामना करते हैं, सब में मैत्री-भाव रखना, जिस से सब मनुष्य सुख से रहें"। उन्हों ने उसको वैसे ही स्वीकृत किया ॥२३॥

(फिर) नागराज ने स्थविर को रत्न-सिहासन पर बिठाया और आप पास खड़ा होकर पखा झलने लगा ॥२४॥ (तब) कश्मीर और गन्धार के निवासी मनुष्य नागराज को पूजने के लिये आये; और यह देख कर कि स्थविर महा-दिव्य-शक्ति-धारी हैं, उन्हीं को अभिवादन कर एक तरफ बैठ गये। स्थविर ने उनको आशीविषोपम (सूत्र) का उपदेश दिया ॥२५-२६॥

अस्सी हज़ार (मनुष्यों) ने धर्मचक्षु प्राप्त किये और एक लाख पुरुषों ने स्थविर के पास प्रव्रज्या (सन्यास) ग्रहण की ॥२७॥ उस समय से लेकर अब भी कश्मीर और गन्धार देश काशाय (वेष) से प्रकाशित और त्रिरत्न-परायण[2] है ॥२८॥

---

[1]द्रष्टव्य १-३३।

[2]बुद्ध, धर्म और संघ—त्रिरत्नों में रत।

महादेव स्थविर ने महिष्मण्डल[1] देश में जाकर वहां के लोगों को देवदूत सुत्त[2] सुनाया ।।२६।। (जिस से) चालीस हज़ार लोगों के धर्म-चक्षु खुल गये, (और) चालीस हजार लोगों ने उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण की ।।३०।।

रक्षित स्थविर ने बनवास[3] देश मे जाकर वहा के लोगों के बीच आकाश में बैठ कर अनमतग्ग[4] सयुत्त का वर्णन किया ।।३१।। (जिस से) साठ हज़ार मनुष्यों की धर्म-दृष्टि खुली और सैंतीस हज़ार मनुष्य उन के पास प्रव्रजित हुये ।।३२।। उस देश में पाच सौ विहारों की स्थापना हुई और इस प्रकार स्थविर ने वहा बुद्ध-धर्म की स्थापना की ।।३३।

यवन धर्मरक्षित स्थविर ने अपरान्त[5] देश में जाकर लोगों को अग्नि-स्कन्धोपम[6] (अग्गिक्खन्धोपम) सुत्त का उपदेश किया ।।३४।। वहा सैंतीस हज़ार आदमियों को धर्माधर्म के जानने वाले (स्थविर) ने धर्मामृत का पान कराया ।।३५।। केवल क्षत्रिय-कुल मे से ही हजार पुरुषों ने और इस से भी अधिक स्त्रियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की ।।३६।।

ऋषि महाधर्मरक्षित ने महाराष्ट्र देश मे जाकर वहा महानारद काश्यप[7] जातक का उपदेश किया ।।३७।। (वहा) चौरासी हज़ार ने मार्गफल (सोतापत्ति-फल) को प्राप्त किया, और तेरह हज़ार ने स्थविर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की ।।३८।।

ऋषि महारक्षित यवनों के देश मे गये। वहाँ उन्हों ने लोगों को कालकाराम सुत्त[8] का उपदेश दिया ।।३६।। एक लाख सत्तर हज़ार लोगों को मार्ग-फल की प्राप्ति हुई (और) दस हज़ार ने प्रव्रज्या ग्रहण की ।।४०।।

चार स्थविरों[9] सहित मज्झिम ऋषि ने हिमायल प्रदेश मे जाकर धर्म

---

[1] आधुनिक खानदेश, नर्मदा से दक्षिण ।

[2] मज्झिम निकाय ३-३-१० ।

[3] वर्तमान मैसूर का उत्तरीय भाग ।

[4] संयुत्त निकाय ३ १-१०-७ ।

[5] समुद्र तट पर बम्बई से सूरत तक का प्रदेश ।

[6] संयुत्त निकाय, निदान संयुत्त ६-२ ।

[7] जातक ५४४ ।

[8] अंगुत्तर निकाय ४-३-४ ।

[9] दीपवंश ४, १० के अनुसार मज्झिम स्थविर के साथ काश्यप गोत्र, मूलदेव (अलक देव), सहदेव और दुन्दुभिस्सर गये थे ।

चक्रप्रवर्तन सुत्त[1] का उपदेश दिया। वहा अस्सी करोड़ आदमियों को मार्ग-फल की प्राप्ति हुई। पाचों स्थविरों ने पृथक पृथक पाच भिन्न देशों को श्रद्धालु बनाया। वहा प्रत्येक (स्थविर) के पास एक एक लाख मनुष्यों ने भक्तिपूर्वक, सम्बुद्ध के शासन में प्रव्रज्या ग्रहण की ॥४१-४३॥

उत्तर स्थविर सहित सिद्ध सोण स्थविर स्वर्णभूमि[2] को गये। उस समय एक क्रूर राक्षसी समुद्र से निकल कर, राजमहल में पैदा होने वाले बालकों को खा जाती थी ॥४४-४५॥ उन्हीं दिनों राजमहल में एक बच्चा पैदा हुआ। लोगों ने स्थविरों को देख कर समझा कि यह राक्षसों के साथी हैं, और हथियार-बन्द हो उन्हें मारने के लिये समीप आये। "क्या है?" पूछ कर स्थविरों ने कहा:—"हम शीलवन्त भिक्षु हैं, राक्षसी के साथी नहीं"। (उसी समय) दल-बल सहित वह राक्षसी समुद्र से बाहर निकली। उसे देख-कर लोगों ने महान कोलाहल किया। स्थविर ने (अपने योगबल से) दुगुने भयङ्कर राक्षस पैदा करके, साथियों सहित राक्षसी को चारों ओर से घेर लिया। राक्षसी ने समझा, "यह (देश) इन को मिल गया है"। इस लिये डर कर भाग गई ॥४६-५०॥

चारों ओर से उस देश की रक्षा का प्रबन्ध करके, स्थविर ने उस समागम में ब्रह्मजाल[3] सुत्त का उपदेश दिया ॥५१॥ बहुत सारे आदमियों ने शरण और शील को ग्रहण किया। साठ हज़ार लोगों के धर्म-चक्षु खुल गये ॥५२॥ साढ़े तीन हज़ार कुमारों ने और डेढ हजार कुमारियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की ॥५३॥ उस समय से राजघराने में जन्म लेने वाले बालकों का नाम 'सोणुत्तर' रखा जाने लगा ॥५४॥

महादयालु बुद्ध के आकर्षण तथा अमृत-समान प्राप्त (निर्वाण)-सुख को भी छोड़ कर उन्हों ने वहा वहा लोगों का हित किया। तो फिर (दूसरा) कौन लोकहित में प्रमाद करेगा?

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'नाना देश प्रसाद' नामक द्वादश परिच्छेद ॥

———

[1]मज्झिम निकाय ३-४-११ (१३४)
[2]पेगू (लोअर बरमा)।
[3]दीघ निकाय १-१।

त्रयोदश परिच्छेद

महेन्द्रागमन

महामति महेन्द्र स्थविर को उस समय प्रव्रजित हुये बारह वर्ष हो गये थे। उन्होंने अपने उपाध्याय और सघ की आज्ञा के अनुसार लंका को (बुद्ध)-भक्त बनाने के लिये काल की प्रतीक्षा करते हुये सोचा, "(इस समय) बूढ़ा मुटसीव राजा है। (उसके) पुत्र को राजा हो लेने दो" ॥२॥

इस बीच में जातिगणों (सम्बन्धियों) को देखने के विचार से उपाध्याय और सघ की वन्दना कर तथा राजा (अशोक) से पूछ (महेन्द्र स्थविर) अन्य चार स्थविरों तथा संघमित्रा के पुत्र महासिद्ध षड्भिज्ञ सुमन सामणेर को साथ ले, सम्बन्धियों से मिलने के लिये दक्षिणागिरि[1] गये ॥५॥

फिर धीरे २ (अपनी) माता 'देवी' के विदिशागिरि[2] नगर मे पहुच कर उसके दर्शन किये। देवी ने अपने प्रिय पुत्र को साथियों सहित देखकर, अपने हाथ से भोजन बना उन्हें खिलाया ; और सुन्दर विदिशागिरि[3] विहार मे स्थविर को उतारा ॥६-७॥

पिता के दिये हुये अवन्ती राज्य का शासन करने के लिये उज्जयनी पहुचने से पूर्व अशोक कुमार (मार्ग में) विदिशानगर में ठहरे थे। वहा एक सेठ की 'देवी' नाम की पुत्री से उनकी भेंट हुई। कुमार के सहवास से उसे गर्भ हो गया ; और उज्जयनी में उससे शुभ महेन्द्र-कुमार का जन्म हुआ। उसके दो वर्ष बाद उस देवी से सघमित्रा पैदा हुई। इस समय वह (देवी) वहा विदिशानगरी में ही रहती थी ॥८-१४॥

देश-काल जानने वाले स्थविर ने वहा बैठकर सोचा :—"मेरे पिता ने जिस अभिषेक महोत्सव की आज्ञा दी है, महाराज देवानांप्रियतिष्य को उसे कर लेने दो, और दूतों से त्रि-रत्न[4] की महिमा सुन कर जान लेने दो।

---

[1]भिलसा के समीप के पर्वत।

[2]भिलसा से प्रायः तीन मील वर्तमान बैसनगर (ज़ि० ग्वालियार)।

[3]विदिशा नगरी में एक विहार।

[4]बुद्ध, धर्म औ संघ।

वह ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन मिश्रक-पर्वत[1] पर जावे, उसी दिन हम सुन्दर लंका में पहुंचेंगे" ॥१३-१४॥ इन्द्र ने श्रेष्ठ महेन्द्र स्थविर के पास आकर कहा :—'आप लंका पर अनुग्रह करने के लिये जायें, भगवान् बुद्ध ने भी इस (आप के लका-गमन) की भविष्यद्वाणी की है। हम भी वहा आप के सहायक होंगे"।

देवी की बहन की लड़की का भण्डुक नामक लड़का, देवी के लिये दिये गये स्थविर के उपदेश को सुनकर, अनागामी फल को प्राप्त हो, स्थविर के समीप रहने लगा ॥१५-१७॥

वहा महीना भर रह कर ज्येष्ठ मास के उपोसथ के दिन महातेजस्वी स्थविर चारो स्थविरों सुमन और भण्डुक के साथ, जनता को जतलाने के लिये, उस विहार से आकाश द्वारा उड़कर यहा (लंका में) रमणीय मिश्रक पर्वत के मनोहर अम्बस्थल[2] में शीलकूट नामक शिखर पर आकर उतरे ॥१८-२०॥

अतिम शय्या पर सोये हुये लकाहितैषी मुनि (बुद्ध) ने लका के हित के लिये जिनके बारे में भविष्यद्वाणी की थी, वही लंका के लिये दूसरे बुद्ध, लका (वासी) देवताओं द्वारा पूजित महेन्द्र लका के हितार्थ वहा बैठे (पधारे) ॥२१॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'महेन्द्रागमन' नामक तेरहवा परिच्छेद ॥

---

[1]मिहिन्तले—अनुराधपुर से ७ मील दूर।

[2]मिहिन्तले पर्वत के उत्तरीय शिखर का नाम शील-कूट है। वहीं नीचे की ओर 'अम्बस्थल' नामक स्थान है।

चतुर्दश परिच्छेद

नगर प्रवेश

राजा देवानांप्रियतिष्य नगर वासियों को जल क्रीड़ा में लगा कर स्वय शिकार खेलने के लिये गये ॥१॥ चालीस हज़ार आदमियों के साथ पैदल ही दौड़ते हुये राजा मिश्रक पर्वत[1] पर आये ॥२॥ राजा को स्थविरों को दिखा देने की इच्छा से, देव (इन्द्र) मृग का रूप धारण करके पर्वत पर चरने लगा ॥३॥ राजा ने मृग को देखा, और बिना सजग किये मारना अनुचित समझ, (उसे सचेत करने के लिये) धनुश की टङ्कार की। मृग पर्वत की ओर भागा ॥४॥

राजा भी) पीछे दौड़ा। मृग दौड़ता दौड़ता स्थविर के पास पहुंचा, और जब राजा ने स्थविर को देख लिया, (तो देव) स्वय अन्तर्धान हो गया ॥५॥ (यह सोचकर) कि राजा बहुतों को देख कर शकित होगा, स्थविर केवल अपने ही सामने हुये। राजा उन्हें देख सशंक खड़ा हो गया। स्थविर ने कहा "तिष्य आओ"। "तिष्य" कहने से राजा ने उन्हें यक्ष समझा ॥६-७॥ स्थविर ने कहा, "महाराज हम धर्मराज (बुद्ध) के अनुयायी (श्रावक) भिक्षु हैं, और आप पर ही अनुग्रह करने के लिये जम्बूद्वीप से यहा (लका में) आये हैं"। इसे सुनकर राजा की शका मिटी। उसने अपने मित्र अशोक का सदेश स्मरण कर निश्चय किया—"यह भिक्षु हैं"। फिर धनुष और बाण रखकर स्थविर से यथायोग्य कुशल समाचार पूछ राजा उन के समीप बैठ गया ॥८-१०॥

राजा के आदमी भी आकर चारों ओर खड़े हो गये। तब महास्थविर ने अपने शेष साथियों को भी प्रकट किया ॥११॥ उन्हें देख कर राजा ने पूछा, "यह कब आये?" स्थविर ने उत्तर दिया, "मेरे साथ ही"। राजा न फिर पूछा, "क्या जम्बूद्वीप मे इस प्रकार के और भी यति हैं?" (स्थविर ने) उत्तर दिया, "जम्बूद्वीप काषाय (वस्त्रों) से प्रकाशमान है। वहा (इस समय) बहुत सारे त्रैविद्य[2] (तीनों विद्याओं के जानने वाले) ऋद्धि-प्राप्त, चित्त की बात को जान लेने वाले, दिव्य श्रवणशक्ति वाले और अर्हत् बुद्ध-भिक्षु हैं ॥१४॥ राजा

---

[1] द्रष्टव्य १३-१४

[2] पूर्व निवास-ज्ञान २ च्युति-प्रतिसंधि-ज्ञान ३ आस्रवक्षय-ज्ञान।

के "कैसे पहुँचे ?" पूछने पर स्थविर ने कहा, "न स्थल से, न जल से"। जिस से राजा ने जान लिया की आकाश मार्ग से आये ॥१५॥

महाबुद्धिमान् स्थविर ने राजा की जाच करने के लिये उस से सूक्ष्म प्रश्न पूछे । राजा ने पृथक पृथक उन प्रश्नों का उत्तर दिया ॥१६॥

स्थविर ने पूछा, "राजा ! इस वृक्ष का क्या नाम है ?"

राजा ने कहा, "इस वृक्ष का नाम आम है ।"

"इसको छोड़ कर और भी आम के वृक्ष हैं ?"

राजा ने कहा "बहुत से आम के वृक्ष हैं" ॥१७॥ (स्थविर ने पूछा) "इस आम के वृक्ष को और उन आम के वृक्षों को छोड़ कर पृथ्वी पर और भी वृक्ष हैं ?"

राजा ने कहा, 'भन्ते[1] ! बहुत वृक्ष है, किन्तु वह अनाम्र (आम के वृक्ष नहीं) हैं ।"

स्थविर ने (फिर) पूछा, "उन दूसरे आम और गैर-आम (अनाम्र) के वृक्षों को छोड़ कर पृथ्वी पर और भी वृक्ष हैं ?"

राजा ने कहा, "भन्ते ! हा, यही आम का वृक्ष है ?" ॥१८-१९॥ तब स्थविर ने कहा, "राजा तू पडित है" ।

(स्थविर ने फिर पूछा), "राजा ! तेरे जाति-भाई हैं ?"

राजा ने कहा, "हा ! भन्ते बहुत हैं ।"

'और गैर जाति-भाई भी हैं ?"

राजा ने कहा 'वह तो जाति-भाइयों से भी अधिक हैं !"

"इन जाति-भाइयों को और गैर जाति-भाइयों को छोड़ कर और भी कोई है ?"

(राजा ने कहा) "भन्ते ! मैं ही हूं ।"

स्थविर ने कहा, "ठीक राजा ! तू पण्डित है" । और यह जानकर कि वह "पण्डित है" स्थविर ने उस महामति राजा को चूळहत्थिपदोपम[2] सुत्त का उपदेश दिया ॥२०-२२॥ उपदेश के अन्त में चालीस हजार आदमियो सहित राजा बुद्ध, धर्म और सघ की शरण आया ॥२३॥

सध्या के समय (लोग) राजा के लिये भोजन लाये । यह जानते हुये भी कि स्थविर शाम को भोजन नहीं करते, राजा ने पूछना उचित समझ, उन

---

[1] भिक्षु के लिये सम्मान सूचक शब्द है, जैसे 'स्वामी' ।

[2] मज्झिम निकाय १२७ ।

ऋषियों को भोजन के लिये कहा। उन्होंने कहा, "हम इस समय भोजन नहीं करते"। तब राजा ने (भोजन का) समय पूछा ॥२४-२५॥

(उन के भोजन का समय कहने पर) राजा ने (उन्हें) नगर चलने के लिये कहा। उन्हों ने कहा, " आप जाइये, हम यहीं रहेंगे " ॥२६॥ " यदि ऐसा है" (राजा ने कहा) "तो यह कुमार मेरे साथ चले"। (स्थविर ने कहा)"राजा! यह (कुमार) अनागामी-फल[1] को प्राप्त, और धर्म का जानने वाला है। भिक्षु होने की इच्छा से हमारे पास रहता है। इस को अब हम प्रव्रजित करेंगे। (इस लिये) राजा! तुम (ही) जाओ" ॥२७-२८॥

" प्रातःकाल रथ भेजेंगे, आप उस मे बैठ कर नगर मे आवें " कह कर और स्थविर की वन्दना करके, राजा ने भण्डु को एक तरफ ले जाकर उस से स्थविर का उद्देश्य पूछा। उस ने राजा को सब बता दिया। राजा (स्थविर का उद्देश्य) जानकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ और सोचने लगा—अहो भाग्य ॥२९-३०॥

भण्डु के गृहस्थ होने से (ही) राजा बेखटके ही सब हाल जान सका। " इसे भी भिक्षु बना देना चहिये " (सोचकर) स्थविर ने उसी गाव की सीमा मे और उसी गण[2] में भण्डु कुमार को (एक साथ) प्रव्रज्या[3] और उपसम्पदा[4] दी। वह उसी समय अर्हत् पद को प्राप्त हो गया।

तब स्थविर ने सुमन सामणेर को बुला कर धर्म-श्रवण-काल[5] की घोषणा करने के लिये कहा। उसने पूछा, "भन्ते! मैं कितने स्थान मे सुनाई देने वाली घोषणा करूं?" स्थविर ने कहा, " जो तमाम ताम्रपर्णी मे (सुनाई

---

[1] जिस को निर्वाण प्राप्त करने में इस लोक में एक भी और जन्म अपेक्षित नहीं।

[2] भिक्षु बनाने के लिये मध्यमण्डल (युक्त-प्रान्त और बिहार) के बाहर कम से कम पांच भिक्षुओं के गण की जरूरत होती है, और मध्य-मण्डल में दस की।

[3] गृहस्थ के वस्त्र को छोड़ कर त्रिशरण और दस शील के साथ भिक्षु-भेष धारण करने को प्रव्रज्या ग्रहण करना कहते हैं।

[4] बीस वर्ष से अधिक आयु होने पर भिक्षुओं के सम्पूर्ण अधिकार और नियम के साथ उपसम्पदा की जाती है, जिससे वह भिक्षु-संघ का सभासद बनता है।

[5] धर्मोपदेश के आरम्भ में धर्म सुनने के काल की घोषणा।

दे)" । तब उसने अपने योग बल से ऐसी घोषणा की जो तमाम लङ्का में सुनाई दी ॥३१-३५॥

सोएडी के पास नागचतुष्क[1] पर बैठकर भोजन करते हुये, उस शब्द को सुनकर, राजा ने स्थविर से पुछवाया :—"कोई उपद्रव तो नहीं है ?" स्थविर ने कहा, "उपद्रव कोई नहीं है, बुद्ध-बचन सुनने के लिये समय की घोषणा कराई गई है" ॥३७॥

सामणेर के शब्द को सुनकर भूमि के देवताओं ने घोषणा की। फिर इस प्रकार क्रम से वह घोषणा ब्रह्मलोक तक पहुंच गई ॥३८॥ उस घोषणा को सुनकर बहुत सारे देवता इकट्ठे हुये। स्थविर ने उस समागम में समचित्तसुत्त[2] का उपदेश दिया, (जिस से) अनेक देवताओं को धर्म-चक्षु प्राप्त हो गये ॥३९॥ बहुत सारे नाग और सुपर्ण भी (त्रि-) शरण मे प्रतिष्ठित हुये। सारीपुत्त स्थविर के इस सुत्त के भाषण के समय देवताओं का जैसा समागम हुआ था, महेन्द्र स्थविर के (इस सुत्त के भाषण के समय भी) देवताओं का वैसा ही (समागम) हुआ ॥४१॥

राजा ने प्रातःकाल रथ भेजा। सारथी ने आकर कहा, "आप) रथ पर चढ़े, हम नगर को चलेंगे"। 'रथ पर नहीं चढ़ेंगे, (हम) तुम्हारे पीछे आ रहे हैं," कह सारथी को भेजकर वह सुन्दर मनोरथ वाले, सिद्ध, आकाश मार्ग से जाकर नगर के पूर्व प्रथम-स्तूप[3] के स्थान पर उतरे ॥४३-४४॥

स्थविर लोग पहले इसी स्थान पर उतरे थे। इसलिये इस स्थान पर बनाया गया चैत्य (स्तूप) आज भी प्रथम-चैत्य कहलाता है। ॥४५॥

राजा से स्थविर के गुण सुनकर,राजा के अन्तःपुर की स्त्रियों ने (भी) स्थविर के दर्शन करने की इच्छा की। इसके लिये राजा ने राजमहल के अन्दर श्वेत वस्त्र से आच्छादित और फूलों से अलकृत एक सुन्दर मण्डप बनवाया ॥४७॥ स्थविर के मुख से उसने ऊचे आसन पर बैठने का निषेध सुन लिया था ; (इस लिये) राजा को शका हुई कि स्थविर उच्चासन पर बैठेंगे वा नहीं? ॥४८॥ इसी बीच मे सारथी ने देखा कि स्थविर (पहले ही से आकर) वहा (नगर के बाहर) खड़े चीवर पहन रहे हैं। वह अति विस्मित हुआ और उसने राजा से जाकर कहा। राजा ने सब हाल सुनकर निश्चय किया, "वह चौकियों

---

[1] मिहिन्तले में अम्बस्थल के नीचे, कुछ दूर पर वर्तमान "नागपोकुणि"।

[2] अङ्गुत्तर निकाय २-४-६।

[3] जहां आगे चल कर प्रथम स्तूप की स्थापना हुई।

पर नहीं बैठेंगे" । (इसलिये) भूमि पर सुन्दर आसन बिछाने की आज्ञा देकर (वह) स्थविरों के सम्मुख गया । स्थविरों का सादर अभिवादन कर चुकने पर (उसने) महेन्द्र स्थविर के हाथ से (भिक्षा-) पात्र ले, पूजा सत्कार के साथ उनका नगर प्रवेश कराया ।।४६-५२।।

आसनों का बिछाना देख कर, ज्योतिषियों ने भविष्यद्वाणी की, "इन्हों ने पृथ्वी ले ली, (और अब) यह लङ्का (द्वीप) के स्वामी होंगे" ।।५३।।

राजा स्थविरों को बड़े सम्मान के साथ अन्तःपुर में ले गया। वहा वे दुशाले के आसनों पर यथायेग्य बैठे ।।५४।। राजा ने उन्हें स्वय तस्मई आदि खाद्य पदार्थो का भोजन कराया । भोजन समाप्त होने पर (राजा ने) पास बैठ कर अपने छोटे भाई उपराज महानाग की स्त्री अनुला को, जो कि राज-महल मे ही रहती थी, बुलाया ।।५५-५६।।

पाच सै स्त्रियो के सहित अनुला देवी आई और स्थविर की पूजा तथा वन्दना करके एक तरफ बैठ गई ।।५७।। स्थविर ने पेतवत्थु,[१] विमानवत्थु[२] और सच्चसंयुत्त[३] का उपदेश दिया, (जिस से) उन को सोतापत्ति-फल की प्राप्ति हुई ।।५८।।

पहले दिन दर्शन करने वालों से स्थविर के गुण सुनकर बहुत से नगर-निवासी स्थविर के दर्शन करने की इच्छा से एकत्र हुये और राज-द्वार पर बड़ा हल्ला करने लगे । (राजा ने हल्ला) सुनकर उसका (कारण) पूछा और कारण मालूम करके लोकहितैषी राजा ने कहाः—"सब के लिये स्थान नहीं है, इस लिये मङ्गल हाथी की शाला को ठीक करो। वहा सब नगरवासी स्थविर के दर्शन कर सकेंगे" ।।५९-६१।।

हथसार को ठीक करके (उसे) चान्दनी आदि से सजाकर (उस में) यथोचित आसन बिछा दिये गये ।।६२।। स्थविरों सहित महास्थविर वहा गये। (फिर) उस महोपदेशक ने वहा बैठ कर देवदूतसुत्त[४] का उपदेश किया ।।६३।। जिसे सुनकर वहा आये हुये नागरिक बड़े सन्तुष्ट हुये और उन में से एक हजार को सोतापत्ति-फल प्राप्त[५] हुआ ।।६४।।

---

[१] खुद्दक निकाय, सप्तम पुस्तक ।

[२] खुद्दक निकाय, षष्ठ पुस्तक ।

[३] संयुत्त निकाय ५,१२ ।

[४] अंगुत्तर निकाय ३. ४. ५, मज्झिम निकाय ३. ३. १० ।

[५] द्रष्टव्य १४-६४ ।

बुद्ध के समान, अनुपम, द्वीप के दीपक स्थविर ने लङ्का (द्वीप) में दो स्थानों पर (लका) द्वीप की ही भाषा में उपदेश देकर सद्धर्म की स्थापना की ॥६५॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का ' नगर प्रवेश ' नामक चतुर्दश परिच्छेद ।

पञ्चदश परिच्छेद

महाविहार परिग्रहण

हथसार में भी जगह तंग रही। इस लिये वहा आये हुये लोगों ने शहर के दक्षिण द्वार के बाहर हरे-भरे, शीतल, घनी छाया वाले, रमणीय राजोद्यान **नन्दनवन** में स्थविरों के लिये सम्मानपूर्वक आसन बिछवाये। स्थविर दक्षिण द्वार से बाहर आकर वहा बैठे ॥१-३॥ वहा बहुत सी बड़े घरों की स्त्रिया आई और उद्यान को भरती हुई स्थविर के पास बैठ गई। स्थविर ने उन को **बालपंडित सुत्त**[1] का उपदेश दिया ॥४॥ उन स्त्रियो में से एक हजार को स्रोतापत्तिफल की प्राप्ति हुई। इस प्रकार उस उद्यान मे सायङ्काल हो गया ॥५॥

तब स्थविर पर्वत पर जाने के लिये (बाहर) निकले। लोगों ने राजा को इसकी सूचना दी। राजा शीघ्र ही स्थविरों के पास आया और कहने लगा, "अब शाम हो गई है और पर्वत दूर है, (इस लिये) यहा **नन्दनवन** मे ही रहना सुखकर है" ॥६-७॥ स्थविरों ने कहा—"यह नगर के अत्यन्त समीप होने से (हमारे) अनुकूल नहीं"। तब राजा ने कहा, "**महामेघवन** उद्यान[2] (नगर से) न बहुत दूर है, न बहुत समीप। वह रमणीय तथा छाया और जल से युक्त है। रुकें, भन्ते! वहा निवास करें"। यह सुन कर स्थविर वहा से लौट पड़े ॥८-९॥ कदम्ब नदी के समीप उस लौटने के स्थान पर बनाया गया चैत्य (स्तूप) **निवत्तचैत्य** कहा जाता है ॥१०॥

राजा स्वय (ही) स्थविरो को **नन्दनवन** के दक्षिण पूर्वद्वार स्थित **महा-मेघवन** उद्यान मे ले गया ॥११॥ वहा रमणीय राजकीय गृह मे अच्छी चार-पाइया और पीढे बिछवा कर (उसने कहा), "यहा आप सुखपूर्वक रहें" ॥१२॥ (फिर) राजा, स्थविरों को अभिवादन करके अमात्यों के सहित नगर को लौट आया। स्थविर उस रात वहीं रहे ॥१३॥

प्रातःकाल (ही) राजा स्थविरों के पास फूल ले कर पहुँचा, और फूलों से उनकी पूजा कर, उसने पूछा -"आनन्दपूर्वक तो रहे? उद्यान अनुकूल

---

[1] मज्झिम निकाय ३.३.९.।

[2] द्रष्टव्य १.८०।

तो है ?"। स्थविरों ने कहा, "महाराज ! हम सुख से रहे, और उद्यान यतियों के अनुकूल है" ॥१४-१५॥ तब राजा ने पूछा, "(क्या) सघ के लिये आराम (विहार) ग्रहण करना योग्य है ?" योग्य और अयोग्य के जानने वाले स्थविर ने (बुद्ध द्वारा) वेणुवनाराम[1] के प्रति-ग्रहण का वर्णन करके कहा — "हा योग्य है"। इसे सुनकर राजा और अन्य लोग बड़े सतुष्ट हुये ॥१६-१७॥

(तब) स्थविरों की वन्दना करने के लिये पाच सौ स्त्रियों के सहित अनुला देवी भी आई। उस को सकृदागामी (सकिदागामी) फल की प्राप्ति हुई ॥१८॥ उन पाच सौ स्त्रियों के सहित अनुला देवी ने राजा से कहा, "हे देव ! हम भिक्षुणी बनना चाहती हैं"। राजा ने स्थविर से प्रार्थना की, "आप इन्हें भिक्षुणी बनावे"। स्थविर ने राजा को उत्तर दिया, "हमे स्त्रियों को भिक्षुणी बनाना योग्य नहीं ॥१९-२०॥ पाटलिपुत्र में संघमित्रा नाम से विख्यात मेरी छोटी बहिन एक बहुश्रुत भिक्षुणी है। (आप) हमारे पिता राजा (अशोक) के पास सदेश भेज कि वह (सघमित्रा) यतिराज (बुद्ध) के महाबोधि वृक्षराज की दक्षिण शाखा तथा श्रेष्ठ भिक्षुणिया ले कर यहा (लका मे) आवे। वही स्थविरी आकर इन स्त्रियों को भिक्षुणी बनावेगी" ॥२१-२३॥ "बहुत अच्छा" कह कर राजा ने अपने हाथ में गङ्गा सागर लिया और "महामेघवन उद्यान सघ को समर्पित करता हूं" कह कर महामहेन्द्र स्थविर के दहने हाथ पर (दान का) जल छोड़ दिया। जल के पृथ्वी पर गिरते ही पृथ्वी कापी ॥२४-२५॥

राजा ने स्थविर से पूछा, "पृथ्वी किस लिये कापती है ?" स्थविर ने कहा "लङ्का (द्वीप) में धर्म की स्थापना हो जाने (से)" ॥२६॥

कुलीन राजा ने स्थविर को जूही के फूल समर्पित किये। स्थविर ने राज-महल के दक्षिण खड़े हो कर पिचुल वृक्ष पर आठ मुट्ठी फूल फेंके। वहा भी पृथ्वी कापी। (पृथ्वी के कापने का) कारण पूछने पर स्थविर ने कहाः— "राजन ! तीनों बुद्धों[2] के काल में इस स्थान पर मालक[3] था, और सघ के काम के लिये अब फिर भी बनेगा" ॥२७-२९॥

---

[1] राजगृह में राजा बिम्बिसार का बगीचा। भगवान् ने सब से पहले इसी को ग्रहण किया था।

(विनय पिटक, महावग्ग)

[2] १ ककुसन्ध २ कोणागमन ३ कश्यप।

[3] चहारदीवारी, जिसके घेरे के अन्दर भिक्षुसंघ के धार्मिक कृत्य होते थे।

(फिर स्थविर) राजमहल के उत्तर सुन्दर पुष्करिणी पर गये। वहा भी स्थविर ने उतने ही फूल बिखेरे ॥३०॥ पृथ्वी वहा भी कांपी। पूछने पर (स्थविर ने) उस का कारण कहा, "राजन! यह पुष्करिणी गरम स्नानागार[1] बनेगी" ॥३१॥

फिर ऋषि ने उस राज-महल के द्वार-कोठे पर जाकर वहा भी उतने ही फूलों से पूजा की ॥३२॥ पृथ्वी तब भी कापी। राजा ने अतीव पुलकित हो उस का कारण पूछा। स्थविर ने कहा, "राजन! इसी कल्प में तीनों बुद्धों के बोधि वृक्ष से दाहिनी शाखा ला कर यहा रोपी गई थी। हमारे तथागत (बुद्ध) के बोधि वृक्ष की दाहिनी शाखा भी लाकर यहीं लगाई जायगी" ॥३३-३५॥

वहा से महास्थविर महामुचल मालक को गये। वहा उस स्थान पर भी स्थविर ने उतने ही फूल बिखेरे ॥३६॥ पृथ्वी वहा भी कापी। उस का कारण पूछने पर स्थविर ने कहा:—"यहा सघ के लिये उपोसथागार बनेगा" ॥३७॥

वहा से महामति (स्थविर) प्रश्नाम्रमालक (पञ्हम्बमालक) स्थान पर गये।

बाग के माली ने राजा को एक सुपक्व, उत्तम वर्ण-रस-गन्ध युक्त बड़ा सा आम दिया। राजा ने उसे स्थविर को अर्पित किया ॥३८-३६॥ जनहितैषी स्थविर ने बैठने का भाव प्रगट किया। राजा ने वहीं सुन्दर आसन बिछवा दिया ॥४०॥ स्थविर के बैठ जाने पर राजा ने (उन्हें) आम दिया। स्थविर ने आम खाकर उसकी गुठली बोने के लिये राजा को दी। राजा ने उसको स्वयं वहा बोया। उसके जल्दी उगने के लिये स्थविर ने उस गुठली पर हाथ धोये। उसी क्षण उस बीज में से अङ्कुर निकल आया। और शनैः शनैः वह अङ्कुर फल पत्तों सहित बड़ा भारी वृक्ष हो गया ॥४१-४३॥ इस चमत्कार को देख, राजा सहित सारी मण्डली हर्ष से रोमाञ्चित हो, हाथ जोड़े खड़ी रही ॥४४॥

स्थविर ने तब वहा भी आठ मुट्ठी फूल बिखेरे। वहा भी पृथ्वी कापी। पूछने पर उसका कारण कहा—"राजन्! सघ को जो अनेक वस्तुएँ प्राप्त होंगी, उन्हें इकट्ठे होकर बाटने का यह स्थान होगा" ॥४५-४६॥

वहा से चतुरशाला के स्थान पर जाकर, वहा भी उतने ही फूल बिखेरे। पृथ्वी वहा भी कापी ॥४७॥ राजा ने उसके कापने का कारण पूछा। स्थविर ने कहा:—"तीनों पूर्व बुद्धों के राजोद्यान ग्रहण करने के समय लङ्कावासियों ने

[1]जन्ताघर।

चारों ओर से आई हुई (भोजन-) दान की वस्तुओं को यहीं रखकर संघ सहित तीनों बुद्धों को भोजन कराया था । अब फिर यहा ही चतुरशाला (दालान) बनेगी । और इसी जगह सब का भोजन हुआ करेगा" ॥४७-४७॥

अच्छे बुरे स्थान के जानने वाले, लङ्का (द्वीप) की वृद्धि करने वाले महास्थविर मेहेन्द्र (फिर) महास्तूप (रुवनवैलि) की जगह पर गये ॥५१॥

वहा राजोद्यान की चारदीवारी के भीतर ककुध नामक एक छोटी बावड़ी थी। उसके ऊपर, जल के समीप, स्तूप के योग्य समभूमि थी। स्थविर के वहा पहुँचने पर राजा को आठ दोने चम्पा के फूल लाकर दिये गए। वे चम्पा के फूल राजा ने स्थविर को समर्पित किये। स्थविर ने चम्पा के फूलों से उस स्थान की पूजा की ॥५२-५४॥ वहा भी पृथ्वी कापी। राजा ने कापने का कारण पूछा। स्थविर ने क्रम से कापने का कारण कहा :—

"महाराज ! चारों बुद्धों के निवास से पवित्र हो चुका यह स्थान, प्राणियों के हित और सुख के लिये, स्तूप के योग्य है" ॥५६॥

इसी कल्प मे सब धर्म के जानने वाले, और सब लोगों पर दया करने वाले, ककुसन्ध बुद्ध हुये। उस समय इस महामेघवन का नाम महातीर्थ था और इसकी पूर्व दिशा मे कदम्ब नदी के पार अभय नाम का नगर था; जिसमे अभय नामक राजा था। उस समय इस द्वीप का नाम ओजद्वीप था ॥५७-५६॥

राक्षसों के (कोप के) कारण वहा के लोगों में महामारी फैली। दशबल-धारी ककुसन्ध इस उपद्रव को देखकर, प्राणियों के कष्ट को मिटाने के लिये, और इस द्वीप मे धर्म की स्थापना करने के लिये, दया भाव से प्रेरित हो चालीस हजार अर्हतों के सहित आकाश द्वारा आकर, देवकूट पर्वत पर उतरे ॥६२॥

राजन ! तब सम्बुद्ध के प्रताप से सारे द्वीप में महामारी शात हो गई ॥६३॥

वहा (पर्वत पर) ठहरे हुये महामुनि ने सङ्कल्प किया, "ओजद्वीप के सभी मनुष्य मुझे आज देखें। जो आना चाहें, वह सब मनुष्य मेरे पास बिना कष्ट के शीघ्र पहुच जावे" ॥६४-६५॥

उस पर्वत और मुनिराज को तेज से प्रकाशित देखकर, राजा और नगरनिवासी शीघ्र ही पास आ पहुचे ॥६६॥ देवताओं को पूजा चढ़ाने के लिये मनुष्य वहा आये और उन्होंने संघ सहित लोकनायक को देवता समझा ॥६७॥

राजा ने अति प्रसन्न हो मुनिराज को नमस्कार किया; और भोजन के लिए निमन्त्रित कर नगर के समीप लाया। राजा ने इस स्थान को सघ सहित बुद्ध के बैठने योग्य, उत्तम, रमणीय और शात समझकर, वहा सुन्दर बनाये हुये मण्डप मे सघ सहित सम्बुद्ध को सुन्दर आसनों पर बिठाया ॥७०॥ सघ सहित बुद्ध को यहा बैठे देख चारों ओर से लङ्का (द्वीप) निवासी भेट ले आये ॥७१॥ राजा ने अपने और अन्य लोगों के लाये हुये (खाद्य पदार्थों) से सघ सहित बुद्ध को सतृप्त किया ॥७२॥ (फिर) भोजन के पश्चात् यहा ही बैठे हुये बुद्ध को, राजा नें, सुन्दर महातीर्थ उद्यान दान किया ॥७३॥ (जिस समय) बुद्ध न बिना ऋतु के फूलों से सुशोभित महातीर्थ उद्यान ग्रहण किया, उस समय पृथ्वी कांपी ॥७४॥ यहा ही बैठकर बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया; (जिस मे) चालीस हज़ार मनुष्यो को मार्ग (श्रोतापत्ति) फल की प्राप्ति हुई ॥७५॥

दिन भर महातीर्थ वन मे विचर कर, सध्या के समय बुद्ध, बोधि (वृक्ष) के उपयुक्त स्थान पर गये ॥७६॥ वहा बैठ कर समाधि लगाई। फिर समाधि से उठ कर बुद्ध ने, लका-वासियों के हितार्थ यह सोचा, "भिक्षुणियो के साथ रुचानन्दा भिक्षुणी मेरे सिरिस के बोधि वृक्ष की दाहिनी शाखा ले कर (यहा) आजावे" ॥७७-७८॥

तब इसके बाद बुद्ध के मन की बात जानकर वह थेरी (उस देश के) राजा[1] को साथ ले, बोधि वृक्ष के पास गई ॥७९॥ महासिद्ध (थेरी) ने (बोधि वृक्ष की) दक्षिण शाखा पर मैनसिल से लकीर खेची, जिस से वह शाखा स्वय कट गई। (बोधि-वृक्ष से) पृथक हुई शाखा को हे राजन! सोन के कड़ाहे मे स्थापित कर, पांच सौ भिक्षुणियो तथा देवताओं के साथ वह थेरा, योगबल से यहा ले आई। (यहा लाकर) उस सोने के कड़ाहे को, (उसने) बुद्ध के पसारे हुये दाहिने हाथ पर रख दिया। बुद्ध ने उसे लेकर लगाने के लिये अभय राजा को दिया। राजा ने (उसे) महातीर्थ उद्यान में स्थापित किया ॥८३॥

(फिर) यहा से बुद्ध उत्तर की ओर गये। (वहा) रमणीय सिरिसमालक मे बैठकर, बुद्ध ने लोगों को धर्म का उपदेश दिया। बीस हज़ार लोगो का धर्म-चक्षु प्राप्त हुये ॥८४-८५॥

यहा से भी उत्तर जा कर, बुद्ध ने स्तूपाराम के स्थान पर बैठ कर समाधि लगाई। फिर (समाधि से) उठ कर, बुद्ध ने लोगों को उपदेश दिया। वहा ही दस हजार मनुष्यों को मार्ग-फल की प्राप्ति हुई ॥८६-८७॥ लोगों को

---

[1] जम्बूद्वीप मे पौराणिक क्षेमवति के राजा क्षेम (महावंस टीका)

पूजने के लिये अपना कमण्डल (धर्मकरक) देकर, अनुयाइयों सहित भिक्षुणी को यहा छोड़ कर, और एक हजार भिक्षुओं के सहित महादेव नामक अपने शिष्य को भी यहीं छोड़ कर, बुद्ध ने यहा से पूर्व रत्नमालक मे खड़े होकर लोगों को अनुशासित किया। फिर सघ सहित आकाश-मार्ग द्वारा जम्बूद्वीप चले गये ॥८८-९०॥

इसी कल्प में दूसरे बुद्ध, सर्वज्ञ और सब लोगों पर दया करने वाले **कोणागमन** हुये ।.९१॥ (उस समय) इस **महामेघवन** का नाम **महानोम** था; और इसकी दक्षिण दिशा मे **वर्धमान** नाम का नगर था ॥९२॥ वहा (उस समय) **समृद्धि** नाम का राजा था, और इस द्वीप का नाम वरद्वीप था ॥९३॥

उस काल में, यहा द्वीप मे दुर्वृष्टि का उपद्रव हुआ। बुद्ध **कोणागमन** इस उपद्रव को देखकर, प्राणियों के कष्ट को मिटाने के लिये, और इस द्वीप मे धर्म की स्थापना करने के लिये, दया भाव से प्रेरित हो तीस हजार अर्हतों के सहित आकाश-मार्ग मे आकर **सुमनकूट** पर्वत पर उतरे ॥९४-९६॥ सम्बुद्ध के प्रताप से दुर्वृष्टि का वह कष्ट मिट गया और (फिर) जब तक (लका मे) धर्म (शासन) विद्यमान् रहा, तब तक वृष्टि अच्छी तरह होती रही ॥९७॥

वहाँ (पर्वत पर) ठहरे हुये बुद्ध ने सङ्कल्प किया—'वर-द्वीप के सभी मनुष्य मुझे आज देखें। जो समीप आना चाहें, वह सब मनुष्य मेरे पास बिना कष्ट के शीघ्र ही पहुँच जावें" ॥९८-९९॥ उस पर्वत और मुनिराज को तेज से प्रकाशित देखकर, राजा और नगर निवासी शीघ्र ही पास आ पहुँचे ॥१००॥ देवताओं को पूजा चढ़ाने के लिये वहा आये मनुष्यों ने सघ सहित लोकनायक को देवता समझा ॥१०१॥

अति प्रसन्न-चित्त उस राजा ने मुनिराज का अभिवादन किया, और भोजन के लिये निमन्त्रित कर नगर के समीप लाया। इस स्थान को सघ-सहित बुद्ध के बैठने योग्य, उत्तम, रमणीय और शाँत समझ कर, राजा ने वहाँ बनवाये हुये मण्डप मे सघ-सहित बुद्ध को सुन्दर आसनों पर बिठाया ॥१०२-१०४॥ सघ-सहित बुद्ध को यहाँ बैठा देख, चारों ओर से लका (द्वीप) निवासी भेंट ले आये ॥१०५॥ राजा ने अपने और अन्य लोगों के लाये हुये खाद्य पदार्थों से सघ-सहित बुद्ध को सतृप्त किया ॥१०६॥ भोजन के पश्चात्, यहाँ ही बैठे हुये बुद्ध को, राजा ने सुन्दर **महानोम** उद्यान दान दिया ॥१०७॥ बुद्ध ने (जिस समय) बिना ऋतु के फूलों से सुशोभित महानोम वन

को ग्रहण किया, उस समय पृथ्वी कांपी ॥१०८॥ यहाँ ही बैठकर बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया। (जिससे) तीस हज़ार मनुष्यों को मार्ग-फल की प्राप्ति हुई ॥१०६॥

दिन भर महानोम वन में विचर कर, सायङ्काल के समय, जहाँ पहला बोधि वृक्ष था; उस स्थान पर गये। वहाँ बैठ कर समाधि लगाई। फिर समाधि से उठ कर बुद्ध ने लङ्कावासियों के हित के लिये यह सङ्कल्प किया, "भिक्षुणियों सहित कन्तकानन्दा भिक्षुणी मेरी गूलर की बोधि (वृक्ष) की दाहिनी शाखा को लेकर आवे"। ११०-११२॥

बुद्ध के मन का बात जानकर वह थेरी (उस देश के) राजा[1] को ले बोधि (वृक्ष) के पास गई ॥११३॥ महासिद्ध स्थविरी ने (बोधिवृक्ष की) दक्षिण शाखा पर मैनसिल से लकीर खींची, जिससे वह शाखा स्वयं कट गई। उस पृथक हुई शाखा को हे राजन्! सोने के कड़ाह में स्थापित कर, पाँच सौ भिक्षुणियों तथा देवताओं के साथ वह (थेरी) अपने योग बल से उसे यहाँ (लंका में) ले आई। (यहाँ लाकर) उस सोन के कड़ाह को (उसने) बुद्ध के फैलाये हुये दाहिन हाथ पर रख दिया। बुद्ध ने लेकर, लगाने के लिये समृद्धि को दे दी। राजा ने उसे महानोम उद्यान में स्थापित किया ॥११४-११७॥

तब बुद्ध ने सिरिसमालक से उत्तर जाकर, (वहाँ) नागमालक पर बैठ लोगों को धर्मोपदेश दिया ॥११८॥ राजन्! उस धर्मोपदेश को सुनकर बीस हज़ार प्राणियों को धर्म-चक्षु प्राप्त हुये ॥११६॥ यहाँ से उत्तर, उस स्थान पर, जहाँ पूर्व के सम्बुद्ध बैठे थे, जाकर समाधि लगाई। फिर समाधि से उठकर बुद्ध ने लोगों को धर्मोपदेश दिया। वहाँ भी दस हजार लोगों को मार्ग-फल की प्राप्ति हुई ॥१२०-१२१॥

लोगों को पूजने के लिये अपना काय-बन्धन देकर, अनुयाइयों सहित भिक्षुणी को यहां छोड़ कर, और एक हजार भिक्षुओं के सहित महासुम्ब नामक अपने शिष्य को भी यहीं छोड़ कर, स्थविर ने रतनमाल के इस तरफ सुदर्शनमाल पर खड़े होकर लोगों को अनुशासित किया। फिर संघ सहित आकाश मार्ग-द्वारा जम्बू-द्वीप चले गये ॥१२२-१२४॥

इसी कल्प में, सर्वज्ञ और सब लोगों पर दया करने वाले तीसरे बुद्ध, जो गोत्र से कश्यप थे, हुये ॥१२५॥ (उस समय) इस महामेघवन का नाम

[1]पाली टीका के अनुसार (पौराणिक) सोभवति के राजा सोभन।

महासागर था, और पश्चिम दिशा मे विशाल नाम का (एक) नगर था ॥१२६॥ (उस समय) वहा जयन्त नाम का राजा था, और इस द्वीप का नाम मण्ड-द्वीप था ॥१२७॥ राजा जयन्त और उस का छोटा भाई, दोनों, परस्पर बड़े भीषण प्राणि-सहारक युद्ध में प्रवृत्त थे ॥१२८॥

उस युद्ध से प्राणियों को महान् कष्ट होता देख, महादयावान कश्यप बुद्ध, प्राणियों के कष्ट को मिटाने के लिये और धर्म की स्थापना करने के लिये, दया भाव से प्रेरित हो बीस हजार अर्हतों के सहित आकाश मार्ग से शुभ्र-कूट पर्वत पर उतरे ॥१२९-१३१॥

वहा (पर्वत पर) ठहरे हुए बुद्ध (मुनीश्वर) ने हे राजन् ! भावना की, "इस मण्डद्वीप के सभी मनुष्य मुझे आज देखें। जो मेरे पास आना चाहें, वह बिना किसी कष्ट के शीघ्र पहुँच जावे" ॥१३२-१३३॥ उस पर्वत और मुनिराज को तेज से प्रकाशित (जलता हुआ) देख कर, राजा और नगर निवासी शीघ्र ही पास आ पहुँचे ॥१३४॥ अपने अपने पक्ष की विजय के लिये, बहुत सारे आदमी सघ-सहित लोकनायक को देवता समझ, देवता पर पूजा चढाने के लिये, उस पर्वत पर आये। उस राजा और कुमार ने चकित हो कर युद्ध बन्द कर दिया ॥१३५-१३६॥

अति प्रसन्न हो वह राजा बुद्ध को अभिवादन कर, भोजन के लिये निमन्त्रित कर, नगर के समीप लाया ॥१३७। उस स्थान को सघ-सहित बुद्धि के बैठने योग्य, उत्तम, रमणीय और शान्त समझ कर, उस राजा ने वहा बनवाये हुये मण्डप में, सघ सहित बुद्ध को सुन्दर आसनों पर बिठाया ॥१३८-१३९॥ सघ-सहित बुद्ध को यहा बैठा देख, चारों ओर से लका निवासी भेंट ले आये ॥१४०॥ (तब) राजा ने अपने और अन्य लोगों के लाये हुये खाद्य-पदार्थों से सघ-सहित बुद्ध (लोकनायक) को सतृप्त किया ॥१४१॥

भोजन के पश्चात् यहा ही बैठे हुए बुद्ध को, राजा ने सुन्दर महासागर उद्यान दिया ॥१४२॥ बुद्ध ने (जिस समय) बिना ऋतु के फूलों से सुशोभित महासागर बन ग्रहण किया, उस समय पृथ्वी कांपी ॥१४३॥ यहा ही बैठ कर बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया, (जिस से) बीस हज़ार मनुष्यों को मार्ग-फल की प्राप्ति हुई ॥१४४॥

दिन भर महासागर बन में विहार करके, सायङ्काल के समय, जहा पहली बोधि (-वृक्ष) थी, उस स्थान पर गये ॥१४५॥ वहा बैठ कर समाधि लगाई, फिर समाधि से उठ कर बुद्ध ने लङ्कावासियों के हित के लिये भावना

की ॥१४६॥ "भिक्षुणियों के सहित सुद्धम्मा भिक्षुणी थेरी बरगद की बोधि (-वृक्ष) की दाहिनी शाखा लेकर आ जावे" ॥१४७॥

बुद्ध के मन की बात जानकर, वह थेरी (उस देश के) राजा[1] को ले, बोधि (-वृक्ष) के पास गई ॥१४८॥ महासिद्ध थेरी ने (बोधि वृक्ष की) दक्षिण शाखा पर मैनसिल से (लाल रंग की) लकीर खींची ; जिस से वह शाखा स्वयं कट गई। उस पृथक् हुई शाखा को, सोने के कड़ाहे में स्थापित कर, पान्च सौ भिक्षुणियों के साथ वह (थेरी) अपने योग बल से (उसे) यहां ले आई। (यहां ला कर) उस सोने के कड़ाहे को (उस ने) बुद्ध के फैलाये हुये दाहिने हाथ पर रख दिया। बुद्ध ने वह (बोधि-वृक्ष की शाखा) लेकर राजा जयन्त को लगाने के लिये दे दी। राजा ने उस को महासागर उद्यान में स्थापित किया ॥१४६-१५२॥

(फिर) स्थविर ने नागमाल के उत्तर में जा (वहां) अशोकमालक पर बैठ कर लोगों को धर्मोपदेश दिया ॥१५३॥ उस धर्मोपदेश को सुनकर, राजन ! चार हजार प्राणियों को धर्म-चक्षु की प्राप्ति हुई ॥१५४॥

यहां से और उत्तर, उस स्थान पर जहां पूर्व-बुद्ध बैठे थे, जाकर समाधि लगाई। फिर समाधि से उठकर बुद्ध ने लोगों को धर्मोपदेश दिया। वहां दस हज़ार लोगों को मार्ग-फल की प्राप्ति हुई ॥१५५-१५६॥

लोगों को पूजने के लिये अपनी जल-शाटिका (नहाने का वस्त्र) दे, अनुयाइयों सहित भिक्षुणी को यहां छोड़ और एक हजार भिक्षुओं के सहित अपने शिष्य सर्वनन्द को (भी) यहीं छोड़, बुद्ध ने नदी और सुदर्शनमालक के इस ओर सोमनसमालक में खड़े हो कर, लोगों को अनुशासित किया। फिर संघ-सहित, आकाश-मार्ग द्वारा जम्बूद्वीप चले गये ॥१५७-१५६॥

इस कल्प में, सब धर्म के ज्ञाता और सब लोगों पर दया करने वाले, चौथे बुद्ध गौतम हुये ॥१६०॥ उन्हों ने यहां (लंका में) पहली बार आकर यक्षों का दमन किया और (फिर) दूसरी बार आकर नागों का ॥१६१॥ फिर तीसरी बार कल्याणी के मणिअक्खिक नाग द्वारा निमंत्रित हो कर आये, और संघ-सहित वहां भोजन करके, पूर्व के बोधि के स्थान, इस स्तूप-स्थान और परिभोग-धातु-स्थान[2] पर बैठ, इन स्थानों का उपभोग किया। और

---

[1]पाली टीका के अनुसार बनारस (वाराणसी) के (पौराणिक) राजा किकी।

[2]वह स्थान जहां बुद्ध द्वारा उपयुक्त चीज़ें स्मृति-चिन्ह के तौर पर रखी गई थीं।

पूर्व-बुद्ध के स्थान से इस ओर जाकर, उस समय लंका में मनुष्यों के न होने से द्वीपवासी देवताओं और नागों को उपदेश दिया। फिर संघ-सहित आकाश मार्ग से जम्बूद्वीप चले गये ॥१६२-१६५॥

"राजन! इस प्रकार यह स्थान चारों बुद्धों के आगमन से पवित्र हो चुका है। (इस लिये) इसी स्थान पर भविष्य में बुद्ध के शरीर के दोण[1] भर धातुओं (हड्डियों) की स्थापना पर हेममाली नाम से विख्यात एक सौ बीस हाथ[2] का स्तूप बनेगा" ॥१६६-१६७॥

राजा ने कहा, "मैं ही (इस स्तूप को) बनवाऊंगा"। महास्थविर ने कहा, "राजन! तेरे लिये इससे दूसरे और बहुत काम हैं। (तू) उनको कराना। इसे तेरा पोता करायगा। भविष्य में तेरे भाई उपराज महानाग का पुत्र जटाल (यट्ठालायक) तिष्य राजा होगा; (फिर) गोट्ठाभय नामक उसका पुत्र राजा होगा। (गोट्ठाभय के बाद) उसका पुत्र काकवर्ण तिष्य राजा होगा। (फिर) उस राजा का पुत्र एक बड़ा भारी राजा होगा। उसका नाम अभय होगा, (किन्तु वह) दुष्टगामिणी (दुट्ठगामणी) नाम से विख्यात होगा। वही महातजस्वी, प्रतापी राजा इस स्तूप को बनवायगा" ॥१६८-१७२॥

स्थविर के इस वचन को सुन राजा ने यह सब समाचार खुदवा कर, एक शिला-स्तम्भ उस स्थान पर गड़वा दिया ॥१७३॥

महामति, महासिद्ध महेन्द्र स्थविर ने महामेघवन नामक तिष्याराम को ग्रहण करते समय, पृथ्वी को आठ जगहों[3] पर कपाया। (फिर) सागर के सदृश नगर में भिक्षाटन (पिण्डपात) के लिये प्रविष्ट हो, राजा के महल में भोजन करके, वहा से निकल नन्दन वन में बैठ लोगों को अग्निस्कन्धोपम[4] (अग्गिखन्धोपम) सुत्त का उपदेश दिया। वहा एक हज़ार मनुष्यों को मार्ग फल की प्राप्ति हुई। (फिर महास्थविर) महामेघवन में आकर ठहरे ॥१७४-१७७॥

तीसरे दिन स्थविर ने राजमहल में भोजन कर चुकने पर, नन्दन वन

---

[1]माप विशेष।

[2]शिखर को छोड कर मुख्य रुवनवैलि स्तूप की ऊँचाई ठीक इतनी ही (१८० फुट) है।

[1]द्रष्टव्य १५-२५, २८, ३१, ३३, ३७ ४२ ४७, ५५।

[2] द्रष्टव्य १२-३४।

में बैठ कर आसिविसूपम[1] सुत्त का उपदेश किया। वहां एक हज़ार मनुष्यों को धर्म-चक्षु की प्राप्ति होने पर, स्थविर तिष्यारास चले गये ॥

धर्मोपदेश सुन राजा ने स्थविर के पास बैठ कर, पूछा, "भन्ते ! अब तो बुद्ध (जिन) धर्म (शासन) की स्थापना हो गई ?" स्थविर ने कहा, "राजन ! अभी नहीं, बुद्ध की आज्ञा के अनुसार उपोसथ आदि कर्म के लिये सीमा बंध जाने पर धर्म की स्थापना होगी"।

राजा ने कहा, "हे प्रकाश स्वरूप ! मैं बुद्ध की आज्ञा का पालन करूंगा, इस लिये (आप) नगर को सीमा के अन्दर रख कर, जल्दी सीमा बांध दें।" राजा के यह कहने पर स्थविर ने कहा :—"यदि ऐसा है, तो राजन ! तुम ही सीमा के मार्ग का निश्चय करो, हम उस को बांध देंगे" ॥१७८-१८४॥ "बहुत अच्छा" कह कर राजा, नन्दन वन से जैसे इन्द्र निकला वैसे ही निकल कर, अपने महल में प्रविष्ट हुआ ॥१८५॥

चौथे दिन स्थविर ने राजा के घर में भोजन करके, नन्दन वन में बैठ अनमतग्ग सुत्त[2] का उपदेश दिया ॥१८६॥ वहां एक हज़ार मनुष्यों का अमृत पान करा कर, महास्थविर, (महामेघवनाराम) चले आये ॥१८७॥

प्रातःकाल नगर में ढढोरा पिटवा, नगर, विहार को जाने का मार्ग और विहार अच्छी तरह सजवा कर, अपने अमात्यों और अन्तःपुर के लोगों सहित, राजा, रथ मे बैठ, हाथी, घोड़ों और फौज के बड़े जलूस के साथ विहार में आया। पूजनीय स्थविरों के दर्शन और वन्दना करके, राजा ने कदम्ब नदी के घाट से हल (हराई) खींचना आरम्भ करके, (फिर) नदी (ही) पर ला कर समाप्त किया ॥१८८-१९१॥ राजा के दिये हुये चिन्हों पर सीमा की स्थापना करके, बत्तीस मालकों और स्तूपाराम की (भी) सीमा बांध, (फिर) महामति, जितेन्द्रिय महास्थविर ने यथाविधि अन्दर की सीमा (भी) बांध कर, उसी दिन सारी सीमाओं को बांध दिया। सीमा-बन्धन के समाप्त होने पर पृथ्वी कांपी ॥१९२-१९४॥

पाँचवें दिन स्थविर ने राजा के घर में भोजन करके, नन्दन वन में बैठ खज्जनीय सुत्त[3] का उपदेश दिया। वहां एक हज़ार मनुष्यों को अमृत पान करा कर (फिर) महामेघवन में निवास किया ॥१९५-१९६॥

---

[1] द्रष्टव्य १२-२६।

[2] द्रष्टव्य १२-३१।

[3] संयुत्त ३-१-८७।

छठे दिन भी स्थविर ने राजा के घर में भोजन करके, **नन्दन वन** में बैठ गोमयपिण्ड सुत्त[1] का उपदेश दिया। (फिर) धर्म देशना के ज्ञाता ने एक हज़ार पुरुषों को धर्म-चक्षु प्राप्त करा कर **महामेघवन** में निवास किया ॥१९७ १९८॥

सातवे दिन (भी) स्थविर ने राजा के घर में भोजन करके, **नन्दन वन** में बैठ, धर्म-चक्र-प्रवर्तन सुत्त[2] का उपदेश देकर, एक हज़ार मनुष्यों को धर्म-चक्षु प्राप्त कराये, और **महामेघवन** में निवास किया ॥१९९-२००॥ इस प्रकार सात ही दिना मे प्रकाशस्वरूप (महेन्द्र) ने साढे आठ हज़ार मनुष्यों को धर्म-चक्षु की प्राप्ति कराई ॥२०१॥ वह धर्म की ज्योति का स्थान **महानन्दनवन** उसी दिन से **ज्योतिवन** कहा जाता है ॥२०२॥

आरम्भ मे ही राजा ने जल्दी से वायुवेग से मिट्टी को सुखवा कर स्थविर के लिये तिष्यारााम मे एक प्रासाद बनवाया था। चूंकि वह प्रासाद काले रंग का था, इस लिये उस का नाम **कालप्रसादपरिवेण**[3] हुआ ॥२०३-२०४॥ (फिर) महाबोधि-गृह, **लोह प्रासाद**[4], **शलाकागृह**[5] और एक अच्छी भोजन शाला बनवाई ॥२०५॥ (राजा ने) बहुत से परिवेण, सुन्दर पुष्करणियें तथा रात्रि और दिन के विहार के लिये भिन्न २ स्थान बनवाये ॥२०६॥ उस पाप रहित (स्थविर) के नहाने की पुष्करणी के किनारे-स्थित परिवेण का नाम **सुन्नात (सुन्हात)** परिवेण हुआ ॥२०७॥ उस द्वीप-दीपक साधु (महेन्द्र) के टहलने (चक्रमण) के स्थान पर बने परिवेण का नाम **दीर्घचंक्रमण** (-परिवण) हुआ ॥२०८॥ जिस स्थान पर स्थविर ने अर्हतों की समाधि लगाई, उस स्थान पर बने परिवेण का नाम **फलग्ग-परिवेण** हुआ ॥२०९॥ जिस स्थान पर स्थविर आश्रय के सहारे बैठे थे, उस स्थान पर (बने) परिवेण का

---

[1] संयुत्त ३-१-१०-४।

[2] द्रष्टव्य १२-४१।

[3] बीच में बड़ा आंगन रख कर चारों तरफ भिक्षुओं के रहने के लिये कोठरियां बनवाई जाती थीं। इसी को परिवेण कहते हैं। नालन्दा और दूसरी जगहों की खुदाई मे ऐसी अनेक इमारतें निकली हैं।

[4] आधुनिक 'लोवा महा पाय'।

[5] निमन्त्रण के टिकट के तौर पर उस समय शलाकायें व्यवहार में लाई जाती थीं। जिस घर में भिक्षुओं को इकट्ठा करके यह शलाकायें बांटी जाती थीं, उस को पाली में 'सलाकग्ग' कहते हैं।

नान स्थविरापाश्रय (थेरापस्सय) परिवेण हुआ ॥२१०॥ जिस स्थान पर बहुत से देवता-गणों ने आकर स्थविर की उपासना की थी, उस स्थान पर (बने) परिवेण का नाम मरुद्गण परिवेण हुआ ॥२११॥

राजा के दीर्घस्यन्दन नामक सेनापति ने स्थविर के लिये आठ बड़े खम्भों पर एक छोटा प्रासाद बनवाया ॥२१२॥ वह प्रधान पुरुषों का निवास, प्रधान परिवेण तभी से ' दीघस्यन्दन परिवेण " कहा जाता है ॥२१३॥

देवानांप्रिय उपनाम वाले, उस बुद्धिमान् राजा ने, सुन्दरमति महामहेन्द्र स्थविर के लिये लङ्का में यह पहला महाविहार[1] बनवाया ॥२१४॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'महाविहार प्रतिग्रहण' नामक पञ्चदश परिच्छेद ।

---

[1] इस से आगे अब 'महामेघवनाराम' का नाम विहार ही है।

षोडश परिच्छेद

चैत्य-पर्वत-विहार प्रतिग्रहण

नगर में पिण्डपात के लिये विचर, लोगों पर दया करते हुये तथा राज गृह मे भोजन कर राजा पर दया करते हुये, स्थविर छब्बीस दिन तक महा-मेघवन मे रहे। (फिर) आषाढ शुक्ल-पक्ष की त्रयोदशी के दिन महामति (महेन्द्र) राजमहल में भोजन करके और राजा को महा अप्रमाद (महप्पमाद) सुत्त[1] का उपदेश देकर, चैत्यपर्वत पर विहार बनवाने की इच्छा से, पूर्व द्वार से निकल कर, चैत्यपर्वत पर गये ॥१-४॥

स्थविर को वहा गये सुन, राजा दो देवियों को साथ ले, रथ पर चढ कर स्थविर के पीछे पीछे गया ॥५॥ वहा नागचतुष्क[2] नामक तालाब में नहा कर पर्वत पर चढने के लिये स्थविर एक पंक्ति में खड़े हुये थे ॥६॥ राजा रथ से उतर, स्थविरों को अभिवादन कर (एक ओर) खड़ा हो गया। स्थविरों ने पूछा "राजन्! गर्मी मे थके हुये कैसे आये?" ॥७॥ राजा ने कहा, "आप के चले जाने की आशका से मै आया हूं"। "हम यहा वर्षा-वास करने के लिये आये हैं' कह कर खन्धक[3] के जानने वाले (स्थविर) ने वस्सु-पनायिका[4] (वर्षा-वास-सम्बन्धी)-खंधक राजा को सुनाया; जिसे सुनकर अपने छोटे बड़े पचपन भाइयों सहित, राजा के पास खड़े हुये, राजा के भानजे महामात्य महारिष्ट ने राजा से आज्ञा ले कर स्थविर से प्रव्रज्या ग्रहण की। वे सभी बुद्धिमान् मुण्डन के स्थान पर ही अर्हतपद को प्राप्त हो गये ॥८-११॥

वहा कण्टक-चैत्य के स्थान पर उसी दिन, अढसठ गुफाओं के बनवाने का काम आरम्भ करके, राजा नगर को लौट आया। स्थविर वहीं रहे। पिण्डपात (भिक्षा) के समय दयावान् (स्थविर) नगर में आया करते थे ॥१२-१३॥

---

[1] संयुत्त १-३-२-८; ५-१-१-६।

[2] मिहिन्तले में अम्बस्थल के नीचे, कुछ दूर पर वर्तमान "नाग पोकुण"।

[3] विनय पिटक के 'महावग्ग' और 'चुल्लवग्ग' को खन्धक कहते हैं।

[4] विनय पिटक महावग्ग ३।

गुफा बनाने का कार्य्य समाप्त होने पर, आषाढ मास की पूर्णिमा को राजा ने वहां जाकर विहार स्थविरों को दान कर दिया ॥१४॥ उसी दिन (ससार-) सीमा पार स्थविर ने बत्तीस मालकों और उस विहार की सीमा बाँध कर, सर्व प्रथम बने तुम्बरुमालक मे, उन सभी प्रव्रजितों को उपसम्पदा दी ॥१५-१६॥

इन बासठ अर्हतों ने वर्षा ऋतु में चैत्यपर्वत पर ही निवास करके, राजा पर अनुग्रह किया ॥१७॥

उस सघपति (गणी) और अपने गुणों द्वारा विख्यात भिक्षु (-गण) के समीप, देवताओं और मनुष्यों के समूह (गण) ने आकर, पूजा करते हुये बहुत पुण्य सञ्चय किया ॥१८॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'चैत्य-पर्वत-विहार प्रतिग्रहण' नामक षोडश परिच्छेद।

———

सप्तदश परिच्छेद

धातु-आगमन

वर्षावास के पश्चात् प्रवारणा[1] करके कार्तिक मास की पूर्णिमा को महामति महास्थविर ने महाराजा से कहा : -" राजन् ! चिर काल से हम ने अपने शास्ता (सम्बुद्ध) को नहीं देखा । हम यहा अनाथों की तरह वास करते हैं, (क्योंकि) यहा हमारा कोई पूज्य (वस्तु) नहीं।" ।।२।।

राजा के "भन्ते ! आप ने कहा था, सम्बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हो गये," पूछने पर स्थविर ने कहा, "सम्बुद्ध (की) धातु का दर्शन करने से सम्बुद्ध का दर्शन होता है" ।।३।। राजा ने कहा, " मेरा स्तूप बनवाने का अभिप्राय आप को विदित है । मैं स्तूप बनवाऊगा, (किन्तु) धातु (के विषय में) आप ही जानें" ।।४।। स्थविर ने राजा से कहा, "सुमन के साथ मन्त्रणा करो"। राजा ने (सुमन) सामणेर से पूछा : -" धातु कहा पावेंगे ?" ।।५।। उस सुन्दर मन वाले सुमन सामणेर ने कहा :—" राजन् ! नगर और मार्ग सजवाकर, परिवार सहित व्रत धारण करके, बाजे गाजे के साथ, श्वेत छत्र लिये हुये, अपने मङ्गल हाथी पर चढ कर, सध्या-काल के समय महानागवन उद्यान में जाना । धातु (पच-स्कन्ध) निरोध के ज्ञाता (बुद्ध) की धातु वहां मिलेंगी" ।।६-८।।

(फिर) स्थविर ने राजकुल (महल) से चैत्य पर्वत पर जाकर, मन की सुन्दर गति वाले सुमन सामणेर (श्रामणेर) को बुला कर कहा :—" भद्र सुमन ! तुम सुन्दर पुष्पपुर (पटना) में जाकर, वहा अपने नाना महाराज (अशोक) को हमारा यह वचन कहो :—' महाराज ! आप का मित्र महाराजा देवानांप्रिय बुद्धधर्म में अत्यन्त श्रद्धालु है, और स्तूप बनवाना चाहता है। आप के पास (सबुद्ध के) शरीर के बहुत से धातु हैं । इस लिये आप

---

[1]वर्षा ऋतु में बौद्ध भिक्षु अन्य हिन्दू साधुओं की तरह ही यात्रा न करके, किसी एक जगह ठहर जाते हैं। (फिर) वर्षावास के बाद प्रथम पूर्णिमा को सभी भिक्षु एकत्रित होकर जो "पातिमोक्ख" (अपराधों की स्वीकृति) करते हैं, उसी को महाप्रवारणा कहते हैं ।

सम्बुद्ध के धातु और सम्बुद्ध का भिक्षा-पात्र दे दें" ॥६-१२॥ वहां से पात्र भर धातु लेकर, फिर देवलोक में देवताओं के राजा इन्द्र के पास जाकर, उसे हमारा यह वचन कहना :—" देवराज ! आप के पास त्रैलोक्य-पूज्य (बुद्ध) की दाहिनी दाढ़ और दाहिनी हसली की धातु (हड्डी) है। बुद्ध के दंत-धातु की तो आप पूजा करें और हसली की धातु हमें दे दें। लंकाद्वीप के इस कार्य्य में प्रमाद न करें " ॥१३-१५॥

" बहुत अच्छा, भन्ते ! " कह कर वह महासिद्ध सामणेर (अपने योग बल से) उसी क्षण धर्माशोक के समीप पहुँचा। वहां उसने (अशोक को) शालवृक्ष की जड़ में शुभ महाबोधि को रख कर, कार्तिक महोत्सव की पूजा करते हुये देखा ॥१६-१७॥ (सामणेर ने) स्थविर का सदेसा कह, राजा से पात्र भर धातु ले, हिमालय को प्रस्थान किया ॥१८॥ उस उत्तम धातु-भरे पात्र को हिमालय पर रख, वहां से देवराज (इन्द्र) के पास जाकर स्थविर का सदेश कहा ॥१६॥

देवताओं के मालिक (इन्द्र) ने चूड़ामणि नामक चैत्य में से दक्षिण हसली की धातु निकाल कर सामणेर को दिया ॥२०॥ वह धातु और धातु पात्र ला कर यति सामणेर ने चैत्यगिरि पर (ठहरे हुये) स्थविर को दिया ॥२१॥

संध्या के समय राजा (पूर्व) कथनानुसार राज-सेना के साथ, महानागवन उद्यान में आया। स्थविर ने सब धातुयें उस पर्वत पर रक्खी थीं। उसी से उस मिश्रक पर्वत का नाम चैत्यपर्वत पड़ा ॥२२-२३॥ धातु-पात्र को चैत्यपर्वत पर रख कर (केवल) "हसली-धातु" को लेकर संघ-सहित स्थविर निश्चित स्थान पर गये ॥२४॥

राजा ने मन में सोचा, " यदि यह मुनि (सम्बुद्ध) की धातु है, तो मेरा छत्र स्वयं झुक जाय, हाथी घुटनों के बल खड़ा हो जाय; और धातु सहित यह धातु की चंगेरी आकर स्वयं मेरे सिर पर बैठ जाये"। जैसा राजा ने सोचा था, वैसा ही हुआ ॥२५-२६॥ राजा, अमृत से अभिषिक्त की तरह प्रसन्न हुआ; और धातु-चंगेरी का अपने सिर से उतार कर, उसी ने हाथी की पीठ (कन्धे) पर रखी ॥२७॥

हाथी ने प्रसन्न हो चिंघाड़ मारी, और पृथ्वी काँप उठी। फिर हाथी वहां से लौट कर, स्थविरों तथा सेना और सवारियों के सहित, पूर्वद्वार से सुन्दर नगर में प्रविष्ट हो, दक्षिणद्वार से बाहर निकला। (फिर) वहां से स्तूपाराम-

चैत्य के पश्चिम की ओर बने हुये महेज्या वस्तु[1] पर जाकर, (और वहां से फिर) बोधिस्थान को लौट कर, पूर्व की ओर मुंह करके खड़ा हो गया। उस समय वह स्तूप-स्थान कदम्ब फूल और आदार लता से ढका हुआ था ॥२८-३१॥

देवताओं से सुरक्षित उस पवित्र स्थान को साफ कराकर और सजवा कर, जब राजा हाथी के कन्धे से धातु उतारने लगा, तो हाथी ने उतारने नहीं दिये। राजा ने स्थविर से हाथी के मन की बात पूछी ॥३२-३३॥ स्थविर ने कहा,"यह अपने कधे के बराबर ऊचे स्थान पर धातु की स्थापना चाहता है। इस लिये इसने (अपने कन्धे से) धातु उतारने नहीं दिये" ॥३४॥ उसी क्षण आज्ञा दे, सूखी अभय[2] वापी की सूखी मट्टी के ढेलों से (उस स्थान को) हाथी के बराबर ऊचा चुनवा, और अच्छी तरह सजवा, राजा ने, हाथी के कधे से धातु उतार कर, उन्हें वहा स्थापित किया ॥३५-३६॥

उस हाथी को वहा धातु की रक्षा करने के लिये नियुक्त करके और बहुत से मनुष्यों को जल्दी से ईन्टें बनाने के काम पर लगा कर, धातु-स्तूप बनाने के लिये, धातु-कृत्य का ही विचार करता हुआ राजा अमात्यों सहित नगर में प्रविष्ट हुआ ॥३७-३८॥ महामहेन्द्र स्थविर ने सघ-सहित सुन्दर महामेघवन में जाकर वास किया ॥३९॥

रात के समय हाथी उस धातु वाले स्थान के चारों ओर घूमता रहता था। दिन के समय बोधि-स्थान के समीप शाला में धातु-सहित खड़ा रहता था ॥४०॥

स्थविर के मतानुसार उस चबूतरे के ऊपर कुछ ही दिनों में, जाघ भर और स्तूप चुनवा तथा धातु स्थापना (के उत्सव) की घोषणा करवा कर राजा वहा से चला आया। जहा तहा चारों ओर से बहुत से लोग इकट्ठे हुये ॥४१-४२॥ उस समागम में, धातु, हाथी के कन्धे से उठ कर आकाश में चली गई। और सात ताड़ ऊचे जा आकाश में दिखाई देने लगी ॥४३॥

इस यमक-प्रातिहार्य ने लोगों को वैसे ही चकित कर दिया, जैसे बुद्ध ने गण्डम्ब वृक्ष की जड़ में (इसी यमक प्रातिहार्य से ही) लोगों को चकित कर दिया था ॥४४॥ इस धातु से निकली ज्वाला और जल-धारा से तमाम लङ्का भूमि प्रकाशित और सिञ्चित हो गई ॥४५॥

---

[1]बलिकर्म का स्थान (दे० १०-६०)।

[2]द्रष्टव्य १०-८४।

परि-निर्वाण शय्या पर पड़े हुये, पाच दिव्य-चक्षु[1] वाले भगवान् (बुद्ध) ने पाच संकल्प किये :—" बोधि-वृक्ष की दक्षिण शाखा (वृक्ष से) स्वय ही पृथक् हो, अशोक से ग्रहण की जाकर, कड़ाह में प्रतिष्ठित होवे ।।४६-४७।। प्रतिष्ठित हो कर, वह शाखा, अपने फल पत्तों से निकलने वाली छः रग की किरणों से तमाम दिशाओं को प्रकाशित करे। (फिर) वह मनोहर शाखा सोने के कड़ाह सहित ऊपर जाकर, एक सप्ताह तक, हिम-गर्भ-भूमि में अदृश्य हो कर ठहरे ।।४८-४६।। स्तूपाराम में स्थापित हुई, मेरी दाहिनी हंसली की धातु आकाश मे जाकर यमक प्रातिहार्य करे ।।५०।। मेरी दोण भर निर्मल धातु लङ्का के अलङ्कार स्वरूप हेममालक चैत्य में स्थापित हो, फिर सम्बुद्ध का रूप धारण कर आकाश में जावे, और वहा ठहर कर यमक प्रतिहार्य करे" ।।५१-५२।। तथागत (बुद्ध) ने इस प्रकार यह पाच सकल्प किये। इसी लिये उस धातु ने वह प्रातिहार्य की ।।५३।।

आकाश में उतर कर, वह (धातु) राजा के सिर पर ठहरी। राजा ने अतिप्रसन्न हो, उसे चैत्य में स्थापित किया ।।५४।। उस धातु की चैत्य में स्थापना होने पर अद्भुत लोमहर्षण भूकम्प हुआ ।।५५।।

इस प्रकार बुद्धों की महिमा अचिन्त्य है। बुद्धों का धर्म भी अचिन्त्य है। और जो इस 'अचिन्त्य' में श्रद्धा रखते हैं, उन को फल भी अचिन्त्य होता है ।।५६।।

उस प्रातिहार्य को देखकर, लोगों की सम्बुद्ध में श्रद्धा हुई। राजा के छोटे भाई राजकुमार मत्ताभय ने सम्बुद्ध में श्रद्धावान् हो, राजा से आज्ञा माग कर एक हजार मनुष्यों के सहित प्रव्रज्या ग्रहण की ।।५७-५८।। चेतावी ग्राम, द्वारमण्डल,[2] विहारबीज, गल्लकपीठ और उपतिष्यग्राम[3] से पाच पाच सौ युवकों ने बुद्ध (तथागत) में श्रद्धावान् हो प्रव्रज्या ग्रहण की ।।५९-६०।। इस प्रकार नगर के भीतर और बाहर से सम्बुद्ध के शासन में तीस हजार भिक्षु प्रव्रजित हुये ।।६१।।

थूपाराम (स्तूपाराम) में सुन्दर स्तूप बन जाने पर, राजा अनेक रत्नादिकों से सदैव ही उसकी पूजा करवाता रहा ।।६२।। राजा के अन्तःपुर की स्त्रियों (क्षत्राणियों), अमात्यों, नागरिकों और देहात के लोगों ने पृथक् पृथक् पूजा

---

[1] द्रष्टव्य ३-१,

[2] द्रष्टव्य १-१०.

[3] द्रष्टव्य ७-४४।

को ॥६३॥ (फिर) स्तूप (बनवाने) के बाद राजा ने यहाँ एक विहार बनवाया। इसी से (यह) विहार थूपाराम नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६४॥

इस प्रकार (जब) परिनिर्वाण-प्राप्त लोक-नाथ (बुद्ध) ने अपने शरीर की धातु से (ही) जनता का बहुत हित-सुख किया। तो (उनके) जीवन काल का तो कहना ही क्या ॥६५॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'धातु-आगमन' नामक सप्तदश परिच्छेद।

अष्टादश परिच्छेद

महाबोधि ग्रहण

महाबोधि और थेरी को मगाने के सम्बन्ध मे स्थविर की आज्ञा का स्मरण करके, उसी वर्षा (काल) में एक दिन अपने नगर में स्थविर के पास बैठे हुये राजा ने अमात्यों से सलाह करके, अपने भानजे अरिष्ट अमात्य को उस कार्य्य पर नियुक्त करने का विचार किया। यह विचार करके राजा ने उसे बुला कर कहा, "तात ! महाबोधि और सघमित्रा थेरी के लाने के लिये धर्माशोक के पास जा सकते हो ?" ॥४॥

(अमात्य ने उत्तर दिया) "हे सम्मानदाता ! उनको वहा से यहा लाने के लिये जा सकता हूँ, किन्तु वहा से यहा (लौट) आने पर (मुझे) प्रव्रजित होने की आज्ञा मिल जाये' ॥५॥ 'ऐसा ही होवे" कह कर राजा ने उसे वहा भेजा। स्थविर तथा राजा का सदेश ले, (उन्हे) वन्दना कर वह (अमात्य) आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को जम्बुकोल बन्दर से नाव पर चढ, स्थविर के सङ्कल्प की प्रेरणा से महासमुद्र को पार करके विदा होने के दिन ही रमणीय पटना नगर (पुष्फपुर) पहुँच गया ॥५-८॥

पाच सौ कन्याओं और अन्तःपुर की पाच सौ स्त्रियों के सहित शुद्ध, व्रती अनुलादेवी दसशील[१] और पवित्र काषाय वस्त्र का धारण करके, प्रव्रज्या प्राप्ति की इच्छा से थेरी के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई, नगर के एक भाग में राजा द्वारा बनवाये गये भिक्षुणियों के निवास-स्थान में रहने लगी ॥९-११॥ यह भिक्षुणी-आश्रम उपासिकाओं का निवास-स्थान होने से 'उपासिका विहार' नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१२॥

महाअरिष्ट भानजे ने राजा धर्माशोक के पास पहुँच राजा का सदेश अर्पण कर (फिर) स्थविर का सदश कहा ॥१३॥ 'राजश्रेष्ठ ! आपके मित्र

---

[१]द्रष्टव्य १-६२। इनके अतिरिक्त पाँच शील और हैं:—१-विकाल (मध्याह्न के पश्चात) भोजन न करना २-नृत्य गीत इत्यादि से दूर रहना ३-माला, गन्ध, लेप इत्यादि का धारण न करना ४-चान्दी सोने इत्यादि का ग्रहण न करना ५-ऊँचे आसन पर शयन न करना।

(देवानाप्रिय तिष्य) के भाई की स्त्री प्रव्रज्या की इच्छा करती हुई, नित्य ही सयम-पूर्वक रहती है। उसको प्रव्रजित करने के लिये भिक्षुणी संघमित्रा को और उसके साथ महाबोधि की दक्षिण शाखा को (भी) भेज दें" ॥१४ १५॥ उसने स्थविर का यह कथन थेरी (सघ-मित्रा) से भी कहा। थेरी ने स्थविर के इस विचार को राजा (अशोक) के पास जाकर कहा ॥१६॥ राजा ने कहा, "अम्म ! तुझे (भी) न देख कर, पुत्र और नाती[1] के वियोग से उत्पन्न शोक को मै कैसे सहूंगा ?" ॥१७॥ उस (थेरी) ने कहा, "महाराज ! (एक तो) भाई का कथन भारी है, दूसरे प्रव्रजित होने वाले बहुत हैं; इसलिये वहा मेरा जाना ही उचित है" ॥१८॥

राजा ने सोचा, "महान् महाबोधि वृक्ष पर शस्त्र का आघात करना (तो) उचित नही, (तब) मै शाखा कैसे प्राप्त करूँगा ?" ॥१६॥ महादेव नामक अमात्य की राय से राजा ने, भिक्षु सघ को निमंत्रित कर भोजन कराकर पूछा, "भन्ते ! लङ्का मे महाबोधि भेजनी चाहिये अथवा नहीं ?" स्थविर मोग्गलिपुत्र ने, "भेजनी चाहिये" कह राजा को पच दिव्य चक्षुओं वाले (सम्बुद्ध) के पाच सङ्कल्प सुनाये, जिन्हें सुन कर राजा सतुष्ट हुआ ॥२०-२२॥

उसने महाबोधि को जानेवाली सात योजन (५६ मील लम्बी) सड़क की सफाई कराकर, उसे अनेक प्रकार से सजवाया, और कड़ाह (गमला बनवाने के लिये सोना मगवाया। विश्वकर्म्मा सुनार का रूप धारण करके आया, और पूछने लगा, "कड़ाह कितना बडा बनाऊँ ?" राजा ने उत्तर दिया, "प्रमाण का निश्चय तुम स्वय करके बना दो" ॥२३-२५॥ (यह कहने पर) उसने सोना ले, हाथ से मोड कर उसी क्षण कडाह बना दिया और चला गया ॥२६॥

नौ हाथ की गोलाई, पाच हाथ की गहराई, तीन हाथ आर-पार, आठ अङ्गुल मोटा, जवान हाथी की सूँड के समान जिसके मुख का किनारा, ऐसा, प्रातःकाल के सूर्य्य के समान चमकता हुआ कड़ाह लेकर राजा, अपनी सात योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी चतुरङ्गिनि सेना और भिक्षुओं के महान् सघ के साथ, अनेक अलङ्कारों से सजे हुये, अनेक वस्त्रों से चमकते हुये, अनेक प्रकार की पताकाओं मालाओं और फूलों से विभूषित महाबोधि के पास आया। (फिर) राजा ने अनेक प्रकार के गाजे-बाजे के साथ सेना को खड़ा करके, क़नात लगवाकर, महाम् सघ के एक हज़ार प्रमुख स्थविरों और

[1] संघमित्रा का पुत्र सुमन सामणेर।

हजार से (भी) अधिक अभिषिक्त राजाओं को साथ लेकर हाथ जोड़े हुये महाबोधि के ऊपर की तरफ देखा ॥२७-३३॥

तब उस (महाबोधि) की दक्षिण-शाखा में चार हाथ धड़ छोड़ कर (छोटी) शाखायें अन्तर्धान हो गई ॥३४॥

इस प्रातिहार्य को देखकर राजा ने अत्यन्त प्रसन्न हो उद्घोषित किया, "मैं अपने राज्य से महाबोधि की पूजा करता हूँ," और महाबोधि को अपने महान् राज्य पर अभिषिक्त किया। पुष्पादि से महाबोधि को पूजा तथा तीन (बार) प्रदक्षिणा कर, आठ स्थानों पर हाथ जोड़ वन्दना करके, स्वर्ण से खचित और अनेक रत्नों से मण्डित आसन पर सोने के कड़ाह को रखवाकर, (फिर) उस उत्तम शाखा को ग्रहण करने के लिये शाखा के बराबर ऊँचे (उठा देने वाले) आसन पर चढ़ कर, राजा ने सोने की सलाई और मैनसिल से शाखा पर लकीर खींच शपथ (सच्चकिरिया) की, "यदि महाबोधि को लङ्का जाना है, यदि मैं बुद्ध के शासन में दृढ़ हूँ, तो महाबोधि की दक्षिण शाखा स्वयं ही बोधि से पृथक् होकर (उस) सोने के कड़ाह में प्रतिष्ठित हो जावे" ॥३५-४१॥ लकीर के स्थान से वह महाबोधि स्वयं ही अलग होकर, सुगन्धित मट्टी से भरे हुये उस कड़ाह में स्थापित हो गई ॥४२॥

राजा ने पहली लकीर के ऊपर तीन तीन अङ्गुल की दूरी पर मैनसिल से दस लकीरें और खींचीं ॥४३॥ पहली लकीर से दस मोटी जड़ें, और अन्य लकीरों से (भी) दस दस जड़ें फूट कर जाले की तरह निकल आई ॥४४॥ उस प्रातिहार्य को देख, राजा ने अति प्रसन्न हो अपने आदमियों सहित वहाँ भी जयजयकार किया। भिक्षुसंघ ने (भी) सन्तुष्ट हो, साधुवाद उद्घोषित किया। चारों ओर हज़ारों झण्डियाँ (हवा में) उड़ने लगीं ॥४५-४६॥ इस प्रकार अनेक लोगों को प्रसन्न करती हुई सौ जड़ों के सहित वह महाबोधि, सुगन्धित मट्टी में प्रतिष्ठित हुई ॥४७॥ दस हाथ (लम्बा) तना; चार चार हाथ (लम्बी), पाँच शाख फल वाली पाँच सुन्दर शाखायें, जिनमें से (प्रत्येक में) हज़ारों टहनियाँ; इस प्रकार की मनोहर शोभावाली वह महाबोधि थी ॥४७-४९॥ कड़ाहे में महाबोधि के स्थापित होने के समय पृथ्वी काँपी, और अनेक प्रकार के प्रातिहार्य हुये ॥५०॥

देवलोक और मनुष्य-लोक में स्वयं ही, बाजों का शब्द होने से, देवताओं और ब्रह्मगण के साधुवाद के निनाद से, मेघों की (गड़गड़ाहट से), मृग, पक्षी, और यक्षादिकों के शोर से तथा पृथ्वी-कम्पन के शब्द से एक (महान्) कोलाहल हुआ ॥५१-५२॥

(महा-) बोधि के फल पत्तों से छः रंग की सुन्दर किरणों ने निकल कर सारे ब्रह्माण्ड (चक्रवाल) को सुशोभित कर दिया ॥५३॥ फिर कड़ाह सहित महाबोधि आकाश में जाकर एक सप्ताह तक हिम-गर्भ में अदृश्य रही ।५४। राजा ने मंच से उतर, सप्ताह भर वहीं रह कर, नित्य, अनेक प्रकार से महाबोधि की पूजा की ॥५६॥ सप्ताह की समाप्ति पर तमाम वर्फीले बादल और किरणें महाबोधि में समा गई ॥५६॥

(इस प्रकार) आकाश के निर्मल होने पर सब लोगों को, कड़ाह में प्रतिष्ठित सुन्दर महाबोधि दिखाई दी । ५७॥ विविध प्रकार के प्रातिहार्य से जनता को विस्मित करती हुई महाबोधि पृथ्वी-तल पर उतरी ॥५८॥ अनेक प्रकार के प्रातिहार्य से प्रसन्न हो, महाराज ने अपने महान् राज्य से महाबोधि की पूजा की । राज्य पर महाबोधि को अभिषिक्त कर, अनेक प्रकार से उसकी पूजा करते हुये महाराज एक सप्ताह तक वहीं ठहरे ॥५९-६०॥

आश्विन शुक्ल-पक्ष की पूर्णिमा को उपोसथ के दिन महाबोधि को ग्रहण किया । फिर दो सप्ताह बाद, आश्विन कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी को उपोसथ के दिन, राजा महाबोधि को सुन्दर रथ में स्थापित कर, पूजा करके, उसी दिन अपने नगर को ले आये । (फिर) एक सुन्दर मण्डप बनवा और सजवा कर, कार्तिक शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा के दिन महाशाल वृक्ष के नीचे पूर्व की ओर महाबोधि की स्थापना करके, प्रतिदिन उसकी अनेक प्रकार से पूजा करते रहे । महाबोधि के आगमन के सत्रहवें दिन, उसमें नये अंकुर निकल आयें, जिससे प्रसन्न हो राजा ने फिर एक बार अपने राज्य से पूजा की । महीपति ने महाबोधि को (अपने) महान् राज्य पर अभिषिक्त कर नाना प्रकार से उसकी पूजा कराई ॥६१-६७॥

कुसुमपुर (पटना) रूपी सरोवर में सरश्मि सूर्य के समान; अनेक प्रकार की मनोरम ध्वजाओं से सुसज्जित, विशाल, सुन्दर और श्रेष्ठ महाबोधि की पूजा देवताओं और मनुष्यों के चित्त को विकसित करने वाली हुई ॥६८॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'महाबोधि ग्रहण' नामक अष्टादश परिच्छेद ।

एकोनविंश परिच्छेद

बोधि आगमन

महाराज अशोक ने महाबोधि की रक्षा के लिये अठारह[1] क्षत्रिय परिवार; देवकुल, अमात्यों, ब्राह्मणों और व्यापारियों के आठ आठ परिवार, ग्वालों, बढइयों, विन्दों (कुलिङ्गों) और इसी प्रकार जुलाहे, कुम्हार तथा अन्य शिल्पियो के परिवार, और (इसी प्रकार) नागों और यक्षों के भी परिवार, आठ आठ स्वर्ण और चादी के घड़े दे (कर) ग्यारह भिक्षुणियो सहित संघमित्रा महाथेरी तथा अरिष्ट आदि को गङ्गा में नाव पर चढा दिया ॥१५॥

स्वय राजा नगर से निकल (स्थलमार्ग द्वारा) विन्ध्या के जगल को पार करके, एक सप्ताह ही मे ताम्रलिप्ति पहुंच गये ॥६॥ देवता, नाग और मनुष्य भी बड़े समारोह के साथ महाबोधि की पूजा करते हुये, एक सप्ताह मे (ही) वहा पहुंचे ॥७॥ महाबोधि का महासमुद्र के किनारे स्थापित करवा कर महीपति ने फिर एक बार अपने राज्य से उसकी पूजा की ॥८॥ कामना पूरी करनेवाले (अशोक) ने महाबोधि को अपने महान् राज्य पर अभिषिक्त करके, मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन आज्ञा दी, "उसी सुन्दर कुल के वही आठ आठ आदमी, जो शालमूल के नीचे महाबोधि को ले जाने के लिये नियुक्त किये गये थे (अब फिर) महाबोधि को उठावें और गले तक जल मे जाकर, नाव पर अच्छी तरह स्थापित करे" ॥६-११॥

फिर थेरियो के सहित महाथेरी (सघमित्रा) और महारिष्ट अमात्य को नाव पर चढाकर राजा ने कहा, "मै ने अपने राज्य से तीन बार महाबोधि की पूजा की, इसी प्रकार मेरा मित्र (देवानाप्रियतिष्य) भी राज्य से महाबोधि की पूजा करे" ॥१२-१३॥ यह कह, महाबोधि को जाते देख, समुद्र के किनारे हाथ जोड़े खड़े हुये राजा के आसू निकलने लगे ॥१४॥

---

[1]द्रष्टव्य १९-३८। अन्य सिंहाली ग्रन्थों में महाबोधि के साथ आये हुये इन आठ राजकुमारों का भी उल्लेख है।—१-बगुत २-सुमित्त ३-सन्दगोत्र ४-देव गोत्र ५-दाम गोत्र ६-हिरुगोत्र ७-सिसि गोत्र ८-जुतिन्धर।

"अहो ! सुन्दर किरणों के जाल बिखेरती हुई, दशबलों-वाले सम्बुद्ध की महाबोधि जा रही है" ।।१५।। महाबोधि के वियोग से शोकाकुल धर्म्माशोक, रोते और विलाप करते हुये अपने नगर को लौटे ।।१६।।

महाबोधि को लिये हुये नाव समुद्र में चली । चारों ओर योजन भर तक समुद्र की लहरें शान्त हो गई ।।१७।। चारों ओर पाँच रंग के कमल-फूल निकल आये और आकाश में अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे ।।१८।। देवताओं ने अनेक प्रकार से महाबोधि की पूजा (करनी) आरम्भ की और नाग उसे (उड़ा) ले जाने की चेष्टा करने लगे ।।१९।। छः अभिज्ञाओं और (योग-)बल में पारगत संघ-मित्रा महाथेरी ने गरुड़ का रूप धारण करके उन महानागों को डराया ।।२०।। तब भयभीत होकर उन महानागों ने थेरी से याचना की (और उसकी आज्ञा से) महाबोधि को नागभवन ले जाकर, वहा नागराज्य से और दूसरे अनेक प्रकार से महाबोधि की पूजा करते रहे । फिर एक सप्ताह के बाद उन्होंने महाबोधि को लाकर, नाव में स्थापित किया ।।२१-२२।। उसी दिन महाबोधि यहा (लङ्का में) जम्बूकोल पहुँच गई ।

लोक हित में रत राजा देवानांप्रियतिष्य ने, सुमन सामणेर से पहले ही महाबोधि का आगमन सुनकर, मार्गशीर्ष मास के आदि दिन से ही उत्तर द्वार से लेकर जम्बूकोल तक की तमाम सड़क को सजवा दिया था । समुद्र के किनारे वहा समुद्रपर्णशाला[1] के स्थान पर, महाबोधि के आगमन की आशा करते हुये, खड़े होकर, राजा ने महास्थविरी के सिद्धि-बल से महाबोधि को आते हुये देखा ।।२३-२६।। उस प्रातिहार्य को प्रसिद्ध करने के लिए, उस स्थान पर बनवाई गई शाला समुद्रपर्णशाला के नाम से प्रसिद्ध हुई ।।२७।। महास्थविर के प्रताप से, सेना के सहित राजा और (अन्य) स्थविर उसी दिन जम्बूकोल पहुँच गये ।।२८।।

महाबोधि के आगमन पर, प्रेम के आवेग से उत्साहित हो (लोगों ने) जयजयकार किया । सुविश राजा ने सोलह कुलों के सहित, गले तक गहरे पानी में प्रवेश कर महाबोधि को सिर पर ले, किनारे पर लाकर सुन्दर मण्डप में रक्खा । फिर लंकेश्वर ने लंका के राज्य से (महाबोधि) की पूजा की । अपना राज्य (उन) सोलह कुलों को सौंप कर, राजा ने स्वय द्वारपाल के स्थान पर खड़े हो, तीन दिन तक विविध प्रकार से महाबोधि की पूजा कराई ।।२९-३२।।

---

[1] द्रष्टव्य १६-२७ ।

दशमी के दिन, स्थानास्थान के जानने वाले राजा ने वृक्ष-राज महाबोधि को सुन्दर रथ में रख, पूर्वविहार के स्थान पर स्थापित किया; और सब लोगों के सहित संघ को भोजन कराया ॥३३-३४॥

महामहेन्द्र स्थविर ने राजा को, सम्बुद्ध के इस स्थान पर नागों को दमन करने की सब कथा[1] सुनाई ॥३५॥ राजा ने स्थविर से सम्बुद्ध के उपवेशन आदि से पवित्र हुये सब स्थानों को सुनकर, वहां वहां स्मृति-चिन्ह बनवा दिये ॥३६॥

(फिर) राजा महाबोधि को तिवक्क-ब्राह्मण (के) ग्राम के द्वार पर रखवा कर (वहाँ से) स्थान स्थान पर शुद्ध बालू बिछवा, अनेक प्रकार के श्रेष्ठ फूलों और पताकाओं से मार्ग को सजवा, निरालस्य हो कर दिन रात महाबोधि की पूजा करता हुआ चतुर्दशी के दिन अनुराधपुर के समीप लाया ॥३७-३९॥ (वहां से) उस समय, जब छाया बढ़ने लगी, अच्छी प्रकार सजे हुये नगर के उत्तरद्वार से प्रवेश कर (और) दक्षिणद्वार से निकल कर, चारों बुद्धों के आगमन से पवित्र महामेघवनाराम में (प्रवेश किया) ॥४०-४१॥

(वहाँ) सुमन (सामणेर) के कथनानुसार अच्छी तरह सजाये हुये, पूर्व (-बुद्धों) के बोधि-वृक्षों के सुन्दर स्थान पर पहुँच कर, राज-अलङ्कारों से अलङ्कृत उन सोलह कुलों सहित राजा ने महाबोधि को उठाया, और (फिर) स्थापित करने के लिये रख दिया ॥४२-४३॥ हाथ के छूटते ही वह (महाबोधि) आकाश में अस्सी हाथ ऊंची चढ़ गई; और वहाँ ठहर कर छः रंग की सुन्दर किरणें छोड़ने लगी ॥४४॥ लंका (द्वीप) में फैल कर ब्रह्मलोक तक पहुँचने वाली वह सुन्दर किरणें सूर्यास्त के समय तक रहीं ॥४५॥

(उस) प्रातिहार्य को देखकर दस हज़ार मनुष्यों ने प्रसन्न हो, दिव्य-दृष्टि और अर्हत् पद को प्राप्त कर प्रव्रज्या ग्रहण की ॥४६॥ तब सूर्यास्त के समय, रोहिणी (नक्षत्र) में उतर कर, (महाबोधि) पृथ्वी पर स्थापित हुई। (उस समय) पृथ्वी कांपी ॥४७॥

महाबोधि की जड़ें कड़ाहे के मुंह में से बाहर निकल कर, कड़ाहे को ढकती हुई पृथ्वी तल में चली गईं ॥४८॥ महाबोधि के प्रतिष्ठित होने पर, चारों ओर से आकर एकत्र हुये लोगों ने, गन्धमाला आदि पूजा की सामग्री से (महाबोधि की) पूजा की ॥४९॥ मेघ ने बड़ी वर्षा की। चारों ओर से हिम-गर्भ से (निकल कर) शीतल बादलों ने महाबोधि को ढक लिया ॥५०॥ लोगों को

---

[1] द्रष्टव्य १-४४-७० ।

आनन्दित करने वाली महाबोधि सात दिन तक उस हिम-गर्भ में ही अदृश्य रही ॥५१॥ सप्ताह की समाप्ति पर तमाम मेघ हट गये। (उस समय) छः रंग की किरणों के सहित महाबोधि दिखाई दी ॥५२॥

महामहेन्द्र स्थविर और संघमित्रा भिक्षुणी अपने अनुयाइयों के सहित तथा राजा भी अपने आदमियों सहित वहा आया ॥५३॥ काजरग्राम[1] और चन्दनग्राम के क्षत्रिय, तिवक्क ब्राह्मण और दूसरे लङ्का निवासी भी जो महाबोधि के महोत्सव के लिये बहुत उत्सुक थे; देवताओं के प्रताप से वहा आ गये। (इस) प्रातिहार्य से विस्मित उस महासमागम में, सब के देखते देखते पूर्व की शाखा में से एक अखण्डित, पका फल गिर पड़ा। उस गिरे फल को उठा कर स्थविर ने राजा को रोपने के लिये दे दिया ॥५४-५६॥ राजा ने उसे, महाआसन[2] के स्थान पर रखे हुये, सुगन्धित मट्टी से पूर्ण सोने के कड़ाहे (गमले) मे रोप दिया ॥५७॥ सब के देखते २ उस में आठ अङ्कुर निकल आये, और वह (बढ कर) चार २ हाथ लम्बे बोधि के पौदे हो गये ॥५८॥

राजा ने उन छोटे बोधि-पौदों को देख, विस्मित हो, श्वेत छत्र से उन की पूजा की; और उनका राज्याभिषेक (भी) किया ॥५९॥ (फिर) एक एक बोधि को निम्न लिखित आठ स्थानों मे स्थापित किया :—एक जम्बूकोल पट्टन मे, एक महाबोधि को नाव से उतार कर रखने के स्थान पर; एक तिवक्क ब्राह्मण के ग्राम मे, एक थूपाराम में; एक ईश्वरश्रमणाराम[3] मे; एक प्रथमचैत्य[4] के आङ्गन में, एक चैत्यपर्वताराम मे; एक काजरग्राम मे और एक चन्दनग्राम में ॥६०-६१॥

बाकी चार पके हुवे फलों से पैदा हुवे बत्तीस बोधि-पौदों को चारों ओर योजन योजन की दूरी पर जहा तहा विहारों में स्थापित करवा दिया ॥६३॥ इस प्रकार लंका निवासियों के हित के लिये, सम्यक् सम्बुद्ध के तेज से वृक्ष-राज महाबोधि की स्थापना होने पर, अपनी मण्डली के सहित अनुला देवी ने संघ-मित्रा थेरी के पास प्रव्रज्या ग्रहण करके, अर्हत्पद प्राप्त किया

---

[1] तिष्यमहाराम से १०½ मील उत्तर, दक्षिण लङ्का में, मैनक-गङ्गा के किनारे आधुनिक कतरगाम।

[2] जहाँ आगे चल कर 'महा आसन' बनाया गया।

[3] महाविहार से एक मील दक्षिण आधुनिक इसुरुमुनिगल।

[4] द्रष्टव्य १४-४५।

॥६४-६५॥ पाच सौ आदमियों सहित उस क्षत्रिय अरिष्ठ ने (भी) स्थविर के पास प्रव्रज्या ग्रहण करके अर्हत् पद को प्राप्त किया ॥६६॥

जो आठ सेठकुल महाबोधि को (जम्बूद्वीप से) यहा (लका में) लाये थे, वह "बोधाहार कुल" नाम से प्रसिद्ध हुये ॥६७॥

सघ सहित संघ-मित्रा महाथेरी 'उपासिका विहार' नाम से विख्यात भिक्षुणी-आश्रय मे रहने लगीं ॥६८॥ वहा उन्हों ने बारह मकान बनवाये ; जिन में से तीन मुख्य थे। उन तीन मे से एक मकान मे महाबोधि के साथ आये हुये जहाज़ का मस्तूल, एक मे पतवार और एक मे पाल रखवाया। इन्हीं के अनुसार इन घरों के नाम[1] हुये ॥६९-७०॥ अन्य निकायों[2] के पैदा हो जाने पर भी वह बारह मकान सदैव हत्थाढ़क भिक्षुणियों के ही अधिकार मे रहे ॥७१॥

राजा का मङ्गल हाथी स्वेच्छा से विचरता हुआ, नगर के एक तरफ, कन्दर के पास, शीतल कदम्ब-पुष्पों के झुरमुट मे खड़ा हो कर चरा करता था। हाथी को वह स्थान पसन्द जान, (राजा ने) वहा खूटा बनवा दिया ॥७२-७३॥

फिर एक दिन हाथी ने अपना चारा नहीं खाया। राजा ने द्वीप पर अनुकम्पा करने वाले स्थविर से इस का कारण पूछा ॥७४॥ महास्थविर ने महाराज को कहा, "यह चाहता है कि यहा कदम्ब पुष्प के झुरमुट मे स्तूप बने" ॥७५॥ सदैव लोगों के हित मे रत राजा ने, जल्दी से वहा धातु-सहित स्तूप के लिये घर बनवा दिया ॥७६॥

अपने रहने के विहार मे भीड़ हो जाने से, एकान्तवास की इच्छुक, पण्डिता, ध्यान मे प्रवीन, निर्मल संघमित्रा महाथेरी ने शासन (धर्म) की उन्नति और भिक्षुणियों के हित के लिये एक दूसरे भिक्षुणी-आश्रम की इच्छा से, ध्यान के योग्य उस सुन्दर चैत्य मे जाकर दिन को (वहीं) विहार करना आरम्भ किया ॥७७-७९॥

थेरी को वन्दना करने की इच्छा से राजा (एक दिन) भिक्षुणी-आश्रम मे गये। थेरी को वहा गई सुनकर, वहीं पहुच वन्दना की। कुशल-प्रश्न के बाद वहा

---

[1]टीका के अनुसार उन तीन घरों के नाम थे चूळगण, महागण तथा सिरिवड्ढ। पीछे उनके नाम हुए — कुपयट्ठि ठपितघर, पियठपितघर तथा अरित्त ठपितघर।

[2]उदाहरणार्थ धम्मरुचिक आदि (टीका)।

आने का कारण पूछा। फिर उस (थेरी) के अभिप्राय को जानकर, अभिप्राय-विद महाराज देवानांप्रियतिष्य ने स्तूप के चारों ओर सुन्दर भिक्षुणी-आश्रम बनवा दिया ॥८०-८२॥

हत्थालहक (हाथी के बांधने का स्थान) के पास ही बना होने के कारण वह भिक्षुणी-आश्रम हत्थालहक-विहार के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८३॥

(प्राणियों की) सुन्दर मित्र, महामति, महाथेरी संघमित्रा ने उस रम्य भिक्षुणी आश्रम में अपना निवास किया ॥८४॥

इस प्रकार लङ्का निवासियों का हित और शासन की वृद्धि करता हुआ, अनेक चमत्कारों से युक्त, वृक्षराज महाबोधि, लङ्काद्वीप के रम्य महामेघवन में चिर काल से स्थित है ॥८५॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'बोधि आगमन' नामक एकोनविंश परिच्छेद।



विंश परिच्छेद

स्थविर परिनिर्वाण

धम्माशोक राजा के (शासन के) अठारवें वर्ष में महामेघवनाराम मे महाबोधि प्रतिष्ठित हुई ॥१॥ उसके (बाद) बारहवें वर्ष मे राजा की प्यारी रानी, बुद्धभक्त असंधिमित्रा की मृत्यु हो गई। उसके चौथे वर्ष मे राजा धम्माशोक ने दुराशय तिष्यरक्षिता को अपनी रानी बनाया ॥२-३॥ इसके (बाद) तीसरे वर्ष मे उस अनर्थकारिणी, रूपगर्विता ने यह (देख) कि राजा महाबोधि को उससे भी (अधिक) प्यार करता है, क्रोधित हो, जाकर मण्डु-कण्टक[1] से महाबोधि को नष्ट कर दिया ॥४-५॥ इसके चौथे वर्ष मे महाराज धम्माशोक ने स्वर्गवास किया। यह (कुल) सैंतीस वर्ष हुये ॥६॥

चैत्य पर्वत के महाविहार मे और स्तूपाराम मे इमारत का काम अच्छी तौर पर समाप्त करके, धर्म मार्ग मे रत, प्रश्न करने मे चतुर राजा देवानां-प्रियतिष्य ने (लंका-) द्वीप पर अनुकम्पा करने वाले स्थविर से पूछा, "भन्ते ! मै यहा बहुत सारे विहार बनवाना चाहता हूं। स्तूपो मे स्थापित करने के लिये धातु कहा मिलेगी ?" ॥७-९॥

(स्थविर ने कहा), "राजन् ! सम्बुद्ध का पात्र भर कर, सुमन (सामणेर) की लाई हुई धातु यहा चैत्य-पर्वत मे रक्खी है। हाथी के कन्धे पर रखकर उन धातुओं को यहा ले आओ"। स्थविर के ऐसा कहने पर राजा उन धातुओं को ले आया ॥१०-११॥ राजा ने योजन योजन के अन्तर पर विहार बनवाये और स्तूपो मे यथायोग्य धातु रखवाये ॥१२॥

सम्बुद्ध का भोजन-पात्र तो, राजा ने अपने सुन्दर राजमहल मे ही रख लिया। वहा अनेक प्रकार की पूजा सामग्री से उसकी पूजा करता रहा ॥१३॥

(जिस स्थान पर) महास्थविर के पास पाच सौ क्षत्रियों (इस्सर) ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी, उस स्थान पर ईश्वर श्रमणक[2] (विहार) हुआ ॥१४॥ (जिस स्थान पर) महास्थविर के पास पाच सौ वैश्यों ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी,

---

[1] इसका वर्णन दधिवाहन जातक (सं १८६) में आया है।

[2] द्रष्टव्य १९-६१।

वहा वैश्यगिरी[1] (विहार) हुआ ॥१५॥ चैत्यपर्वत के विहारों में जिस जिस गुफा मे स्थविर महामहेन्द्र रहे, उन गुफाओं का नाम महेन्द्र-गुहा हुआ ॥१६॥

प्रथम महाविहार[2], द्वतीय चैत्य नामक (विहार) तृतीय स्तूपाराम[3] जोस्तूप बनने के बाद बना था, चतुर्थ महाबोधि की स्थापना, पञ्चम महाचैत्य के स्थान पर स्तूप-स्थान का निर्देश करने के लिये सुन्दर शिला की स्थापना[4] तथा सम्बुद्ध के हँसली धातु की स्थापना[5], षष्ठ ईश्वरश्रमण (विहार), सप्तम तिष्यवापी, अष्टम प्रथम चैत्य,[6] नवम वैश्यगिरि नामक विहार), भिक्षुणियों के सुख के लिये उपासिका-विहार तथा हत्थाळ्हक नामक (विहार)—ये दो भिक्षुणियों के आश्रम ॥१७-२१॥

हत्थाळ्हक (विहार) के बन चुकने पर, भिक्षुणी-आश्रम मे जाकर भिक्षु-सघ के भोजन करने के लिये महापाली नामक सुनिर्मित, सुन्दर, सब उपकरणों से युक्त, सेवकों-सहित भोजन शाला; हजार भिक्षुओं का प्रवारण के दिन प्रतिवर्ष परिष्कार-सहित[7] उत्तम दान, नागद्वीप मे उतरने की जगह पर जम्बूकोल विहार; तिष्यमहाविहार[8] और प्राचीन विहार[9]—यह सब-काम लंका वासियों के हितेच्छुक, प्रज्ञावान् तथा पुण्यवान्, गुणप्रिय लकेश्वर देवानांप्रिय तिष्य ने अपने (शासन के) पहले वर्ष में ही किये। और शष जीवन में तो और भी कितने ही पुण्य-कर्म किये ॥२२-२७॥ उसके राज्य में यह द्वीप अति समृद्धिशाली हुआ। उसने चालीस वर्ष पर्य्यन्त राज्य किया ॥२८॥ इसके बाद राजा का कोई (अपना) पुत्र न होने से; उसके छोटे भाई उत्तिय राजकुमार ने बहुत अच्छी प्रकार राज्य किया ॥२९॥

---

[1] अनुराधपुर के समीप।

[2] द्रष्टव्य १५-२१४।

[3] द्रष्टव्य १५-१७३।

[4] द्रष्टव्य १५-१७३।

[5] द्रष्टव्य १७-६२-६४।

[6] द्रष्टव्य १-३७।

[7] भिक्षुओं के आठ परिष्कार।

[8] दक्षिण लंका में अम्बन्तोट के उत्तर पूर्व।

[9] अनुराधपुर का पुब्बाराम।

सम्बुद्ध के सुन्दर धर्म, बुद्ध-वाक्य[1], तदनुसार-आचरण[2] और निर्वाण[3] आदि फलों की प्राप्ति का लङ्का द्वीप में प्रकाश कर, इस प्रकार से लंका वासियों का बहुत हित करके, लका-दीपक, लङ्का के लिये बुद्ध-सदृश स्थविर महामहेन्द्र ने साठ वर्ष की अवस्था में; उत्तिय राजा के आठवें राज्य-वर्ष में चैत्य-पर्वत पर वर्षावास करते हुये, आश्विन मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन निर्वाण प्राप्त किया। इससे इस दिन का यह नाम पड़ा ॥३०-३३॥

इसे सुन शोकाकुल उत्तिय राजा ने जा, स्थविर की वन्दना करके बहुत क्रन्दन किया ॥३४॥ (फिर) तुरन्त ही स्थविर की देह को सुगन्धित तेल में सिक्त करके सुनहले दोन मे रखवाया। उस दोन को भली प्रकार बन्द कराकर, सुनहले विमान में रखवा, (फिर से दूसरे) अलंकृत विमान में रखवा, अनेक प्रकार के नाच गान के साथ, सजे हुये मार्ग से, चारों ओर से आये हुये महान् जन-समुदाय और बड़ी सेना के साथ पूजा करते हुये, नाना प्रकार से अलकृत नगर में लाया। और (फिर) नगर के राजमार्गों से होते हुये महा-विहार में ला, वहां प्रश्नम्बमालक[4] मे रखवा एक सप्ताह रक्खा। विहार और चारों ओर तीन योजन तक (का प्रदेश) तोरण, ध्वजा, पुष्प तथा गन्ध-पूर्ण घटों से मण्डित हो गया। राजा और देवताओं के प्रताप से सम्पूर्ण लंका-द्वीप इसी तरह सज गया ॥३५-४१॥

एक सप्ताह तक अनेक प्रकार से पूजा करके, राजा ने थेरों के बन्धमालक (थेरानांबन्धमालके) मे पूर्व की ओर सुगन्धित चिता चुनवा, महास्तूप (के स्थान) की प्रदक्षिणा करते हुये उस मनोरम विमान (कूटागार) को वहां ले जा, चिता पर रखवा कर अंतिम सत्कार किया। फिर धातु (अस्थि)-संग्रह करा-कर राजा ने इस स्थान पर चैत्य (स्तूप) बनवाया ॥४२-४४॥ क्षत्रिय (राजा) ने (उस मे से) आधी धातु ले कर, चैत्यपर्वत पर तथा और विहारों में स्तूप बनवाये ॥४५॥

जिस स्थान पर ऋषि (महेन्द्र) की देह का अंतिम सस्कार किया गया था, उस स्थान को बड़े सम्मान के कारण ऋषिभूमि-अङ्गन (इसिभूमङ्गन)

---

[1]परियत्ति।

[2]पटिपत्ति।

[3]पटिवेध।

[4]द्रष्टव्य १९-३८।

कहते हैं ॥४६॥ तब से ही चारों ओर तीन तीन योजन तक से आर्यों का शरीर ला कर (उस स्थान पर) जलाया जाता है ॥४७॥

धर्म के कार्य्य और लोगों का हित-साधन करके, महासिद्ध, महामति संघमित्रा महाथेरी उनसठ (५६) वर्ष की अवस्था में, उत्तिय राजा ही के नौवें वर्ष में, हत्थाळ्हक विहार में रहती हुई परिनिर्वाण को प्राप्त हुई। राजा ने स्थविर की भाँति एक सप्ताह तक उस का भी उत्तम पूजा-सत्कार किया, और स्थविर की तरह ही तमाम लङ्का अलकृत हुई। सप्ताह की समाप्ति पर विमान में रक्खे हुये थेरी की देह का नगर से बाहर, स्तूपाराम के पूर्व, चित्र-शाला के समीप, महाबोधि के सामने, थेरो के अपने बतलाये हुये स्थान पर, अग्नि-कृत्य किया। इस महामति उत्तिय राजा ने वहा (भी) स्तूप बनवाया ॥४८-५३॥

पाचों महास्थविर, अरिष्ट आदि स्थविर, सहस्रों क्षीणाश्रव भिक्षु, संघमित्रा इत्यादि बारह थेरिया और सहस्रों क्षीणास्रव भिक्षुणिया—यह सब बहुश्रुत, महाप्रज्ञावान्, विनय आदि बुद्ध-शास्त्र को प्रकाशित कर, समय पाकर अनित्यता के वशीभूत हुये। उत्तिय राजा ने दस वर्ष राज्य किया। यह अनित्यता ऐसी सर्व-विनाशिनी है ॥५४-५७॥

वह (मनुष्य) जो इस (अनित्यता) का अतिसाहसी, अति बलवान् और अनिवार्य जानता हुआ भी इस अनित्य ससार से विरक्त नहीं होता और विरक्त हुआ पाप से विरत तथा पुण्य में रत नहीं होता—उस का भारी मोह-जाल है। वह जानता हुआ भी मोह को प्राप्त होता है ॥५८॥

सुजनों को प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'स्थविर परि-निर्वाण' नामक विश परिच्छेद।

———

एकविंश परिच्छेद

पाँच राजा

उत्तिय के पश्चात् उस के छोटे भाई सुजन-सेवक **महासिव** ने दस वर्ष राज्य किया ।।१।। उसने **भद्दसाल** स्थविर का श्रद्धालु बनकर, पूर्व दिशा में **नगराङ्गण** नामक विहार बनवाया ।।२।।

महासिव के पश्चात् उस के छोटे भाई **सूरतिस्स** ने सादर पुण्य-कर्म करते हुये दस वर्ष राज्य किया ।।३।। उस पृथ्वीपति ने दक्षिण दिशा में **नगराङ्गण** विहार, पूर्व दिशा में **हत्थिक्खन्ध** (हस्तिस्कन्ध) और **गोणगगिरिक**, **वङ्गुत्तर** पर्वत में **पाचीनपब्बत**, **रहेरक** के समीप, **कोलम्बहालक**,[1] **अरिट्ठपाद** (पर्वत) में **मकुलक**, पूर्व में **अच्छगल्लक**, **गिरिनेलवाहनक** और उत्तर में **कण्डनगर**, इस प्रकार लङ्का में गङ्गा के इस ओर तथा उस ओर जगह जगह पर पाँच सौ विहार बनवाये ।।४-७।।

पूर्व (काल) मे उस त्रिरत्न-भक्त ने (उस) रम्य नगर मे साठ वर्ष तक अच्छी तरह धर्म से राज्य किया ।।८।। राज्य-प्राप्ति से पूर्व उस का नाम **सुवर्णपिण्डतिष्य** था, **सूरतिस्स** तो उस का नाम राज्य प्राप्ति के पश्चात् हुआ ।।९।।

सेनगुत्तक नामक दो महाबलवान् दमिळ (द्रविड) सार्थीपुत्रों[2] ने **सूरतिस्स** राजा को पकड़ (कैद) कर बाईस वर्ष धर्मपूर्वक राज्य किया । तत् पश्चात् नौ सगे भाइयों[3] में से नौवें भाई **असेल** नामक **मुटसिव** पुत्र ने अनुराधपुर मे दस वर्ष राज्य किया ।।१०-१२।

ऋजुस्वभाव **एलार** नामक द्रविड़ राजा **चोळ**[4] देश से यहा (लका) आया और **असेल** राजा को पकड़ (कैद) कर चव्वालीस वर्ष राज्य किया ।

---

[1] अथवा कोलम्बालक (३३-४२) अनुराधपुर के उत्तरीय द्वार के समीप ।

[2] अस्सनाविकपुत्र ।

[3] एलार के आठ भाइयों के नाम ये हैं ।—अभय, देवानाम्प्रियतिस्स, उत्तिय, महासिव, महानाग, मत्ताभय, सूरतिस्स और कीर (म० टी) ।

[4] दक्षिण-भारत में ।

न्याय के समय वह शत्रु-मित्र में समान भाव रखता था ॥१३-१४॥ उसने अपने शयनासन के सिरहाने की ओर रस्सी सहित एक घटा लटकवाया, जिस को न्याय चाहने वाले बजा सकें ॥१५॥

उस राजा के एक पुत्र और एक पुत्री थी। राजपुत्र रथ मे तिष्यवापी जा रहा था। मार्ग मे मा के साथ एक तरुण बछड़ा लेटा था। अनजाने मे गदन चक्के के नीचे आ जाने से वह बछड़ा मर गया। मा ने घटा बजाने के लिये घटे को रगड़ा। राजा ने उसी चक्की से अपने पुत्र का सिर कटवा दिया ॥१६-१८॥

एक सर्प ने ताड़ वृक्ष पर (रहते हुये) एक पक्षी का बच्चा खा लिया। उस बच्चे की माता ने जा घटा बजाया। राजा ने सर्प मगवा उस का पेट चिरवा, उस में से पक्षी का बच्चा निकलवाया और सर्प को ताल (ताड़) वृक्ष पर रखवा दिया ॥१९-२०॥

रत्न-त्रय मे सर्वश्रेष्ठ रत्न (बुद्ध) के गुण से अपरिचित भी, वह राजा (श्रेष्ठ) चरित्रानुकूल आचरण करता था। चेतिय पर्वत जा (वहां) भिक्षु सघ को निमत्रित कर रथ मे बैठ कर लौटते समय रथ के जूवे के सिरे मे बुद्ध के स्तूप का एक कोना टूट गया। अमात्यों ने राजा से कहा, "देव। तुम से हमारा स्तूप टूट गया"। २१-२३॥ यद्यपि अनजाने मे टूटा था, तो भी राजा रथ से उतर कर मार्ग मे लेट गया और बोला, "चक्के से मेरा सीस भी काट दो"। अमात्यों ने राजा से कहा, "हमारे शास्ता को पराई हिंसा पसन्द नहीं, स्तूप की मरम्मत कराकर (अपना अपराध) क्षमा कराओ" ॥२४-२५॥ राजा ने पन्द्रह गिरे हुये पत्थरों को स्थापित कराने के लिये पन्द्रह हजार कार्षापण[1] दिये ॥२६॥

एक बुढ़िया ने सुखाने के लिये धूप में धान डाले, असमय वर्षा होने से उसके धान भीग गये। वह धान लेकर गई और जा कर घटा बजाया। अकाल-वर्षा सुन कर राजा ने उस स्त्री को विदा किया। "राजा धर्माचरण करे, तो कालानुकूल वर्षा हो," इस लिये उस के न्याय के लिये राजा ने निराहार व्रत किया ॥२७-२९॥

बलिग्राही देवपुत्र ने राजा के तेज बल से उड़ कर चातुर्महाराजिक[2]

---

[1]देखो ४-३०।

[2]धतरट्ठ (पूर्व); विरूळ्हक (दक्षिण); विरूपक्ख (पश्चिम); वेस्सवण्ण (उत्तर)।

(देवताओं) के पास निवेदन किया। उन्होंने उसे (साथ) ले आ कर शक्र से निवेदन किया। राजा ने पर्जन्य (वर्षा का देवता) को बुलाकर समयानुकूल बरसने की आज्ञा दी ॥३०-३१॥ बलिग्राही देवता ने वह (कारण) राजा से कहा। उस समय से आरम्भ करके उस राज्य में दिन में वर्षा नहीं हुई। वर्षा प्रतिसप्ताह रात को आधी रात के समय होने लगी। सब छोटे छोटे छप्पर तक (पानी से) भर गये ॥३२-३३॥

कुदृष्टि[1] सर्वथा दूर न होने पर भी, अगतिगमन[2] मात्र से विमुक्त होने से उसने ऐसी सिद्धि प्राप्त की। तब शुद्ध-दृष्टि बुद्धिमान् पुरुष अगति-गमन दोष को क्यों न छोड़े ?

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'पञ्चराजक' नाम एकविंश परिच्छेद।

---

[1]दृष्टि का मतलब सिद्धान्त या मत।

[2]कुमार्ग गामी होने के चार कारण हो सकते हैं --१-छन्दो (राग) २-दोसो (द्वेष); ३ मोहो (मूढ़ता) तथा ४-भय।

द्वाविंश परिच्छेद

ग्रामणी कुमार का जन्म

एलार को मार कर दुष्टग्रामणी राजा हुआ। कैसे? इसको प्रकाशित करने के लिये क्रमानुसार कथा इस प्रकार है :—राजा देवानांप्रियतिस्स का भ्रातृप्रिय महानाग नामक दूसरा भाई उपराज था ॥१-२॥

अपने पुत्र के लिये राज्य की कामना करने वाली, राजा की मूर्ख देवी (रानी) उपराज के मार देने के लिये सदैव चिन्तित रहने लगी ॥३॥ (उसने) तरच्छ नामक वापी बनवाते हुये (उपराज के पास) आमों के ऊपर एक विष-मिला आम रख कर भेजा। उपराज के साथ गये हुये उसके (अपने ही) पुत्र ने पात्र के खोलते ही, वह आम खा लिया और मर गया ॥४-५॥

उपराज वहाँ से अपने प्राणों की रक्षा के लिये अपनी स्त्री, सेना और वाहन सहित रोहण[1] (प्रदेश) की ओर चला गया ॥६॥ उसकी गर्भिणी महिषी ने यट्ठाल विहार में पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उस पुत्र का नाम (अपने) भाई का नाम (तिस्स) रखा ॥७॥

वहाँ से उस महाभाग क्षत्रिय ने रोहण जाकर अखिल रोहण (प्रदेश) का स्वामी हो राज्य किया ॥८॥ उसने अपने नामानुसार नागमहाविहार बनवाया, और उद्धकन्दरक आदि बहुत विहार बनवाये ॥९॥ उसके बाद उसके पुत्र यट्ठालयकतिस्स ने वहाँ राज्य किया। यट्ठालयकतिस्स के पुत्र अभय ने भी वैसा ही किया ॥१०॥

गोट्ठाभय के मरने पर उसके प्रसिद्ध पुत्र क्षत्रिय काकवण्णतिस्स ने वहाँ (रोहण प्रदेश में) राज्य किया ॥११॥ श्रद्धालु कल्याणि-राजा की श्रद्धा सम्पन्न महादेवी पुत्री उस (काकवण्णतिस्स) राजा की महिषी थी। कल्याणी में तिस्स नामक क्षत्रिय राजा था। वह अपनी देवी के (अनुचित) सम्बन्ध के कारण बहुत कुपित था। अय्योतिं नामक उसका छोटा भाई, उससे डर कर, भाग कर एक दूसरी जगह जा बसा। इससे उस देश का नाम भी उसके नाम के अनुसार हो गया ॥१२-१४॥

---

[1] लंका (द्वीप) का दक्षिण और दक्षिण-पूर्व भाग।

उसने भिक्षु वेषधारी किसी आदमी को रहस्य लेख (चिट्ठी) देकर देवी के (पास) भेजा। वह (मनुष्य) जाकर राजद्वार पर खड़ा हो गया। सदैव राजगृह में भोजन करने वाले अर्हत् स्थविर के साथ, अनजाने में (चुपचाप) वह भी राजगृह में प्रविष्ट हो गया ॥१५-१६॥ स्थविर के साथ भोजन करके राजा के साथ निकलते हुये (उसने) देवी के देखते हुये मे (वह चिट्ठी) जमीन पर डाल दी ॥१७॥ शब्द[1] सुनकर राजा ने लौट कर उसे देखा और चिट्ठी के सन्देश को जाना। स्थविर से क्रुद्ध हो (फिर) उस दुर्मति राजा ने स्थविर और उस मनुष्य को मरवाकर समुद्र में फिकवा दिया। देवताओं ने उस (कर्म) से क्रुद्ध होकर उस देश को समुद्र में डुबा दिया। राजा ने अपनी देवी (नामक) शुद्ध, रूपवती पुत्री को सोने की ढकी आखली में बिठा 'राजकन्या' लिखकर समुद्र में छोड़ दिया ॥१८-२१॥ राजा काकवएणतिस्स ने उस राजकन्या के लङ्का नामक विहार में उतरने पर उसका अभिषेक किया। इसी से उसका नाम विहार-पद-युक्त[2] हुआ ॥२२॥

तिस्समहाविहार[3], चित्तलपर्वत[4], गमिट्ठवालि और कूटालि (विहार) बनवा त्रि-रत्न में प्रसन्न-चित्त वह (राजा) चारों प्रत्ययों[5] से सदैव सघ की सेवा करता रहा ॥२३-२४॥

(उस समय) कोटपर्वत नामक विहार में, अनेक पुण्य कर्म और शील-व्रत वाला (एक) श्रामणेर (रहता) था। उसने आकासचैत्य के आङ्गन पर सुख से चढ़ने के लिये पत्थर की पट्टियों की तीन सीढ़िया स्थापित कीं ॥२५-२६॥ वह सघ का जल आदि देता और दूसरे (सेवा के) काम करता था। सदैव थकावट रहने से उसको एक महान रोग हो गया ॥२७॥ कृतज्ञ भिक्षु उसको पालकी में तिस्साराम मे ले आये, और सिलापस्सय परिवेण[6] में उसकी शुश्रूषा की ॥२८॥

राजगृह को साफ सुथरा करके वह सयम-शाला महादेवी मध्यान्हपूर्व सघ

---

[1] उस समय कागज़ों के स्थान में तालपत्र का व्यवहार होता था।

[2] विहारदेवी।

[3] देखो ४-८।

[4] तिस्स महाराम से १४ मील उत्तर-पूर्व।

[5] देखो ३-४।

[6] बीच में एक आङ्गन रखकर, इर्द गिर्द कई कमरे वाले मकान को परिवेण कहते हैं।

को महादान देकर, मध्यान्ह पश्चात् माला, गन्ध, भेषज्य और वस्त्र लिवाकर आराम में जा यथायोग्य सत्कार करती थी ॥२६-३०॥

तब वैसा करके वह संघ-स्थविर के समीप बैठी। उसको धर्मोपदेश करते हुये स्थविर ने इस प्रकार कहा :- "तुम्हें यह महासम्पत्ति पुण्य करने से मिली है। इसलिये पुण्य कर्म करने में अब भी प्रमाद मत करो" ॥३१-३२॥

ऐसा कहने पर वह (महादेवी) बोली :—"यह सम्पत्ति क्या है ? हम, जिनको सन्तान नहीं है; उनकी यह सम्पत्ति बाँझ ही है" ॥३३॥

षड्भिज्ञ स्थविर ने (भविष्य में) पुत्र-प्राप्ति देखकर उस देवी से कहा, "हे देवी ! तू उस रोगी (श्रामणेर) की देख-भाल कर" ॥३४॥ वह मरणासन्न श्रामणेर के पास गई और बोली 'मेरा पुत्र होने की कामना कर। हमारे पास सम्पत्ति बहुत है' ॥३५॥ यह जान कर कि वह नहीं चाहता है उस बुद्धिमान् देवी ने उसके लिये महा सुन्दर पुष्प-पूजा बनवा कर फिर याचना की ॥३६॥

इस प्रकार भी स्वीकार न करते हुये श्रामणेर के लिये, उस चतुर देवी ने, संघ को नाना प्रकार के भेषज्य और वस्त्र देकर फिर (उस श्रामणेर) से याचना की ॥३७। उस श्रामणेर ने राजकुल (में उत्पन्न होने) की इच्छा की। वह देवी, उस स्थान को अनेक प्रकार से सजवा, वन्दना कर, यान पर चढ़ कर विदा हुई ॥३८॥ वहां से च्युत (मर) होकर, उस श्रामणेर ने जाती हुई देवी की कोख में प्रवेश किया। देवी यह जान कर वापिस लौटी। राजा को यह समाचार देकर, फिर राजा के साथ आई। उन दोनों ने श्रामणेर का शरीर कृत्य कराया ॥३९-४०॥

उसी परिवेण में रहते हुये शान्त-चित्त (उन्होंने) भिक्षु-संघ को बराबर महादान दिया ॥४१॥

उस महापुण्यवान् देवी को इस प्रकार की दोहद उत्पन्न हुई कि उसभ[1] (साढे तीन गज) लम्बे शहद के ढेर में से बारह भिक्षुओं को दान देकर बचा हुआ शहद सिरहाने रखकर और सुन्दर शयनासन पर बाई करवट लेट कर यथेच्छ खाऊं, (२) एलार राजा के योधाओं में से सर्वश्रेष्ठ योधा का सिर काटने वाली तलवार का धोवन, उस शीस पर ही खडी होकर पीऊँ; (३) अनुराधपुर के कमल क्षेत्र से लाई हुई न मुरझाई हुई माला पहनूं। देवी ने यह दोहद राजा को कहा। राजा ने ज्योतिषी पूछे ॥४२-४६॥

---

[1] 'उसभ' नाम का एक विशेष माप। अभिधानप्पदीपिका के अनुसार वह बीस यष्टी।

उसे सुनकर ज्योतिषियों ने कहा, "देवी का पुत्र दमिळों को मार कर, एक राज्य स्थापित कर (बुद्ध-) शासन को प्रकाशित करेगा' ॥४७॥ राजा ने घोषणा कर दी—'जो कोई इस प्रकार का मधु-छत्ता दिखायगा, उसको इतनी सम्पत्ति दी जायगी' ॥४८॥

गोठ[1] समुद्र के तट पर शहद से भरी हुई उलटी नाव देख नगर वासियों ने जा राजा से कहा ॥४९॥ राजा ने देवी को वहां अच्छी प्रकार बने हुये मण्डप में ले जा, यथेच्छा मधु खिलाया ॥५०॥

उस को शेष दोहदों (इच्छाओं) की पूर्ति के लिये, राजा ने वेलुसुमन नामक योधा को नियुक्त किया ॥५१॥ उसने अनुराधपुर जाकर (एलार) राजा के मङ्गल घोड़े के सईस से मित्रता की, और सदैव उस का काम करता रहा ॥५२॥ (अपने को) उसका विश्वास-पात्र हुआ जान कर, प्रातःकाल ही कमल और तलवार कदम्ब नदी के किनारे रख कर, बिना किसी शङ्का के अश्व को लेकर, उस पर चढ़ गया। वहां (नदी तट) से कमल और खड्ग लेकर, अपना परिचय देता हुआ अश्व-वेग से भागा ॥५३-५४॥

राजा ने सुना तो उसे पकड़ने के लिये महायोधा को भेजा। महायोधा अपने अनुकूल दूसरे घोड़े पर चढ़ कर उस के पीछे दौड़ा ॥५५॥ उस (वेलुसुमन) ने झाड़ी से निकल कर घोड़े की पीठ पर बैठे ही हुये, पीछे आते हुये योधा के (मारने के) लिये तलवार निकाल कर पसार रक्खी ॥५६॥ अश्ववेग से आते हुये उस महायोधा का सिर कट गया। दोनों घोड़े और सिर को लेकर वह (वेलुसुमन) महाग्राम आ पहुँचा ॥५७॥

देवी ने अपने दोहदों को यथारुचि पूर्ण किया, और राजा ने योधा का यथा-योग्य सत्कार किया ॥५८॥

उस देवी ने समय पाकर (स्वनाम-) धन्य, उत्तम पुत्र को जन्म दिया। उस समय महाराजकुल में बहुत आनन्द हुआ ॥५९॥ उस (बालक) के पुण्यानुभाव से उस दिन नाना प्रकार के रत्नों से भरी हुई सात नावें तहाँ तहाँ से आईं ॥६०॥ उसी के पुण्य-तेज से छद्दन्त-कुलोत्पन्न[2] (एक) हाथी 'हा[illegible]-पोत' (बच्चा) ला वहाँ छोड़ कर चला गया ॥६१॥

उस (हाथी के बच्चे) को तीर्थ के उस किनारे पर झाड़ी में खड़े देख कर, कंडुल नाम के बसी वाले मत्स्य-मारक) ने आकर राजा से कहा ॥६२॥

---

[1] लंका के पास का समुद्र।

[2] हाथियों की एक श्रेष्ठ जाति का नाम।

राजा ने जानकारों को भेज कर उसे (पकड़) मंगवाया और पाला। कंडुल ने उसे (पहले) देखा था, इस लिये राजा ने उस (हाथी के बच्चे) को कंडुल नाम दिया।।६३।।

स्वर्ण आदि के पात्रों से भरी हुई नाव आई। (लोगों ने) राजा से निवेदन किया। राजा ने उसे मगवा लिया।।६४।। पुत्र के मगल नामकरण (सस्कार) के समय राजा ने बारह हज़ार भिक्षुओं को निमन्त्रण दिया; (लेकिन) दिल में सोचा —यदि मेरे पुत्र को अखिल लङ्का-द्वीप का राजा होना है, और राज्य-प्राप्त कर सम्बद्ध-शासन को प्रकाशित करना है, तो (केवल) एक हजार आठ भिक्षु (मेरे घर) प्रवेश करें और वह सब भिक्षु उलटा पात्र धारण कर तथा चीवर पहन, पहिले दाहिना पाँव देहली के अन्दर रक्खें[1], और एक छत्र तथा धर्मकरक[2] ले चलें। मेरे पुत्र को गोतम नाम स्थविर ग्रहण करें और वही शरण[3], शिक्षा देवे। वह सब वैसे ही हुआ।।६५-६६।।

तमाम शकुनों को देख कर सन्तुष्ट-चित्त राजा ने सघ को पायस (=खीर) दान दिया और पुत्र का नाम-कर्ण सस्कार किया। महाग्राम का नायकत्व और अपने पिता का नाम दोनों शब्द) इकट्ठे करके 'ग्रामणी अभय' नाम रक्खा।।७०-७१।।

महाग्राम में प्रविष्ट होकर (राजा ने) नौवे दिन देवी से सभोग किया। उससे देवी को गर्भ स्थापित हुआ। समय पाकर पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसको तिस्स (तिष्य) नाम दिया। बड़े परिवार (परिजन) में दोनों बालक बढने लगे।।७२-७३।।

'अन्न-प्राशन' सस्कार के समय दोनों (पुत्रों) के आदर-भाजन राजा और रानी ने पाँच सौ भिक्षुओं को पायस प्रदान कर, उन के खाये भात मे से थोड़ा भात सोने की थाली में ले कर 'हे पुत्रो! यदि तुम बुद्धशासन को छोड़ो, तो तुम्हें यह भात न पचे' कह कर; वह भात उन्हें दिया।।७४-७६।।

उस कथन के अर्थ को समझ कर उन दोनों राजकुमारों ने वह पायस सन्तुष्ट-चित्त हो अमृत की तरह खा लिया।।७७।।

क्रम से दस और बारह वर्ष की आयु होने पर परीक्षा लेने के इच्छुक

---

[1] बायां पांव पहले रखना अब भी लंका में अशुकन समझा जाता है।

[2] वह बरतन जिसमें पानी छानने का कपड़ा लगा रहता है।

[3] त्रि-शरण और दस शीलों का दान।

राजा ने पूर्व-वत् भिक्षुओं को भोजन खिला कर, उनका उच्छिष्ट भात थाली में मंगवाया, और उसे बालकों के समीप रखवाकर तीन हिस्सों में बंटवाया (और) कहा, "अपने कुल-देवताओं से और भिक्षुओं से कभी विमुख न होंगे,' सोचकर और 'हम दोनों भाई सदैव एक दूसरे के प्रति द्वेष-रहित रहेंगे' सोचकर, यह (दूसरा) हिस्सा खाओ" ॥७८-८१॥

उन दोनों ने वह दोनों भाग अमृत के समान खा लिये। "हम द्रविड़ों (दमिळों) के साथ कभी युद्ध न करेंगे' सोचकर यह (तीसरा भाग) खाओ," कहने पर तिस्स ने हाथ से भोजन छोड़ दिया और गामणी (तो) भात के कवल को फेंक कर शय्या पर चला गया और (वहां) हाथ पांव सिकोड़ कर पड़ रहा ॥८२-८३॥

विहार-देवी गई और ग्रामणी को शान्त करती हुई इस प्रकार बोली, "पुत्र हाथ-पांव पसार कर शयनासन (पलंग) पर सुख से क्यों नहीं सोते ?" ॥८४॥

उसने उत्तर दिया, "गङ्गा[1]-पार दमिळ हैं और इधर गोठा समुद्र[2] है, मैं शरीर फैलाकर कहां सोऊं ?"।

उस (ग्रामणी) के अभिप्राय को सुनकर राजा चुप हो गया ॥८५-८६॥

वह पुण्यवान्, यशवान्, धृतिमान् और तेज-बल-पराक्रम-युक्त ग्रामणी क्रम से बढ़ता बढ़ता सोलह वर्ष का हो गया ॥८७॥

प्राणियों की इस चला-चल गति में आदरवान् पुण्य से यथेच्छ गति को प्राप्त होते हैं। यह सोचकर बुद्धिमान् पुरुष सदैव पुण्य के सञ्चय में लगे ॥८८॥

सुजनों के प्रमाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'ग्रामणी-कुमार प्रसूति' नामक द्वाविंश परिच्छेद।

---

[1] देखो १०-४४।

[2] देखो २२-४३।

त्रयो-विंश परिच्छेद

योधाओं की प्राप्ति

बल, लक्षण, रूप, तेज, वेग आदि गुणों से युक्त वह सर्वश्रेष्ठ महाकाय कंडुल हाथी था ॥१॥

उस (दुष्ट ग्रामणी) के (पास) यह दस महा बलशाली महायोधा हुये: नन्धिमित्त, सूरनिमिल, महासोण, गोठम्बर, थेर (स्थविर) पुत्रअभय, भरण, वेलुसुमण और वैसे ही खञ्जदेव, फुस्सदेव, लभियवसभ। २ ३॥

एलार राजा का 'मित्र' नामक सेनापति था। उसके पूर्वखड के राज्य के 'खेत के ग्राम' मे चित्त पर्वत के पास (एक) भानजा रहता था। उस भगिनी-पुत्र की गुप्तेन्द्रिय अण्ड-कोष से ढकी हुई थी। उसका नाम मामा का नाम (मित्र) ही था ॥४-५॥

दूर दूर जाते हुये छोटे बालक को कमर मे रस्सी बांध कर चक्की से बाध दिया गया ॥६। चक्की खैंचते हुये भूमि पर चलते, देहली अतिक्रमण करते जहा तहा वह रस्सी टूट जाया करती थी। इसलिये उसका नाम 'नन्धि-मित्र' हुआ। उसका बल दस नागों के समान था। बड़े होने पर वह नगर मे आकर मामा के पास रहने लगा ॥७-८॥

उस समय वह वीर्यवान्, स्तूप आदि का अनादर करते हुये द्रविडों की, एक जाघ पैर से दबाकर दूसरी हाथ से पकड़ कर फाड डालता और बाहर फैंक देता था। देवता उसके फेंके हुये शव-शरीर को अन्तर्धान कर देते थे ॥९-१०॥

दमिलों का क्षय होता देखकर (लोगों ने) राजा से कहा। "इस दोषी को पकड़ो" कहने पर (लोग) वैसा न कर सके। नन्धि-मित्र ने सोचा : —"मेरे ऐसा करने से केवल जन-क्षय ही होता है, (बुद्ध) शासन का प्रकाश नहीं। रोहण[1] (प्रान्त) मे त्रिरत्न प्रेमी क्षत्रिय (रहते) हैं। उन (क्षत्रियों) की सेवा करके, तमाम दमिळों को पकड़कर (उनका) राज्य क्षत्रियों को देकर, बुद्ध-

[1] देखो २२-७

शासन को प्रकाशित करूँ"। (अपना) यह विचार उसने कुमार ग्रामणी के पास जाकर कहा ॥११-१४।

कुमार ग्रामणी ने माता की सम्मति लेकर उसका सत्कार किया सत्कार-प्राप्त नन्धिमित्र योधा ग्रामणी के पास ठहर गया ॥१५॥

काकवर्णतिष्य राजा द्रविड़ों को रोकने के लिये महा (वैलि) गङ्गा के सभी घाटों पर पहरा रखता था ॥१६॥

राजा की दूसरी भार्य्या का पुत्र दीघाभय गंगा (-नदी) के कच्छक घाट[1] (तीर्थ) का रक्षक था ॥१७॥

इस प्रकार चारों ओर से दो योजन की रक्षा के लिये (राजा ने) महाकुलों में से एक एक पुत्र मंगवाया ॥१८॥

कोट्टिवाल जनपद के खंडकविट्ठिक ग्राम में सात पुत्रों का पिता, कुलपति तथा ऐश्वर्य्य शाली संघ (नामक) था। पुत्राभिलाषी राजपुत्र ने उसके पास भी दूत भेजा। दस हाथियों की सामर्थ्य वाला निमिल[2] नामक सातवां पुत्र था। उसके निकम्मेपन से खीजे हुए उसके भाइयों को उसका जाना पसन्द था, लेकिन माता पिता का नहीं ॥१९-२१॥

सब भाइयों से क्रोधित हो, प्रातःकाल ही तीन योजन चलकर सूर्योदय के समय उसने उस राजपुत्र का दर्शन किया ॥२२॥

उसकी परीक्षा लेने के लिये उसने (उसे) दूर के काम पर नियुक्त किया:—"चेतिय पर्वत के समीप द्वार-मंडल ग्राम में मेरा मित्र कुण्डली नामक ब्राह्मण है। उसके पास समुद्र पार से लाई (कुछ) वस्तुयें हैं। तू जाकर उसकी दी हुई चीज़ें यहां ले आ"। यह कह (भोजन) खिलाकर और चिट्ठी देकर भेज दिया ॥२३-२५॥

वहां से उसने पूर्वान्ह ही नौ योजन (की दूरी पर) अनुराधपुर पहुँच कर ब्राह्मण (को) देखा। ब्राह्मण ने कहा, "तात! वापी में नहा कर यहां आ"। यहां अनुराधपुर पहले पहल आने के कारण उसने तिस्स-वापी में नहाकर, थूपाराम में महाबोधि और चैत्य की पूजा की। फिर नगर में प्रवेश कर, तमाम नगर देख कर, दुकान से गंध खरीद कर, उत्तर द्वार से निकल उत्पल-क्षेत्र से कमल लाकर (वह) ब्राह्मण के पास पहुँचा। उस (ब्राह्मण) के पूछने पर उसने सब वृत्तान्त कहा ॥२६-२९॥

---

[1]देखो १०-४८

[2]सुरा निमिल (रसवाहिनी)। शायद सुरापान का अभ्यास हो।

वह ब्राह्मण उसका पहले ही यहां (अनुराधपुर) आना सुनकर विस्मित हो, सोचने लगा, "यह पुरुषश्रेष्ठ है। यदि (राजा) एळार इसको जान लेगा तो इसको हाथ में करेगा। इसलिये इसका दमिळ के समीप रहना उचित नहीं। राजपुत्र (ग्रामणी) के पिता के पास रहना उचित है" ॥३०-३२॥

(इसीलिये) इसी भाव (का) लेख लिखकर उसे समर्पित किया। पूर्ण-वर्धन वस्त्र और बहुत सी भेंट के सहित, भोजन खिला कर, उसे मित्र के पास भेजा। उसने बढ़ती हुई छाया में (तीसरे पहर) राजपुत्र के पास पहुँच कर लेख और भेंट राजपुत्र को समर्पित की। उस (राजपुत्र) ने सन्तुष्ट होकर कहा, "इसको हजार मुद्रा दे कर सन्तुष्ट करो" ॥३३-३५॥

राज-पुत्र के अन्य सेवक ईर्ष्या करने लगे। उसने उस बालक को दस हजार (मुद्रा) से प्रसन्न किया ॥३६॥

उस (राज-पुत्र) क्षत्रिय ने उस योधा के केश कटवा कर और उसे गङ्गा में न्हलवा कर पूर्ण-वर्धन वस्त्रों के जोड़े और सुन्दर गन्ध माला (सहित) सिर पर दुकूलपट वस्त्र बंधवा कर मंगवाया। अपने भोजन में से उसके लिये भोजन दिलवाया। अपना दस हजार (मुद्रा) के मूल्य का सुन्दर पलंग, उस योधा को सोने के लिये दिया ॥३७-३९॥

वह सब इकट्ठा करके, माता पिता के पास ले जाकर, माता को दस सहस्र मुद्रा और पिता को पलंग दिया। (और) उसी रात (वापिस) रक्षा-स्थान पर आकर (अपने आपको) दिखाया। प्रातःकाल राजपुत्र उसे सुनकर प्रसन्न-चित्त हुआ। (और) उसको वस्त्र, सेवक और दस सहस्र (मुद्रा) दे कर पिता के पास भेजा ॥४०-४२॥ योधा दस सहस्र (मुद्रा) माता पिता के पास ले जा, उन्हें देकर, राजा काकवर्णतिष्य के पास पहुंचा ॥४३॥

उस राजा ने उस (योधा) को ग्रामणी कुमार को अर्पण किया। सत्कार-प्राप्त सूरनिमल योधा उसके पास रहने लगा ॥४४॥

कुलम्बरिकर्णिका[1] (जनपद) के हुंडरवापि ग्राम में तिस्स का सोण नामक आठवाँ पुत्र था ॥४५॥ सात वर्ष की अवस्था में उसने ताड़ के छोटे वृक्ष उखाड़ डाले। दस वर्ष की अवस्था में वह बलवान् ताड़ के वृक्ष उखाड़ने लगा ॥४६॥

वह महासोण भी, काल पाकर दस हाथियों के समान बलवाला हुआ। राजा ने उसको वैसा सुन कर (उसके) पिता के पास से ला कर, पोषणार्थी

[1] कदलुम्बरिकर्णिका (रसवाहिनी)

राजा ने, उस (योधा) को ग्रामणी कुमार को दिया। (वह) सत्कार-प्राप्त योधा उसके पास रहने लगा ॥४७-४८॥

गिरिनाम जनपद के निठ्ठुलविट्ठिक ग्राम मे महानाग का दस हाथियों के (समान) बल वाला पुत्र था। बौना शरीर होने से उसका नाम गोट्ठक हुआ। उसके छः ज्येष्ठ भाई उससे परिहास करते थे ॥४९-५०॥

उन्होंने ने मास (उड़द) की खेती के लिये, महावन को काटने जा कर गोट्ठक के हिस्से का वन उसके काटने के लिये छोड़ कर, उसे जा कहा ॥५१॥ उसने उसी दिन जाकर दुम्बर नाम के वृक्ष उखाड़ (उससे) भूमि बराबर कर दी, और जा निवेदन किया ॥५२॥ उसके भाइयों ने जाकर उस अद्भुत काम को देखा, उसे देखकर उसकी प्रशंसा करते हुये वह उसके पास आये। ॥५३॥ इस हेतु से उसका नाम गोट्ठिम्बर[1] हुआ। राजा ने उसको भी वैसे ही ग्रामणी के पास रख दिया ॥५४॥

कोट पर्वत के पास कित्तिग्राम मे रोहण नाम का गृहपति था। (उसने) अपने पुत्र का नाम गोट्ठकाभय राजा के नाम के समान रक्खा। दस बारह वर्ष के लड़के के समान (होकर) वह बालक (इतना) बलवान् था; (कि) जिस पत्थर को चार पाँच (मनुष्य) नहीं उठा सकते, उसे वह खेलते हुये खेल की गोली की तरह फेंक देता था ॥५५-५७॥

उस सोलह वर्ष के (लड़के) के लिये, उसके पिता ने अट्ठतीस अङ्गुल गोल और सोलह हाथ लम्बी गदा बनवाई। उस (गदा) से उसने नारिकेल और ताड़ के वृक्ष प्रहार करके गिरा दिये। इसी से वह योधा प्रसिद्ध हुआ ॥५८-५९॥ राजा ने उसे भी वैसे ही ग्रामणी के पास रखवा दिया। (योधा का) पिता (महासुम्म) स्थविर का उपस्थायक[2] था। वह (गृहस्थ) महासुम्म-स्थविर का धर्मोपदेश सुनकर कोट पर्वत मे स्रोत-आपत्ति-फल को प्राप्त हुआ। (फिर) वैराग्य हो जाने से वह राजा को कह कर (अपना) कुटुम्ब पुत्र को सौंप कर, स्थविर (थेर) के पास (जा) प्रव्रजित हुआ। (फिर) भावना करके अर्हत्व को प्राप्त हुआ। इससे उसका पुत्र थेर (स्थविर) पुत्र-अभय नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६०-६३॥

कप्पकन्दर[3] ग्राम मे कुमार का 'भरण' नामक पुत्र था। उसने दस

---

[1]रसवाहिनि मे गोठम्बर की बल-परीक्षा की कथा, इस से भिन्न है।

[2]दायक (यजमान)।

[3]महावंश ३४-२२ में इसी नाम की नदी का भी वर्णन है।

बारह वर्ष की अवस्था में अन्य बालकों के साथ बन जाकर (वहां) बहुत सारे खरगोशों का पीछा किया। फिर ठोकरें मार, दो टुकड़े करके (उन्हें) जमीन पर फेंक दिया। फिर सोलह वर्ष की अवस्था में ग्रामवासियों के साथ बन जाकर (उसने) सरलता से मृग, गोकर्ण (और) सूअर मार गिराये ॥६६॥ उससे वह भरण 'महायोधा' प्रसिद्ध हुआ। राजा ने उसे भी वैसे ही ग्रामणी के पास बसा दिया ॥६४-६७॥

गिरि नामक जनपद के कुटुम्बियङ्गन ग्राम में 'वसभ' नाम का (लोगों से) आदृत कुटुम्बी (गृहस्थ) था ॥६८॥

जानपदिक[1] वेल और गिरिभोजक सुमन दोनों ने उस (वसभ) मित्र के पुत्र पैदा होने पर, भेंट सहित जा बालक को अपने नाम (वेल-सुमन) दिये। उस बालक के बड़े होने पर गिरिभोजक ने उसे अपने घर में रख लिया ॥६६-७०॥

उस (गिरिभोजक) के यहां एक सैंधव[2] घोड़ा था। वह किसी को (अपने ऊपर) चढ़ने नहीं देता था। वेलु-सुमन को देखकर "यह सवार मेरे योग्य है" सोच हिनहिनाया। यह जान कर भोजक ने उस (बालक) को कहा "घोड़े पर चढ़"। बालक ने घोड़े पर चढ़ उसे तेजी से चक्कर कटाया। वह घोड़ा उस तमाम चक्कर के साथ एकाबद्ध सा दीखता था। दौड़ते हुये घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ (वेलुसुमन) पुरुषों की पंक्ति के समान (दीख पड़ता था)। वह निश्शंक हो अपने ऊपर के वस्त्र को खोलता भी और बांधता भी जाता था ॥७१-७४॥

उसे देखकर तमाम परिषद् ने ताली बजायी। गिरिभोजक ने उसे दस हज़ार (मुद्रा) दी, फिर 'यह राजा के अनुकूल है' (सोचकर) उस योधा को राजा को दिया। राजा ने उस वेलुसुमन का बहुत सत्कार करके, बहुत सम्मान-पूर्वक अपने ही पास रखा। ७५-७७॥

नकुल पर्वत के समीप महिस दोणिक ग्राम में अभय के अन्तिम बलवान् पुत्र का नाम 'देव' था। लेकिन थोड़ा सा लङ्गड़ा होने के कारण उस को खञ्जदेव कहते थे ॥७८॥ ग्रामवासियों के साथ शिकार को जाकर उस आदमी ने बहुत से बड़े ऊंचे ऊंचे भैंसे पकड़े। (फिर) हाथ से उन

---

[1]जानपदिक जनपद के अधिकारी को कहते थे, जनपद कई गांवों का समुदाय होता था। ग्राम का अधिकारी ग्रामभोजक कहा जाता था।

[2]सिन्धु पिंडदादनखाँ, देश (पंजाब) का घोड़ा।

(भैंसों) के पैर पकड़ कर, सिर पर से घुमा जमीन पर पटक कर उन की हड्डियां चूर्ण कर दीं ॥७९-८०॥ उस समाचार को सुनकर राजा ने खञ्जदेव को मगवा कर ग्रामणी के पास रख दिया ॥८१॥

चित्तल पर्वत[1] के समीप गविट नाम के ग्राम मे उत्पल का फुस्सदेव (नामक) पुत्र था ॥८२॥ (अन्य) कुमारों (लड़कों) के साथ उस कुमार ने बिहार जा कर, बोधि (-वृक्ष) पर चढाया हुआ शङ्ख जोर से फूका ॥८३॥ बज्र-पात के समान उस शङ्ख का महान् शब्द हुआ। वह सब लड़के डर के मारे उन्मत्त की तरह हो गये ॥८४॥

इस से वह उन्माद-फुस्सदेव (नाम से) प्रसिद्ध हुआ। उस का पिता वशागत धनुष का पेशा करता था। इस से वह शब्द-बेधी (-शब्द पर बान चलाने वाला) विद्युत-बेधी (-बिजली के प्रकाश मे बाण चलाने वाला) और बाल-बेधी (बाल बींधने वाला) हो गया। वह तीर से वालु-पूर्ण शकट, सौ (एक साथ) बधे हुये चर्म; आठ अँगुल (मोटा) आसन; सोलह अंगुल (मोटा) उदम्बर (गूलर), वैसे ही दो अँगुल (मोटा) आयस-पत्र (और) चार अंगुल मोटा लोह-पत्र बींध देता था। उसका छोड़ा हुआ तीर स्थल पर आठ उसभ चला जाता था, लेकिन जल पर एक उसभ[2] ॥८५-८८॥

उस समाचार को सुनकर राजा ने (उसके) पिता के पास समाचार भेजा (और) उसे भी मगवा कर ग्रामणी के पास रखवा दिया ॥८९॥

तुलाधार पर्वत के समीप विहारवापी ग्राम मे मत्तकुटुम्बि का वसभ (नामक) पुत्र था। सुन्दर शरीर होने से वह लभिय वसभ (नाम से) प्रसिद्ध हुआ। बीस वर्ष की अवस्था मे वह महा काय-बल वाला हुआ ॥९०-९१॥ खेत के लिये कुछ आदमी लेकर (उसने) महावापी बनवानी आरम्भ की। उस को करते हुये उस महाबलवान् ने दस बारह आदमियों से उठाये जाने वाले 'धूलि के पिण्ड' को (अकेले) उठा कर, वापी जल्दी से समाप्त कर दी ॥९२-९३॥ उस से वह प्रसिद्ध हो गया। राजा ने उसे भी ले सत्कार कर, ग्रामणी को सुपुर्द किया ॥९४॥ वह खेत्र 'वसभ का उदक-वार' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार लभियवसभ ग्रामणी के पास रहने लगा ॥९५॥

तब राजा ने इन दस महायोधाओं का पुत्र के समान सत्कार किया ॥९६॥

---

[1] देखो २२-२३

[2] देखो २२-७२।

राजा ने उन दस योधाओं को बुला कर कहा, "प्रत्येक योधा दस दस योधा ढूढे" ॥६७॥ वह (योधागण) उसी प्रकार योधा ले आये। तब राजा ने फिर कहा, "वह सौ योधा भी वैसे ही (दस दस योधाओं) को ढूढे" ॥६८॥ वह भी उसी प्रकार योधा ले आये। राजा ने उनको भी कहा, 'हज़ार योधा (फिर) उसी प्रकार दस २ योधा ढूढे"। सब योधा इकट्ठे करने से वह ग्यारह हज़ार एक सौ दस हुये ॥६६-१००॥

वह सब ही राजा से सत्कार पाकर राजकुमार ग्रामणी के सेवक (होकर) रहने लगे ॥१०१॥

सुखार्थी बुद्धिमान् पुरुष इस अद्भुत सुचरित-समूह को सुनकर, अकुशल मार्ग से विमुख हो, सदैव कुशल मार्ग मे ही अभिरमण करे ॥१०२॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये कृत महावंश का 'योधालाभ' नामक त्रयो-विंश परिच्छेद।

चतुर्विंश परिच्छेद

दो भाइयों का युद्ध

उस समय हाथी घोडों और तलवार (चलाने) की विद्या में कुशल, सिद्धहस्त ग्रामणी राजकुमार महाग्राम मे रहता था ॥१॥

राजा ने राजकुमार तिस्स (तिष्य) को सेना और वाहनों से परिपूर्ण जनपद की रक्षा के लिये दीघवापी[1] मे रख दिया ॥२॥

समय पाकर अपनी शक्ति को देखते हुये कुमार ग्रामणी ने पिता को कहला भेजा, "हम दमिळों से लड़ेंगे" ॥३॥ पिता ने उस की रक्षा के लिये "गङ्गा[2] के इस पार (का देश) पर्याप्त है" कह कर (उसे) रोका। उस ने तीन बार पिता को यूँ ही कहला भेजा ॥४॥ चौथा बार उस ने (पिता के पास) स्त्रियों का कोई गहना भिजवाया, और उसके साथ "यदि मेरे पिता पुरुष होते तो ऐसा (कर्म) न कहते, इस लिये यह स्त्रियों का आभरण पहने" (कहला भेजा) ॥५॥ राजा ने उस पर क्रोधित हो कर कहा, "एक सोने की हथकड़ी बनवाओ। इस हथकड़ी से उसे बाधूँगा। क्योंकि किसी और प्रकार उस की रक्षा नहीं की जा सकती" ॥६॥ पिता से नाराज हो ग्रामणी भाग कर मलय[3] (प्रान्त) को चला गया। पिता के प्रति (इस) दुष्टता के कारण ही उस का नाम दुष्टग्रामणी (दुट्ठग्रामणी) हुआ ॥७॥

राजा ने महानुग्गल चैत्य बनवाना आरम्भ किया। चैत्य के समाप्त होने पर राजा ने भिक्षु-सघ को एकत्रित किया। चित्तल पर्वत से बारह हज़ार भिक्षु और और स्थानों से भी बारह हज़ार भिक्षु आये ॥८-९॥

चैत्य की पूजा करके, राजा ने सब योधाओं को सघ के सम्मुख बुला कर उन से शपथ कराई, "पुत्रों की लडाई में हम नहीं जायेंगे।" उन सब ने वह शपथ की। इसी से वह उस (भ्रातृ) युद्ध मे नहीं गये ॥१०-११॥

---

[1] देखो १-७८।

[2] महागंगा के इस पार महागामवंश और उस पार दमिळ राज्य करते रहे हैं।

[3] देखो ७-६८।

उस राजा ने चौंसठ विहार बनवाये। उतने ही (चौसठ) वर्ष जीवित रह कर, वह मर गया ॥१२॥ रानी ने राजा के शरीर को बन्द गाड़ी में रख (उसे) तिस्समहाराम (विहार) में ले जा सघ से निवेदन किया। उसे सुनकर तिस्स-कुमार ने दीर्घवापी से वहां जाकर पिता के देहसस्कार (रूपी) सत्कृत्य को कराया। (फिर) वह महाबलवान् (तिस्स) माता को कडुल हाथी पर चढा, भाई (ग्रामणी) के भय से जल्दी ही दीघवापी को चला गया ॥१३-१५॥

सब एकत्र हुये अमात्यों ने ग्रामणी के प्रति वह समाचार निवेदन करने के लिये चिट्ठी दे कर (किसी आदमी को) भेजा ॥१६॥ उस ने गुप्त-हाल[1] पहुँच (वहां) गुप्त-चर छोड़े। महाग्राम पहुँच उसने स्वय (अपना) राज्याभिषेक किया ॥१७॥

माता के लिये और कडुल हाथी के लिये (ग्रामणी) ने भाई के पास चिट्ठी भेजी। तीन बार भी न मिलने पर, वह युद्ध के लिये उसके पास पहुँचा ॥१८॥

चूलङ्गणिय-पिट्टि मे दोनों भाइयों का महायुद्ध हुआ। उस मे राजा के हजारों आदमी काम आये ॥१९॥ राजा (दुष्टग्रामणी); तिस्सामात्य, दीर्घ-थूनिका घोड़ी—तीनों भागे। कुमार (श्रद्धातिष्य) ने उन का पीछा किया। भिक्षुओं ने दोनों (भाइयों) के बीच पर्वत खडा कर दिया। उसे देख कर यह 'भिक्षु सघ का कर्म है' सोच राजा रुक गया ॥२०-२१॥

कप्पकंदर नदी मे (चल कर) वह जवमालतित्थ पर आये, (तो) राजा ने उस तिस्स अमात्य को कहा:—'हम भूखे प्यासे हैं"। उस ने राजा के लिये सोने के कटोरे मे रक्खा हुआ भात बाहर निकाला; सघ को दे कर (खायेंगे, इस लिये) भोजन करने के समय, चार हिस्से करवा कर 'समय की घोषणा' करने के लिये कहा। तिस्सअमात्य ने 'काल की घोषणा' की। राजा के शिक्षक पियङ्गदीप-स्थित स्थविर ने दिव्यश्रोत्र से सुनकर कुटुम्बिपुत्र तिस्सस्थविर को भेजा। तिस्स (स्थविर) आकाश (मार्ग) से आये। उस (तिस्सअमात्य) ने तिस्स (स्थविर) के हाथ से पात्र ले कर राजा को दिया। राजा ने सघ का बराबर का हिस्सा और अपना हिस्सा पात्र में डलवाया। तिस्स ने भी (अपना) बराबर का हिस्सा (पात्र मे) डाल दिया। घोड़ी ने भी अपना बराबर का भाग (लेना) नहीं चाहा। तिस्स ने उसका भाग भी पात्र मे डाल दिया ॥२२-२७॥ राजा ने भात से भरा हुआ

[1] महागाम के ३५ मील उत्तर वर्तमान बुत्तल।

वह पात्र स्थविर को दिया। स्थविर ने शीघ्र ही आकाश (मार्ग) से जा कर वह पात्र गोतम स्थविर को दिया ॥२८॥

उस स्थविर ने भोजन करते हुये पाँच-सौ भिक्षुओं को (एक २) ग्रास-परिमाण से बाँटा। फिर उन (भिक्षुओं) से (बचकर) प्राप्त भागों से भरे हुये पात्र को राजा के लिये आकाश मे फेंक दिया। जाते हुये (पात्र) को देख, (उसे) पकड़ तिस्स ने राजा को भोजन खिलाया। स्वय भोजन करके घोड़ी को भी खिलाया। राजा ने (अपने) वस्त्र की गेंडुरी बना कर पात्र वापिस फेंक दिया ॥२६-३१॥

उस (दुष्टग्रामणी) ने महाग्राम पहुंच कर फिर युद्ध के लिये साठ हजार सेना एकत्र कर, भाई के साथ जा युद्ध किया ॥३२॥

राजा घोड़ी पर (और) तिस्स कडुल हाथी पर चढ दोनों भाई युद्ध करते हुए रण-भूमि में आ पहुंचे ॥३३॥ राजा ने हाथी को घेरते हुये घोड़ी से चक्कर काटा। उस तरह अवकाश न मिलते देख, उसने हाथी को लाघने का विचार किया ॥३४॥ घोड़ी से हाथी लाघ कर, भाई की पीठ पर के चमड़े भर को काटने के लिये तोमर फेंकी ॥३५॥ युद्ध मे लड़ते हुये कुमार के कई हजार आदमी गिरे। (दोनों की) महासेना बिखर गई ॥३६॥

"सवार की लापरवाही से एक स्त्री जाति (घोड़ी) मुझे लाघ गई"—इस लिये—क्रुद्ध हुआ हाथी उस (सवार) को हिलाता हुआ, एक वृक्ष के पास आया। कुमार वृक्ष पर चढ गया। हाथी स्वामी (दुष्टग्रामणी) के पास पहुँच गया। (फिर) राजा ने उस हाथी पर चढ कर भागते हुये कुमार का पीछा किया ॥३७-३८॥ भाई के भय से वह कुमार एक विहार मे घुस गया, महास्थविर के घर मे जा कर पलग के नीचे पड़ रहा ॥३९॥ महास्थविर ने उस पलग पर चीवर फैला दिया। राजा ने उसी समय पहुंच कर पूछा, "तिस्स कहा है"? ॥४०॥ स्थविर ने कहा "महाराज! पलग पर नहीं है।" "पलग के नीचे है"—यह जान राजा ने वहा से निकल कर चारों ओर से विहार (को) घेरा डाल दिया। (तिस्स) कुमार को चारपाई पर लिटा ऊपर चीवर से ढाक, चार बालक यती पलग के पावे पकड़ (उठा) कर मृतभिक्षु की भाति (उसे) बाहर ले चले ॥४१-४३॥

उस को ले जाते (हैं) जान राजा ने कहा, "तिस्स! तू कुल देवताओं (भिक्षुओं) के सिर पर ढोकर बाहर जाता है। कुल-देवों से जबरदस्ती छीनना मुझ से नहीं (हो सकता)। कभी तू कुल-देवताओं का गुण भी स्मरण करेगा?" ॥४४-४५॥

वहां से राजा महागाम चला गया। मातृभक्त राजा ने (अपनी) माता को भी वहाँ मगवा लिया ॥४६॥ धर्म-रत राजा (महागामणी) अड़सठ (६८) वर्ष जिया। उस ने अड़सठ विहार बनवाये ॥४७॥

भिक्षुओ (की सहायता) से बाहर निकाला गया राजकुमार तिस्स, (वहां से) छिप कर दीघवापी आ गया ॥४८॥ कुमार ने गोधगत-तिष्य स्थविर से कहा, "भन्ते! मै अपराधी हूँ। भाई से क्षमा मागूगा" ॥४६॥ स्थविर पाच सौ भिक्षुओं सहित गृहस्थसेवक के रूपमें कुमार को लेकर राजा (दुष्टग्रामणी) के पास पहुँचे ॥५०॥ राज-पुत्र को सीढियों मे खड़ा करके सघ-सहित स्थविर ने (भीतर) प्रवेश किया ॥५१॥ राजा ने सब को बिठा कर यागू आदि (खाद्य पदार्थ) मगवाये। स्थविर ने पात्र ढाक दिया। "क्यो?" पूछने पर स्थविर ने कहा, "तिस्स को लेकर आये हैं" ॥५२॥ राजा ने कहा, "(वह) चोर (विद्रोही) कहा है?" स्थविर ने (उसको) ठहरने की जगह कह दी। विहार-देवी जा पुत्र को ढाक कर खड़ी हो गई ॥५३॥ राजा ने कहा, "आप ने हमारा दास भाव अब जान लिया, यदि आप सात वर्ष की आयु का एक श्रामणेर (भी) भेज देते, तो जन-क्षय के बिना ही हमारा कलह रुक जाता"। (स्थविर ने कहा) "राजा! यह सघ का दोष है। (इस के लिये) संघ दड भोगेगा"। राजा ने कहा, 'आने का उद्देश्य (पूरा) होगा, (आप) यागू आदि ग्रहण करे"। (फिर) राजा ने यागू आदि सघ को दे, भाई को बुला वहीं सघ के बीच बैठ कर भाइ के साथ एक (थाली) में खाया। (तब) सघ को विदा किया ॥५४-५७॥

राजा ने खेती-बाड़ी का काम करवाने के लिये तिस्स को वहीं (दीघवापी) भेज दिया (और) स्वय भी मुनादी कराकर खेती का काम करने लगा ॥५८॥

सत्पुरूष अनेक कल्पों से सचित बहुत सा वैर भी शात कर देते हैं। यह सोचकर कौन बुद्धिमान् पुरुष औरों के प्रति शान्त-मन न होगा? ॥५६॥

सुजनो के प्रसाद और वैराग्य के लिये कृत 'महावश' का 'दो भाइयो का युद्ध' नामक चतुर्विंश परिच्छेद।

पञ्चविंश परिच्छेद

दुष्टग्रामणी विजय

फिर राजा दुष्टग्रामणी जन-संग्रह[1] कर (सर्वज्ञ) धातु को भाले पर रखवा, रथ, सेना और वाहन सहित तिस्समहाराम पहुंचा। (वहां) संघ को प्रणाम करके (उसने) कहा :—" मैं बुद्ध-शासन को प्रकाशित करने के लिये गङ्गा[2] के पार जाऊंगा। वहां पूजा करने के लिये हमारे साथ आने वाले भिक्षु दो। भिक्षुओं का दर्शन हमारे मङ्गल और रक्षा के लिये होगा" ॥१-३॥

संघ ने राजा को दण्ड-कर्म के लिये[3] पांच सौ भिक्षु दिये। उस भिक्षु संघ को लेकर राजा वहां से विदा हुआ ॥४॥

राजा ने मलय से यहां (अनुराधपुर) आने का मार्ग शुद्ध कराया। फिर योधाओं को साथ लिये हुये (राजा) कण्डुल हाथी पर चढ, महान् सेना सहित युद्ध के लिये निकला। महागाम से सम्बद्ध सेना गुत्तहालक तक गई ॥५-६॥

महियङ्गण पहुँच कर छत्र (नामक) दमिळ को पकड़ा। वहां दमिळों को मार कर फिर अम्बतीर्थ[4] पहुँचा। गङ्गा (रूपी) खाई से युक्त तीर्थ (नगर) के महाबलवान् दमिळ से चार मास तक युद्ध करते (अन्त में) माता को दिखा कर[5], बहाने से उसे पकड़ा। वहां से चढ कर महाबलवान् ने महाबल वाले सात दमिळ राजा एक ही दिन में पकड़ कर शान्ति (खेम) स्थापित की। (फिर) सेना को धन दिया। इसी से खेमाराम कहते हैं। ७-१०॥

अन्तरासोभ (ग्राम) में महाकोट्ट (दमिळ) दोण (ग्राम) में गवर (दमिळ), हालकोल (ग्राम) में इस्सरिय (दमिळ) (और) नीलसोभ (ग्राम) में नालिक (दमिळ) पकड़े ॥११॥ दीघाभयगल्लक में दीघाभय

---

[1] जनता को खिला पिला कर।

[2] देखो २४-४।

[3] देखो २४-२२

[4] महावैलि-(महावली) गङ्गा का एक घाट।

[5] म० टीका के अनुसार 'माता के साथ विवाह करने का लालच देकर'।

(दमिळ) भी पकड़ा (और) चार ग्राम में कच्छतीर्थ में कपिसीस को भी पकड़ा ॥१२॥

कोट नगर में कोट (दमिळ) और उसके साथ ही हालवाहनक (दमिळ), वहिट्ठ (ग्राम) में वहिट्ठ (दमिळ) गामणी (नगर) में गामणी, कुम्ब ग्राम में कुम्ब (दमिळ) नन्दि ग्राम में नन्दि (दमिळ) खानु ग्राम में खानु (और) तम्बु तथा उन्नम नाम के दो मामा भानजा तम्बु और उन्नम नाम के ग्रामों में पकड़े गये। जम्बु नाम के ग्राम में जम्बु पकड़ा गया। पीछे उन ग्रामों का नाम उन उन के नामानुसार हुआ ॥१३-१५॥

राजा ने यह सुनकर कि (उसके सैनिक) न पहिचान, अपने (ही) आदमियों को मारते हैं शपथ की.--"मेरा यह काम (यदि) राज्य-सुख के लिये नहीं, (बल्कि) सदा के लिये सम्बुद्ध-शासन की स्थापना के वास्ते हो (तो) इस सत्य के कारण मेरे सैनिकों की देह के वस्त्र ज्वाला के (लाल) रंग के हो जावें"। उस समय वैसा हो गया ॥१६-१८॥

गङ्गा (नदी) के तट पर मरने से बचे हुये सब दमिळ (अपनी) रक्षा के लिये विजित[1] नामक नगर में प्रविष्ट हुये ॥१९॥ (वहाँ) सुखदायक खुले आङ्गण में खन्धावार (=छावनी) डाली। इससे वह स्थान खन्धावार-पिट्ठि नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२०॥

विजित नगर को जीतने का विचार करते हुये राजा ने नन्धि-मित्त (योधा) को आता देख, कंडुल (हाथी) भेजा। नन्धि-मित्त उस हाथी को हाथ से पकड़ने के लिये आया और उसके दानों दान्त दबा कर (उसे) बैठा दिया ॥२१-२२॥ क्योंकि उस स्थान पर नन्धि-मित्त ने हाथी के साथ युद्ध किया था, इसी लिये उस स्थान पर (बसे) गाव का नाम हत्थिपोर हुआ ॥२३॥

दोनों की परीक्षा करके, राजा विजित (नगर) को गया। (नगर के) दक्षिण द्वार पर योधाओं का भीषण संग्राम हुआ ॥२४॥ पूर्व की ओर के द्वार पर घुड़-सवार वेलु-सुमन ने अनेक दमिळ मार डाले ॥२५॥ दमिळों ने द्वार बन्द कर लिये। राजा ने योधाओं को भेजा। दक्षिण द्वार पर कंडुल, नन्धि-मित्त और सूरनिमिल; शेष तीन द्वारों पर महासोण, गोट्ठ और स्थविरपुत्र—इन तीनों ने (महान्) कर्म किये ॥२६-२७॥

---

[1] अनुराधपुर से २४ मील कालवापी (कलुवैव) के किनारे पर।

तीन खाइयों से (और) ऊँची प्राकार से घिरे हुये उस नगर का लोह निर्मित द्वार दृढ और शत्रुओं द्वारा अटूट था ॥२८॥ हाथी घुटने टेक, पत्थर, चूना और ईंटों को तोड द्वार पर जा पहुँचा ॥२९॥ नगर-द्वार पर स्थित दमिळों ने अनेक आयुध फेंके। गर्म लोहे के गोले फेंके। गर्म काढा तथा (गर्म) शीरा फेंका ॥३०॥

जलते हुये (गर्म) लोहे के पीठ पर पडने से वेदना से पीड़ित उस कंडुल हाथी ने पानी में जाकर डुबकी लगाई ॥३१॥ (तब) गोठ्म्बर ने कहा "हे हाथी! यह तेरा सुरा-पान (का समय) नहीं। लोह-द्वार के (पास) जा और द्वार को तोड" ॥३२॥

वह अभिमानी श्रेष्ठ हाथी स्वाभिमान जताता, चिंघाड मारकर, जल से उठ स्थल पर आ खड़ा हुआ ॥३३॥ तब हाथी-वैद्य ने गर्म (शीरा) धो कर दवाई की। राजा ने हाथी पर चढ कर हाथ से (हाथी का) कुम्भ स्पर्श करके, "तात कडुल! तुझे सकल लकाद्वीप का राज्य दूंगा" कह कर हाथी को सतुष्ट करते हुये राजा ने (उसे) अच्छे भोजन खिलवा, कपड़े से लिपटवा, बखतर लगवा, भैंस के चमड़े की सात तहों का (बना हुआ) चमड़ा पीठ पर बंधवा, उसके ऊपर तेल-चमडा लगवा कर भेजा। वज्र की तरह गर्जते हुये (तथा) उपद्रवों को सहते हुये उसने जाकर दांतों से दरवाजे के तख्ते (और) पांव से दरवाजे की चौखट तोड़ दी। चौखट-सहित तमाम दरवाजा जमीन पर गिर पड़ा ॥३४-३८॥

नगर-द्वार से हाथी की पीठ पर गिरते हुए द्रव्य-सभार को, हाथों से परे हटा कर नन्धिमित्र लौटा ॥३९॥ उस (नन्धिमित्र) के उस काम को देख कर सन्तुष्ट मन कडुल (हाथी) ने दांत दबाने के पूर्व-कृत वैर को छोड़ दिया ॥४०॥

उस गज-श्रेष्ठ कडुल ने पीछे की ओर से ही (नगर) में प्रविष्ट होने के लिये मुडकर योधा को देखा ॥४१॥ "हाथी द्वारा बनाये गये मार्ग से मैं प्रवेश नहीं करूँगा" सोचकर नन्धि-मित्र ने हाथ से प्राकार फोड़ दी। अट्ठारह हाथ ऊँची चार-दीवारी आठ उसभ[1] गिर पड़ी। सूरनिमिल की ओर देखा। वह भी उस मार्ग से जाने का अनिच्छुक था। (इसलिये) प्राकार को

[1]देखो २८-४८

लाघ कर (वह) नगर के भीतर प्रविष्ट हुआ। गोट्ठ और सोन (भी) एक एक द्वार तोड़ प्रविष्ट हुये ॥४२-४४॥

हाथी ने रथचक्र, मित्र ने शकट-पञ्जर, गोट्ठ ने नारियल का वृक्ष, निमिल ने उत्तम खड्ग, महासोम ने ताड़ का वृक्ष और स्थविर-पुत्र ने बड़ी गदा लेकर भिन्न भिन्न गलियों में घुसे हुये दमिळों को चूर्ण कर दिया ॥४५-४६॥

राजा ने चार महीने म विजित नगर ध्वसकर वहा से गिरिलक जा कर, गिरिय दमिळ को मारा ॥४७॥

तब राजा ने तीन महान् (खाइयों) वाले चारों ओर से कदम्ब पुष्प और लताओं से घिरे हुये, दुप्रवेश एकद्वार वाले महेल-नगर में पहुँच (वहां) चार महीना वास किया और महेल राजा को युक्ति की लड़ाई (=मन्त्र-युद्ध) से पकड़ा। वहा से राजा ने अनुराधपुर आकर कासपर्वत[1] के इस पार छावनी डाली ॥४८-५०॥

ज्येष्ठ मास मे राजा ने वहा तालाव बनवा जलक्रीड़ा की। उस जगह पर पज्जोत नामक ग्राम हुआ ॥५१॥

राजा दुष्टग्रामणी को युद्ध के लिये आया सुन एळार नरेश ने मन्त्रियों को बुलाकर कहा:—"वह राजा स्वय योद्धा है, और उसके योद्धा भी बहुत हैं। हे अमात्यो! हमें क्या करना चाहिये? हमारे (अमात्य) क्या सोचते है?" ॥५२-५३॥

एळार नरेश के दीघजन्तु प्रभृति योधाओं ने "कल युद्ध करेंगे" (ऐसा) निश्चय किया ॥५४॥ दुष्टग्रामणी राजा ने भी माता के साथ परामर्श करके उसके परामर्शानुसार बत्तीस सेना-व्यूह किये। राजा जैसी छत्र धारी (मूर्तिया प्रत्येक में) रखवा, राजा स्वय अन्दर के व्यूह मे ठहरा ॥५५-५६॥ योग्य सेना और वाहन सहित (एळार) राजा तैय्यार (हो) महापर्वत (नामक) हाथी पर चढ कर वहा आया ॥५७॥

सग्राम के समय, भयानक युद्ध करने वाले, महाबलवान् दीघजन्तु ने खड्ग-फलक (ढाल) लेकर आकाश में अट्ठारह हाथ ऊँचा जा वह राज-रूप (मूर्ति) तोड़, पहला सेना-व्यूह तोड़ दिया ॥५८-५९॥ इस प्रकार (वह) बलवान् शेष सेना-व्यूह भी नष्टकर राजा दुष्टग्रामणी के व्यूह पर आ पहुँचा ॥६०॥ राजा के ऊपर (आक्रमण करने) जाते हुये उस योधा को महाबलवान्

[1] देखो १०-२७

सूरनिमिल योधा ने अपना नाम सुनाकर ललकारा ॥६१॥ दूसरा दीघजंतु "उसको वध करूँ" सोच आकाश मे कूदा। दूसरे (सूरनिमिल) ने उतरते हुये (दीघजंतु) के आगे ढाल कर दी ॥६२॥ "इसे ढाल-सहित छेदूंगा" सोच उस दीघजतु ने खड्ग से ढाल पर प्रहार किया। लेकिन दूसरे ने ढाल छोड़ दी ॥६३॥ छुटी ढाल को काटता हुआ दीघजतु वहीं गिर पड़ा। (सूरनिमिल) ने उठकर शक्ति (-शस्त्र) से उस (गिरे हुये) को मार डाला ॥६४॥ फुस्सदेव ने शङ्ख की ध्वनि की। दमिळ सेना भङ्ग हो गई। राजा एळार भी लौटा। बहुत सारे दमिळ मार डाले गये ॥६५॥ वहा वापी का जल मरे हुओं के रक्त से रग गया। इसलिये वह वापी कुलत्थ-वापी[1] नाम से प्रसिद्ध हुई ॥६६॥

राजा दुष्टग्रामणी ने भेरी बजवा दी, "मुझे छोड़ कर अन्य कोई एळार को नहीं मारेगा"। फिर स्वय सन्नद्ध हो कण्डुल हाथी पर चढ (राजा) एळार का पीछा करता हुआ (नगर के) दक्षिण द्वार पर आ पहुँचा ॥६७-६८॥ दक्षिण द्वार के सामने दोनों राजा लड़े। एळार ने दुष्टग्रामणी पर तोमर फेंका। दुष्टग्रामणी ने उसे खाली जाने दिया। (फिर) अपने हाथी के दातो से उस (महापर्वत) हाथी को लड़ाया (और) एळार पर तोमर फेंका। एळार हाथी सहित वहा खेत रहा ॥६९-७०॥

रथ सेना और वाहन के साथ (राजा) ने सग्राम जीत, तमाम लङ्का को एकछत्र कर नगर-प्रवेश किया ॥७१॥ नगर में भेरी बजवा कर, चारों ओर से (एक) योजन तक के लोग एकत्र करा कर (उसने) एळार का सत्कार करवाया ॥७२॥ उस के शरीर के गिरने के स्थान को कूटागार (कोठा) से ढँकवाया। वहा चैत्य बनवाया और पूजा करवाई ॥७३॥ उसी पूजा (के विचार) से आज भी इस स्थान के समीप जाते (समय) लका के नरेश बाजा नहीं बजवाते ॥७४॥

इस प्रकार दुष्टग्रामणी ने बत्तीस दमिळ राजाओं को पकड़ कर लका का एक-छत्र राज्य किया ॥७५॥

विजित नगर के टूटने पर उस दीघजन्तु योधा ने अपने भल्लुक नाम के भानजे का योधापन एळार से निवेदन कर उस (भल्लुक) के पास यहा आने के लिये आदमी भिजवाया था। उसे (आया) सुन एळार के दाह (सत्कार) के सातवें दिन साठ हजार आदमियों के साथ भल्लुक (जहाज से)

---

[1] कुलन्तवापी भी पाठ है।

यहां उतरा ॥७६-७८॥ यद्यपि उसने उतरते (ही) राजा का पतन (मरण) सुन लिया था, तो भी लज्जा-वश "युद्ध करू गा"—इस निश्चय से वह महातीर्थ से यहा आया ॥७९॥

उस ने कोलम्बहालक[1] गाव मे अपनी छावनी डाली। उसका आगमन सुन कर राजा (दुष्टग्रामणी) युद्ध की सामग्री से सुसज्जित हो, कडुल हाथी पर चढ कर, हाथी, घोड़े, रथ और योधा तथा पर्याप्त सेना के साथ, युद्ध के लिये निकला ॥८०-८१॥ लका-द्वीप में सर्वश्रेष्ठ धनुषधारी, पाच आयुधों[2] से सुसज्जित उम्मादफुस्स देव (साथ) चला। शेष योधा भी पीछे हुये ॥८२॥

तुमुल युद्ध के समय, सुसज्जित भल्लुक (आक्रमण करने के लिये) राजा के सम्मुख आया। लेकिन कण्डुल हाथी उस (भल्लुक) का वेग मन्द करने के लिये शनैः शनैः पीछे हटने लगा। सेना भी उस के साथ शनैः शनैः पीछे हटी ॥८३-८४॥ राजा ने पूछा :—"हे फुस्सदेव! पहले अट्ठाइस युद्धों मे यह हाथी (कभी) पीछे नहीं हटा, (आज) क्या कारण है?" ॥८५॥ "हे देव! हमारी परम जय (होगी), हाथी जय-भूमि पीछे देखता हुआ, पीछे हट रहा है। जयस्थान पर ठहरेगा" ॥८६॥ हाथी पीछे हट कर नगरदेवता के सामने महाविहार की सीमा मे स्थिर होकर खडा हो गया ॥८७॥

जब हाथी वहा ठहरा, (तो) दमिळ भल्लुक ने राजा के सम्मुख आकर, राजा की हसी की ॥८८॥ राजा ने (अपने) मुह के सामने खड्ग करके उसे वैसा ही जवाब दिया। "राजा के मुह मे लगे" - इस विचार से उस (भल्लुक) ने तीर छोड़ा। तीर खड्ग के तले मे लगकर जमीन पर गिर (पड़ा)। 'मुह मे लगा' समझ भल्लुक ने जय-घोष किया ॥८९-९०॥

राजा के पीछे बैठे हुये महाबलवान् फुस्सदेव ने भल्लुक के मुँह मे तीर छोडा। राजा के कुण्डल से रगड़ खाते हुये उस तीर के लगने से वह राजा की ओर पैर करके गिरने लगा। सिद्धहस्त फुस्सदेव ने दूसरा तीर चला, उस की जाघ बेध कर, उसे राजा की ओर सिर किये हुये गिराया। तब भल्लुक के गिरने पर जय-घोष हुआ ॥९१-९३॥

उसी समय फुस्सदेव ने अपना दोष प्रगट करने के लिये अपने कान का मास छेद कर बहता हुआ खून राजा को दिखाया। उसे देख कर राजा

[1] ३२-४२ का कोलम्बालक। अनुराधपुर के उत्तर द्वार के समीप।
[2] देखो ७-१६।

ने उस से पूछा, "यह क्या ?" उस ने राजा को उत्तर दिया, "मैने (अपने ऊपर) राज-दण्ड लिया है" ॥९४-९५॥ "तेरा दोष क्या है ?" पूछने पर कहा, "कुण्डल से रगड़ना"। राजा ने कहा :—"अदोष को दोष मान कर भाई ऐसा क्यों किया ?" ॥९६॥ यह कह कर कृतज्ञ महाराज ने (फिर) कहा :—"तीर के अनुसार ही तेरा महान् सत्कार होगा" ॥९७॥

तमाम दमिळों को मार कर उस विजयी राजा ने (अपने) प्रासाद-तल पर चढ, नटों और अमात्यों के बीच सिंहासन पर बैठ, फुस्सदेव का वह तीर मगवा (उसे) पूंछ की ओर से जमीन पर सीधा रखवाया। फिर (उस) तीर के ऊपर कहापण[1] डलवा डलवा (वह कहापण,[1] उसी क्षण फुस्सदेव को दिलवा दिये ॥९८-१००॥

अलंकृत, सुगन्धादि से प्रज्वलित; नाना गन्ध-सयुक्त, राज्य प्रासाद-तल पर बैठे हुये, नटों और अप्सराओं के सहित, अमूल्य, सुन्दर, मृदु शयनासन पर सोते हुये भी (राजा) को उस महान् श्रीसम्पत्ति के देखते हूये भी अक्षोहिणी (सेना) के घातका स्मरण(करने से) सुख नहीं मिला ॥१०१-१०३।

पियङ्गुदीप[2] के अर्हतों ने उस राजा का वह सताप जान, उसे आश्वासन देने के लिये आठ अर्हत भेजे ॥१०४॥ वह मध्यरात्रि के समय आकर राज-द्वार पर उतरे। 'आकाश-मार्ग' से (अपना) आना निवेदन करके प्रासाद के तले पर चढ़े ॥१०५॥ राजा ने उनका प्रणाम कर, आसन पर बिठा, विविध सत्कार करके, आने का कारण पूछा ॥१०६॥

"राजन् ! हमें पियङ्गुदीप के सघ ने तुम्हें आश्वासित करने के लिये भेजा है"। (तब) राजा ने फिर कहा—"भन्ते ! मुझे शान्ति कैसे हो ? जिस मैंने अक्षोहिणी-भर सेना का घात कराया है"॥१०७-१०८॥ "राजन् ! (तेरे) इस कर्म से स्वर्ग के मार्ग में बाधा नहीं है। (तुझसे) यहाँ केवल डेढ आदमी मारे गये हैं। एक (त्रि-) शरण-प्राप्त हुआ है, दूसरे ने पाचशील[3] ग्रहण किये हैं। शेष मिथ्या-दृष्टि और दुश्शील (तो) पशु-समान मरे हैं" ॥१०९-११०॥

"हे नरेश ! क्योंकि तुझे बुद्ध-शासन का उज्वल करना है। इस लिये तू (इस) मनःक्लेश को दूर कर" ॥१११॥

उनके ऐसा कहने पर राजा का सताप हुआ। उन्हें प्रणाम कर, विदा

---

[1] देखो ४-१३।

[2] देखो २४-२५।

[3] देखो १-३२।

करके सोता हुआ (राजा) फिर सोचने लगा—"बाल्यकाल में भोजन के समय मातापिता ने हमे यह शपथ दी थी 'सघ को बिना दिये कोई भी चीज़ कभी मत खाना'। मैंने सघ को बिना दिये कोई चीज़ (कभी) खाई तो नहीं ?" उसने देखा कि प्रातःकाल के भोजन में भूल से उसने 'संघ के लिये बिना रक्खे' एक मिर्च खा ली थी। (तब) उसने सोचा, "इसके लिये मुझे अपने को दण्डित करना चाहिये" ॥११२-११५॥

(यदि) मनुष्य इस लोक में इस प्रकार इन अनेक कोटिमनुष्यों का मारा जाना सोचकर, कामनाओं के कारण और दुष्परिणाम अच्छी तरह मन मे करे; तथा सब का घात करने वाली (उस) अनित्यता को भली प्रकार सोचे तो वह थोड़े ही काल मे दुःख से मोक्ष अथवा शुभ-गति को प्राप्त कर ले ॥११६॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'दुष्टग्रामणी विजय' नामक पच-विंश परिच्छेद।

षड्-विंश परिच्छेद

मरिचवट्टी विहार पूजा

लङ्का में एक-छत्र राज्य स्थापित कर, उस महायशस्वी राजा ने योधाओं को यथायोग्य स्थान दिया ॥१॥

थेरपुत्ताभय योधा ने दिये हुये (स्थान) को (लेना) नहीं चाहा। "किस लिये?" पूछने पर "युद्ध है" उत्तर दिया ॥२॥ 'एक राज्य कर दिये जाने पर, युद्ध कैसा?' पूछे जाने पर "मैं दुर्जय, क्लेश (वासना) रूपी विद्रोहियों के साथ युद्ध करूँगा" ॥३॥ राजा ने उसको (प्रव्रजित होने से) बार बार मना किया; (लेकिन) उसने (राजा से) बार बार प्रार्थना करके, राजानुमति (प्राप्त कर) प्रव्रज्या ग्रहण की ॥४॥ प्रव्रजित हो, समय पाकर वह अर्हत (पद को) प्राप्त हुआ। उसके साथ पांच-सौ क्षीणास्रव (भिक्षु) रहते थे ॥५॥

'छत्र-मङ्गल-सप्ताह'[1] के बीत जाने पर, उस भयरहित अभय राजा ने बड़ी धूमधाम से राज्याभिषेक (कराया)। क्रीडा करते हुये वह राजा (पूर्व के) अभिषिक्तों की मर्यादा की रक्षा तथा क्रीडा के लिये, भली प्रकार अलङ्कृत हो तिस्सवापी को गया ॥६-७॥

(लोगों ने) राजा के वस्त्र और सङ्कड़ों उपहार मरिचवट्टी (विहार)[2] के स्थान पर रक्खे। और इसी प्रकार राजपुरुषों ने स्तूप के स्थान पर धातु-सहित उत्तम भाला सीधा खड़ा किया ॥८-९॥

दिन भर महल की नारियों सहित जल-क्रीड़ा कर, सायङ्काल के समय राजा ने कहा, "(अब) हम जायेंगे, भाला आगे बढ़ाया जाय" ॥१०॥ उसके अधिकारी (पृथ्वी में गड़े हुये) उस भाले को हिला नहीं सके। (तब) राज-सेना ने आकर गन्ध-माला से उसकी पूजा की ॥११॥ उस आश्चर्य को देख प्रसन्न-चित्त राजा ने उस (भाले) की रक्षा के लिये पुरुषों को नियुक्त कर वहां से (स्वयं) नगर में प्रविष्ट हो, भाले को चारों ओर से घेर कर विहार बनवाया ॥१२-१३॥

---

[1] राज्य-छत्र धारण सम्बन्धी उत्सव।

[2] अनुराधपुर के दक्षिण-पश्चिम में आधुनिक 'मिरिसवट्टी'।

वह विहार तीन वर्षों में समाप्त हुआ। राजा ने विहार-पूजा करने के लिये भिक्षुओं को निमन्त्रित किया। उस समय एक लाख भिक्षु और नब्बे हजार भिक्षुणियां एकत्र हुई ॥१४ १५॥ उस सभा में राजा ने कहा, "भन्ते! सघ को भूल कर (=न देकर) मैंने एक मिर्च खा ली थी। अपने उस दोष के लिये दण्ड-स्वरूप मैंने यह सुन्दर-विहार और चैत्य बनवाया है। सघ उसे स्वीकार करे"। (फिर) उस प्रसन्न-चित्त राजा ने दक्षिणा का जल (हाथ पर) डाल कर, वह विहार सघ को दे दिया ॥१६-१८॥

विहार में और विहार के चारों ओर बड़ा भारी सुन्दर मण्डप बनवाया। (यह मण्डप) अभय-वापी[1] के जल तक में खम्भे स्थापित कर बनवाया गया था। खाली जगह का तो क्या ही कहना? ॥१६-२०॥

राजा ने सप्ताह (भर) अन्न पान आदि देकर, (अत में) भिक्षुओं के सभी महामूल्यवान् परिष्कार भेंट किये ॥२१॥ आरम्भ में वह (परिष्कार) एक लाख के मूल्य के थे, अत में एक हज़ार के मूल्य का। वह सब सघ ने पाया ॥२२॥

युद्ध और दान में शूर, त्रिरत्न में श्रद्धालु, प्रसन्न, निष्कलङ्क चित्त वाले कृतज्ञ राजा ने (बुद्ध-) शासन को प्रकाशित करने के लिये स्तूप बनवाने (के कार्य्य) से आरम्भ करके विहार-पूजा (के कार्य्य) तक, त्रिरत्न का सत्कार करने के लिये, अनेक अमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त और जो कुछ त्याग किया, उसको एकत्र करने से (उसका मूल्य) उन्नीस कराड़ होता है ॥२३-२५॥

भोग (-पदार्थ) यद्यपि पाच दाषों[2] से दूषित हैं। (लेकिन) विशेष प्रज्ञा-वान् मनुष्यों के पास हाने पर पाँच गुणों[3] के सार से युक्त हो जाते हैं। इस लिये बुद्धिमान् पुरुष सार ग्रहण करने के लिये प्रयत्न करे ॥२६॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'मरिचवट्टी विहार-पूजा' नामक षड्-विंश परिच्छेद।

---

[1]देखो २५-१।

[2]देखो १०-८४।

[3]अग्नि, जल आदि से नाश होने का भय (महावंश टीका)

[4]मनुष्यों का आदर[1], कीर्ति[2], यश[3], गृहस्थ धर्म की पूर्ति में अशु-भाव[4], मरने पर स्वर्ग-लोक की प्राप्ति[5]। (महावंश टीका)

सप्त-विंश परिच्छेद

लोह प्रासाद पूजा

तब राजा विश्रुत, सुश्रुत, तथाश्रुत (अनुश्रुति) के विषय मे सोचने लगा:—"महापुण्यवान्, सदैव पुण्य (कर्म) में रत, प्रज्ञा में स्थिरता-युक्त (और) द्वीप को श्रद्धालु बनाने वाले स्थविर ने मेरे दादा-राजा (=गोठाभय) से यू कहा (था):—राजन्! तुम्हारा महाप्रज्ञावान् पोता दुष्टग्रामणी भविष्य-काल मे स्वर्ण-माली[1] नामक एक सौ बीस हाथ ऊँचा सुन्दर महास्तूप बनवायेगा (और) फिर नाना प्रकार के रत्नों से मण्डित नौ तले का उपोसथागार बनवा लोहप्रासाद (बनवायेगा)" ॥१-४॥

यह सोच राजा ने, इसी प्रकार लिखा कर चगेर में रखवाये हुए स्वर्ण-पत्र को राजगृहमें ढूढ कर लेख पढवाया ॥५॥ "एक सौ छत्तीस वर्षो के बीत जाने पर भविष्य में काकवर्ण का बेटा राजा दुष्टग्रामणी 'यह', 'यह' और इस प्रकार करायेगा" पढा गया ॥६-७॥ राजा ने सुन, प्रसन्न हो, अपने उत्साह को उदान[2] द्वारा प्रकट करके, ताली बजायी। फिर प्रातःकाल ही सुन्दर महामेघवन जाकर, (वहा) भिक्षुओं को निमन्त्रित कर भिक्षु-सघ से कहा: "मै (आप के लिये) विमान[3] के समान प्रासाद बनवाऊगा। किसी को दिव्य-विमान (के पास) भेजकर मुझे उसका चित्र (मँगवा) दें"। भिक्षु-सघ ने वहा आठ क्षीणाश्रव भेजे ॥८-१०॥

काश्यप[4] मुनि के समय, अशोक नाम के ब्राह्मण ने सघ को आठ शलाका भोजन[5] समर्पित कर, उसका प्रतिदिन देना बीरणी नामक दासी के सुपुर्द किया। यावज्जीवन श्रद्धापूर्वक शलाक-भोजन देती रह कर (वह) मरने पर आकाश-स्थित सुन्दर विमान में पैदा हुई। एक हज़ार अप्सराये उसकी सेविका थीं ॥११-१३॥

---

[1] आधुनिक रुवनवैलि।

[2] हृदयोल्लास के समय निकली हुई वाणी।

[3] देवताओं का चलता-महल।

[4] गौतम (बुद्ध) से पूर्व के बुद्ध।

[5] देखो १५-२०५

उसका रत्न-प्रासाद बारह योजन ऊंचा और घेरे में अड़तालीस योजन था। एक हज़ार कूटागारों से मण्डित, नौ तलों वाला, एक हज़ार कमरों से युक्त, प्रसन्नता-दायक, चार द्वारों वाला, हज़ार शङ्खमालाओं से युक्त, आंखों (के समान) खिड़कियों से युक्त, छोटी छोटी घटियों युक्त जाल से सज्जित वेदिका सहित था ॥१४-१६॥ उस (प्रासाद) के बीच में सुन्दर अम्बलट्ठिक प्रासाद था; (जो कि) चारों ओर से दिखाई देता (और) लटकती हुई झण्डियों से युक्त था ॥१७॥

तावतिंस (=त्रयस् त्रिंश) लोक को जाते हुये स्थविरों ने उस (विमान) को देख, उस (विमान के चित्र) को गेरु के वस्त्र पर लिख, लौट आ (वह) पट्ट संघ को दिखाया। संघ ने वह पट्ट लेकर राजा के पास भेज दिया ॥१८-१९॥ उसे देख प्रसन्न-चित्त राजा ने उत्तम आराम में पहुँच, (उस) लेखानुसार उत्तम लोहप्रासाद बनवाया ॥२०॥

(प्रासाद की बनवाई के) काम के आरम्भ ही में, उस त्यागवान् राजा ने चारों द्वारों पर आठ आठ हजार स्वर्ण-मुद्रा, हजार हजार रेशमी वस्त्र, गुड़, तेल, शक्कर और मधु से भरे हुये अनेक मटके रखवा दिये। यहां 'कोई बिना मूल्य (मजदूरी) लिये काम न करे' कह कर किये काम की मज़दूरी का अन्दाज़ा लगवा कर, उसका मूल्य दिलवा दिया ॥२१-२३॥ वह चार दरवाज़ों वाला प्रासाद एक-एक ओर से सौ-सौ हाथ लम्बा था और ऊंचा भी उतना (सौ हाथ) ही था ॥२४॥ इस सुन्दर प्रासाद की नौ मंज़िलें थीं, और प्रत्येक मज़िल पर सौ-सौ कूटागार थे ॥२५॥

तमाम कूटागार चांदी से खचित थे, और उन (कूटागारों) की मूंगे की वेदिकायें नाना (प्रकार के) रत्नों से विभूषित थीं। उन (वेदिकाओं) के कमल नाना (प्रकार के) रत्नों से खचित (थे) और वे (वेदिकायें) चांदी की छोटी छोटी घण्टियों से घिरी थीं ॥२६-२७॥ उस प्रासाद में नाना रत्नों से खचित, खिड़कियों से सुशोभित एक हजार सुसस्कृत कमरे थे ॥२८॥

वैश्रवण[1] (देवता) के नारी-वाहन-यान के बारे में सुनकर उसने (प्रासाद के) बीच में उसी आकार का रत्न-मण्डप बनवाया ॥२९॥ यह (रत्न-मण्डप) सिंह, व्याघ्र आदि के रूपों और देवताओं के रूपों वाले रत्न-मय-स्तम्भों से विभूषित था। मण्डप के अन्त में चारों ओर से मोतियों के जाल से घिरी हुई पूर्वोक्त प्रकार की मूंगे की वेदिका थी। सात रत्नों से सजे हुये मण्डप के बीच

---

[1]देखो १०-८६।

में स्फटिक बिछा (हाथी-) दांत का सुन्दर सिंहासन (था)। (हाथी-) दांत की तरफ स्वर्ण-मय-सूर्य्य, चादी का चन्द्रमा (और) मोतियों के तारे (जड़े थे)। यथायोग्य स्थानों पर जहा तहा नाना (प्रकार के) रत्नों के कमल (लगे थे) और स्वर्ण-लताओं के बीच जातक-कथायें (भी) चित्रित थीं ॥३०-३४॥

अति-मनोहर सिंहासन के (बिछे हुये) अति मूल्यवान् आस्तरण पर (हाथी) दांत का सुन्दर पङ्खा था। फलक पर रक्खी हुई मूगे की खड़ाऊँ (और) पलंग पर रक्खा हुआ चादी के दण्ड-वाला श्वेत-छत्र शोभा देता था ॥३५-३६॥ सात रत्नों से सजे हुये आठ मङ्गल-चित्र[1] और मणि-मुक्ताओं के बीच पशुओं की पंक्ति (के चित्र) थे ॥३७॥ छत्र के सिरे से लटकती हुई चादी के घटों की पक्ती (थी)। प्रासाद, छत्र, पलग और मडप अनमोल थे ॥३८॥ उसने यथा-योग्य महामूल्यवान् पलग और पीढे बिछवाये, और इसी प्रकार महामूल्यवान् कम्बल और फर्श ॥३९॥ (जब) वहा कड़छी और हाथ-पाव धोने का पात्र सोने का था, तो फिर प्रासाद में काम आने वाले शेष पात्रों का कहना ही क्या ! ॥४०॥

सुन्दर चार-दीवारी से घिरा हुआ और चारों द्वार-कोट्ठकों से अलकृत प्रासाद त्रयस्त्रिंश (इन्द्रलोक) की सभा के समान सुशोभित था ॥४१॥ वह प्रासाद ताम्र जैसी लोहित (लाल) लोहे की ईंटों से छाया गया था। इससे उस (प्रासाद) का नाम 'लोह-प्रासाद' हुआ ॥४२॥

लोह-प्रासाद (का बनना) समाप्त होने पर राजा ने सघ को एकत्रित किया। मरिचवट्टी (विहार) की पूजा के समान सघ एकत्रित हुआ ॥४३॥ पृथक्जन भिक्षु प्रथमभूमि (=मजिल) पर, त्रिपिटकज्ञ दूसरीभूमि पर, स्रोतापन्नआदि[2] तीसरी (चौथी) आदि एक एक भूमि पर खड़े हुये। लेकिन अर्हत (सब से) ऊपर की चार भूमियों पर खड़े हुये ॥४४-४५॥

सघ को दक्षिणा के जल-सहित, प्रासाद दे चुकने पर राजा ने पूर्व की भाति एक सप्ताह तक महादान दिया ॥४६॥

महात्यागी राजा ने प्रासाद के लिये अनेक अमूल्य (वस्तुओं) के अतिरिक्त (और जो) दान किये, उनका मूल्य तीस करोड़ था ॥४७॥

---

[1] सिंह, वृषभ, हस्ति, जलपात्र आदि आठ माङ्गलिक वस्तुयें।

[2] सोतापन्न तीसरी पर, सकृदागामी चौथी पर, अनागामी पांचवीं भूमि पर।

जो प्रज्ञावान् पुरुष समझते हैं, कि इस निस्सार धन-संग्रह में दान (देना) ही विशेष सारयुक्त है, वे प्राणियों के लिये निस्पृह चित्त से विपुल दान देते हैं ॥४८॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'लाह-प्रासाद-पूजा नामक सप्त-विंश परिच्छेद।

अष्ट-विंश परिच्छेद

महास्तूप की साधन प्राप्ति

फिर राजा ने (एक) लाख खर्च करके बड़े उत्तम ढग से महाबोधि की पूजा कराई ॥१॥

तत्पश्चात् नगर मे प्रवेश करता हुआ राजा (भावी-) स्तूप के स्थान पर गड़े हुये शिलास्तम्भ को देख (और) पूर्व-कथा स्मरण कर "मैं महास्तूप बनवाऊ गा" सोच, प्रसन्न हुआ। फिर (प्रासाद की) छत पर चढ, भोजन कर चुकने पर लेटे हुये, उसने सोचा:—"दमिळों (द्रविडों) का मर्दन करते समय, मैंने लोगों को पीडा दी है, अब मै इनसे कर नही उगाह सकता; और कर लगाये बिना (यदि) मैं महास्तूप बनवाऊ तो (महास्तूप के लिये) ईंटे कहा से पैदा करू !" इस प्रकार सोचते हुये राजा के विचारो को छत्र (में निवास करने) वाले देवता ने जाना। इससे शोर मचा। शक्र (इन्द्र) देवता ने यह समाचार जान विश्वकर्मा से कहा:—"राजा गामणी चैत्य के लिये ईंटों की चिन्ता कर रहा है। तुम नगर से योजन (भर की दूरी) पर जा कर ईंटे बनाओ" । शक्र से ऐसा कहे जाने पर विश्वकर्मा ने यहा आकर उस स्थान पर ईंटें बनाई ॥२-८॥

प्रातः काल एक शिकारी कुत्तों के साथ बन मे गया। वहा उसे गोह के रूप में पृथ्वी-देवता दिखाई दिया। उस 'गोह' का पीछा करते हुये शिकारी ने जाकर ईंटे देखीं। उस स्थान पर 'गोह' के अन्तर्धान हो जाने से वह शिकारी सोचने लगा:—"राजा महास्तूप बनवाने का विचार कर रहा है। यहा उसकी सामग्री है"। यह बात उसने जाकर (राजा से) निवेदन की ॥९-११॥ उसके उस प्रिय-वचन को सुन, सन्तुष्ट हो, मनुष्यों का हित चाहने वाले राजा ने उस (शिकारी) का बड़ा सत्कार किया ॥१२॥

नगर से पूर्वोत्तर तीन योजन की दूरी पर, आचारपिट्ठिग्राम में सोलह करीष के फैलाव पर अनेक भिन्न भिन्न आकार के स्वर्ण-बीज उत्पन्न हुये। बड़े से बड़ा बीज बालिश्त भर और छोटे से छोटा बीज अगुल भर था। भूमि को स्वर्ण से भरा देख कर, उस गाँव के निवासियों ने, एक भरा स्वर्ण-पात्र ले जाकर (यह बात) राजा से निवेदन की ॥१३-१५॥

नगर से पूर्व की ओर, सात योजन की दूरी पर, गङ्गा (नदी) के पार तम्बपिट्ठ नगर में ताँबा उत्पन्न हुआ। उस गाव के निवासियों ने पात्र में तांबे के बीज ले, राजा के पास जाकर यह बात राजा से निवेदन की ॥१६-१७॥

नगर से पूर्व-दक्षिण दिशा में, चार योजन की दूरी पर सुमनवापी (नामक) गाव में बहुत सी मणिया उत्पन्न हुई। उस गाँव के निवासियों ने उन लाल जवाहर से मिली हुई मणियों का एक पात्र राजा के पास ले जा (यह समाचार) निवेदन किया ॥१८-१९॥

नगर से दक्षिण की ओर, आठ योजन की दूरी पर अम्बट्ठकोलगुफा[1] मे चाँदी पैदा हुई ॥२०॥

एक व्यापारी मलय से अदरक इत्यादि लाने के लिये बहुत सी गाड़ियाँ ले मलय गया। (मार्ग मे) गुफा से थोड़ी ही दूरी पर, गाड़िया ठहरा कर, वह कमची (= चाबुक) लाने के लिये पर्वत पर चढ़ा। वहाँ, पका होने से झुक कर एक पत्थर पर ठहरा, घड़े जितना बड़ा कटहल का फल देखा। छुरी-कुल्हाड़ी से उस फल की डाली काट, 'अग्र-दान दूँगा' सोच, उसने श्रद्धा पूर्वक (दान के समय की) घोषणा की। चार अनास्रव भिक्षु आगये। प्रसन्न-चित्त हो, उसने उन भिक्षुओं को प्रणाम करके आदर पूर्वक आसन दिया। फिर फल की डंडी के चारों ओर से छिलका उतार कर, नीचे से चक्का काट कर, गढ़ा-भर (देने वाले) रस मे से चारों पात्र भर कर उन (भिक्षुओं) को दिये ॥२१-२६॥

वह (भिक्षु) उन (पात्रों) को लेकर चले गये। उस (व्यापारी) ने (भोजन) काल की घोषणा की। अन्य चार क्षीणास्रव स्थविर वहाँ आये। उसने उनके पात्र कटहल के कोये से भर कर (उन्हें) दिये। तीन (क्षीणास्रव स्थविर) चले गये। एक नहीं गये ॥२७-२८॥

उस (व्यापारी) को चान्दी दिखाने के लिये वह (क्षीणास्रव स्थविर) वहा से (ऊपर) चढ कर, गुफा के समीप जा बैठे और (वहाँ) कोये खाये। उस व्यापारी ने भी यथेच्छ कोया खाकर, शेष गठरी मे बाँध, स्थविर का अनु-मान कर, स्थविर को देख प्रणाम किया। स्थविर ने गुफा के द्वार का मार्ग उसके लिये खुला छोड़ दिया और कहा 'हे उपासक, तू अब इस मार्ग से जा'। स्थविर को प्रणाम करके उस मार्ग से जाते हुये उसने गुफा देखी

[1] कुरुनैगल से उत्तर-पूर्व, अनुराधपुर से २२ मील आधुनिक 'रिदि-विहार'। । सिंहल भाषा में 'रिदि' शब्द का अर्थ है चांदी।

॥२१-३२॥ गुफा के द्वार पर ठहर, चाँदी देखकर उस (व्यापारी) ने कुल्हाड़ी से तोड़ कर निश्चय किया कि यह चाँदी है। फिर चाँदी का एक डला लेकर गाड़ियों के पास गया। गाड़िया रोक कर वह श्रेष्ठ व्यापारी चान्दी के डले ले शीघ्र ही अनुराधपुर आया; और राजा को चाँदी दिखा कर यह वृत्तान्त निवेदन किया ॥३३-३५॥

नगर से पाच योजन पश्चिम की ओर उरुवेल पत्तन[1] पर, साठ गाड़ी बड़े आवले के समान मूगों सहित मोती स्थल पर आये। केवटों ने उन मोतियों को एक स्थान पर इकट्ठा किया। फिर मूगों सहित मोतियों की (एक) भरी थाली राजा के पास ले गये और यह वृत्तान्त राजा से निवेदन किया ॥३६-३८॥

नगर से सात योजन की दूरी पर उत्तर की ओर पोलिवापिक[2] ग्राम के तालाब के समीप की गुफा के रेत पर, चक्की के समान, अलसी के फूल जैसी सुन्दर चमकीली, चार उत्तम मणिया उत्पन्न हुईं। ॥३९-४०॥

एक कुत्तों वाले शिकारी ने, उन्हें देख, 'मैंने ऐसी मणिया देखी हैं' आकर राजा से निवेदन किया ॥४१॥

महापुण्यवान् राजा ने एक ही दिन महास्तूप के लिये ईंटों और दूसरे रत्नादि का उत्पन्न होना सुना। उस उदारहृदय (राजा) ने (समाचार देने वाले) लोगों का यथा-योग्य सत्कार कर, (फिर) उन्हें ही रक्षक नियुक्त कर, वह सब चीज़ें मगवा लीं ॥४२-४३॥

असह्य शारिरिक पीड़ा सह कर भी, प्रसन्न चित्त से सञ्चय किया हुआ पुण्य सैंकड़ों सुख-कर साधनों को उत्पन्न करता है। इस लिये प्रसन्न चित्त होकर पुण्य करे ॥४४॥

सुजनों के प्रमाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'महास्तूप साधन लाभ' नामक अष्टाविंश परिच्छेद।

---

[1] अनुराधपुर से ४० मील कल-ओय (नदी) के पास।

[2] अनुराधपुर से ५० मील आधुनिक वबुनिक-कुलम्।

एकोनत्रिंश परिच्छेद

महास्तूप का आरम्भ

इस प्रकार तमाम सामग्री के एकत्र हो जाने पर वैशाख[1] मास की पूर्णिमा के दिन, वैशाख नक्षत्र प्राप्त होने पर (राजा ने) महास्तूप का कार्य्य आरम्भ किया ॥१॥ स्तूप का यूप (= खभा) मगवा कर, राजा ने स्तूप को सब प्रकार से दृढ करने के लिये, सात हाथ गहरा स्थान खुदवाया। अपने योधाओं से गोल पत्थर मगवा, हथौड़ों से टुकड़े टुकड़े करा कर, उस उचित और अनुचित के जानने वाले राजा ने भूमि को स्थिरता के लिये, उन टुकड़ों को हाथियों के पैर में चर्म बधवा हाथियों से रौंदवाया ॥२-४॥

आकाश-गङ्गा गिरने के स्थान के चारों ओर तीस योजन तक के सदैव-गीले स्थान का मिट्टी बहुत ही बढ़िया होने के कारण मक्खन-मिट्टी के नाम से प्रसिद्ध है। क्षीणास्त्रव श्रामणेर वहा से मिट्टी लाये ॥५-६॥

राजा ने पत्थर के चबूतरे पर मिट्टी बिछवाई, मिट्टी के ऊपर ईंटें; उनके ऊपर गारा, उसके ऊपर कुरुविन्द, उसके ऊपर लोहे का जाल, उसके ऊपर श्रामणेरों द्वारा हिमवन्त से लाया हुआ सुगन्धित मरुम्ब बिछवाया। उसके ऊपर भूमिपति ने स्फटिक बिछवाया; (और) स्फटिक (के रहे) पर शिलाओं को बिछवाया। मिट्टी की आवश्यकता पड़ने पर सब जगह मक्खन-मिट्टी ही काम मे लाई गई ॥७-१०॥

रथेश ने शिलाओं के ऊपर रसोदक में मिले हुये कैथ के गोंद से, आठ अङ्गुल मोटा (तांबे) लोहे का पत्र (बिछवाया)। उसके ऊपर तिल के तेल में मिले हुये मैनसिल की सहायता से सात अङ्गुल मोटा चान्दी का पत्र बिछवाया ॥११-१२॥

महास्तूप की स्थापना के स्थान पर, परिक्रमा करके प्रसन्न-चित्त राजा ने आषाढ़-शुक्ल चतुर्दशी के दिन भिक्षुसघ इकट्ठा कर निवेदन किया:—
"भदन्तो! कल मैं महाचैत्य की स्थापना की मङ्गल-ईंट (= आधार-शिला)

---

[1] देखो १-१२।

रक्खूंगा, (इस लिये) बुद्ध-पूजा के निमित्त कल यहां सारा संघ इकट्ठा हो। महाजनों का हित चाहने वाले महाजन लोग उपोसथ-वेष में गन्ध-माला आदि ले महास्तूप की स्थापना के स्थान पर आवें"। (फिर) चैत्य के स्थान को सजाने के लिये अमात्यों[१] को नियुक्त किया। मुनि (बुद्ध) के लिये प्रेम और गौरव रखने वाले अमात्यों ने राजा से आज्ञा पाकर, उस स्थान को अनेक प्रकार से अलंकृत किया ॥१३-१८॥

राजा ने तमाम नगर और यहाँ (स्तूप-स्थान) आने का मार्ग अनेक प्रकार से सजवाया। प्रातःकाल नगर के चारों दरवाज़ों पर न्हलाने के लिये बहुत से न्हलाने वाले और नाई बिठवाये। जनता के हित-चिन्तक (राजा) ने जनता के लिये वस्त्र, गन्धमाला और मधुर भोजन (चारों दरवाज़ों पर) रखवाये। इन रखी हुई चीजों में से यथारुचि लेकर नागरिक और ग्रामवासी स्तूप के स्थान पर आ पहुँचे ॥१९-२२॥

अपने अपने पद के अनुसार (खड़े हुये) अपनी अपनी पदवी के अनुकूल (वस्त्रों से) सजे हुये अनेक अमात्यों से सुरक्षित, देवकन्याओं के समान (सुन्दर) अनेक नटियों से घिरा हुआ, दरबारी पोशाक पहने हुये, चालीस हज़ार आदमियों से घिरा हुआ, तुरिय (बाजों) की ध्वनि के बीच, देवराज (इन्द्र)-तुल्य, योग्य अयोग्य स्थान के पहचानने वाला, राजा लोगों को प्रसन्न करता हुआ, तीसरे पहर महास्तूप की स्थापना के स्थान पर पहुंचा ॥२३-२६॥

राजा ने बीच में कपड़ो के एक हजार आठ बंडल रखवाये, और फिर उनके चारों ओर अनेक वस्त्रों के ढेर लगवा कर, उत्सव के लिये मधु, घी और गुड़ इत्यादि (चीज़ें) रखवाईं ॥२७-२८॥

इस (लङ्का) द्वीप के भिक्षु-संघ के आने के बारे में कहना ही क्या है, अनेक देशों से बहुत से भिक्षु उस समय यहां आये ॥२९॥ राजगृह[२] के समीप से महागणनायक इन्द्गुप्त स्थविर अस्सी हजार भिक्षुओं को लेकर आये और ऋषि-पत्तन[३] (इसि-पत्तन) से धम्मसेन महास्थविर बारह हजार भिक्षुओं को लेकर चैत्य (स्थापना) के स्थान पर आये। जेतवनाराम[४] विहार

---

[१] विसाखा और श्रीदेव नामक अमात्य। म० टी०।

[२] देखो २-६।

[३] सारनाथ (ज़िला बनारस)

[४] देखो १-४४।

से प्रियदर्शी स्थविर साठ हजार भिक्षुओं को लेकर और वेशाली[1] (के) महावनाराम से उरूबुद्ध-रक्षित स्थविर, अट्ठारह हजार भिक्षुओं को लेकर यहा आये ॥३०-३३॥ कौशाम्बी[2] (स्थित) घोषिताराम से उरुधम्म-रक्खित स्थविर तीस हजार भिक्षु लेकर यहा आये ॥३४॥ संघ-रक्षित स्थविर उज्जयिनी[3] स्थित दक्षिण-गिरि विहार से चालीस हजार भिक्षु लेकर आये ॥ मितिएण नाम के स्थविर पुष्पपुर[4] (पटना) अशोकाराम से एक लाख साठ हजार भिक्षु लेकर (यहा आये) ॥३५-३६॥ काश्मीर मण्डल से दो लाख अस्सी हजार भिक्षुओं को लेकर उतिएण स्थविर; पल्लव[5] के राज्य से चार लाख अड़सठ हजार भिक्षुओं को लेकर महामति (स्थविर) यवनों के अलसन्दा[6] (नामक) नगर से तीस हजार भिक्षुओं के साथ योनमहाधम्म-रक्खित (स्थविर) आये ॥३७-३९॥ विन्ध्या-वन[7] के रास्ते से (होकर) अपने निवासस्थान से उत्तर (स्थविर) साठ हजार भिक्षु लेकर यहा आये ॥४०॥ बोधि मण्ड[8] विहार से चित्तगुत्त (स्थविर) तीस हजार भिक्षुओं के साथ आये ॥४१॥ बनवास[9] प्रदेश से चन्दगुत्त महास्थविर अस्सी हजार-भिक्षु साथ लेकर आये ॥४२॥ केलास से सुरियगुत्त महास्थविर छियानवे हजार भिक्षुओ को साथ लेकर आये ॥४४॥

इस समय पर इकट्ठे हुये (लंका) द्वीप वासी भिक्षुओ की गणना पूर्वजों ने नहीं कही। उस समागम मे आये हुये सब भिक्षुओं में से छियानवे करोड़ (तो) क्षीणाश्रव (भिक्षु) ही थे ॥४५॥

वह भिक्षु यथाक्रम महाचैत्य (की स्थापना) के स्थान को चारो और से घेर, बीच मे राजा के लिये जगह छोड़ खड़े हो गये ॥४६॥ राजा ने यहा प्रविष्ट हो, भिक्षु संघ को इस प्रकार (खड़े) देख, प्रसन्न-चित्त से प्रणाम किया।

---

[1] देखो ४-६
[2] देखो ४-१७
[3] देखो ५-३६
[4] देखो ६-३०।
[5] फारस। संस्कृत पहलव।
[6] अलेक्जैन्ड्रिया।
[7] देखो १९-६
[8] बोध-गया में बना हुआ एक विहार।
[9] देखो १२-३१

(फिर) गन्ध और मालाओं से (भिक्षुओं का) सत्कार कर, और तीन बार (उनकी) प्रदक्षिणा कर, बीच में माङ्गलिक पूर्ण-घट के स्थान पर पहुँचा। महान् चैत्य बनाने की इच्छा से, शुद्ध प्रेम-बल से प्रेरित, सर्व प्राणियों के हित में रत (राजा) ने शुद्ध, चान्दी-निर्मित, सोने की मेख से बन्धा हुआ परिभ्रमण-दण्ड (अपने) श्रेष्ठ कुलोत्पन्न, (सुन्दर।वस्त्रों से) अलङ्कृत, माङ्गलिक अमात्य के हाथों तैयार भूमि पर घुमवाना आरम्भ किया ॥४७-५१॥

दीर्घदर्शी, महासिद्ध सिद्धत्थ महास्थविर ने राजा को ऐसा करने से रोक दिया ॥५२॥ 'यदि यह राजा इतना बड़ा स्तूप (बनवाना) आरम्भ करेगा, तो स्तूप की समाप्ति से पूर्व ही इस की मृत्यु हो जायगी, (और) इतने बड़े स्तूप की मरम्मत करानी भी कठिन होगी'—सोच कर दीर्घदर्शी स्थविर ने (स्तूप की) महानता को रोक दिया ॥५३-५४॥

महान् स्तूप बनवाने की इच्छा रहने पर भी राजा ने स्थविर के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिये, और सब को आशा होने से स्थविर की बात स्वीकार कर ली ; और स्थविर के आदेशानुसार मध्यम आकार के चैत्य की बुनियादी ईंट बनवाई ॥५५-५६॥

उत्साही (राजा) ने आठ सोने और आठ चादी के घड़े बीच में रखवा कर, उनके गिर्द एक हजार आठ नये घड़े रखवाये। (उन के गिर्द) एक सौ आठ आठ वस्त्र भी रखवाये ॥५७ ५८॥ आठ सुन्दर ईंटे अलग २ रखवाईं। फिर उन में से एक ईंट लेकर अनेक प्रकार से अलङ्कृत, मान्य अमात्य के हाथों नाना प्रकार के माङ्गलिक संस्कारों से सुसंस्कृत, पूर्व-दिशा भाग में, मनोज्ञ सुगन्धित गारे पर, पहली माङ्गलिक ईंट रखवाई। तब उस स्थान पर जूही के फूलों के चढ़ाने के समय पृथिवी कांपी ॥५६-६१॥ शेष सात भी (इसी प्रकार) सात अमात्यों से स्थापित करवाईं और माङ्गलिक संस्कार करवाये ॥६२॥ इस प्रकार आषाढ मास के शुक्लपक्ष में उपोसथ-दिन पूर्णिमा को (बुनियादी) ईंटों की स्थापना हुई ॥६३॥

चारों दिशाओं में खड़े हुये अनास्रव महास्थविरों का, पूजा और वन्दना द्वारा क्रम से सत्कार कर (राजा) पूर्वोत्तर दिशा में अनाश्रव प्रियदर्शी महा-स्थविर के पास जाकर ठहरा ॥६४-६५॥ स्थविर ने मङ्गल-वृद्धि करते हुए, राजा को धर्मोपदेश दिया। महास्थविर का (यह) धर्मोपदेश लोगों के लिये उपकारी हुआ ॥६६॥ (उस समय) चालीस हज़ार मनुष्यों को धर्मावबोध हुआ। चालीस हज़ार को स्रोतापत्ति फल की प्राप्ति हुई। एक हज़ार को

'सकृदागामी' फल और एक हज़ार को 'अनागामी' फल की प्राप्ति हुई। उस समय एक हज़ार गृहस्थों को अर्हत् फल की (भी) प्राप्ति हुई ॥६७-६८॥

अट्ठारह हज़ार भिक्षु और चौदह हज़ार भिक्षुणियां भी अर्हत्-भाव को प्राप्त हुई ॥६६॥

इस प्रकार त्रिरत्न में प्रसन्न-चित्त (पुरुष) यह समझकर कि त्याग भाव से जनता का हित करने से लोक में परमार्थ की सिद्धि होती है, श्रद्धा इत्यादि अनेक गुणों की प्राप्ति मे रत होवे ॥७०॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये कृत महावंश का 'महास्तूपारम्भ' नामक एकोनत्रिश परिच्छेद।

त्रिंश-परिच्छेद

धातु-गर्भ की रचना

महाराज ने तमाम संघ को प्रणाम कर, "चैत्य के समाप्त होने तक मेरे यहाँ से भिक्षा ग्रहण कीजिये" कह कर निमन्त्रण दिया ॥१॥ संघ ने उस (निमन्त्रण) को स्वीकार नहीं किया। राजा ने क्रमशः (निमन्त्रण की सीमा कम करते हुये) एक सप्ताह (तक) भिक्षा ग्रहण करने की याचना की। आधे भिक्षुओं ने एक सप्ताह का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन्हें (भिक्षुओं को) प्राप्त कर, प्रसन्न-चित्त राजा ने स्तूप के स्थान के चारों ओर अट्ठारह-स्थानों पर (अट्ठारह) मण्डप बनवा, संघ का सप्ताह-पर्य्यन्त महादान दिया। फिर संघ को विदा किया ॥२-४॥

उसके बाद (उसी समय) मुनादी द्वारा राज बुलवाये। पाँच सौ राज (इकट्ठे) हुये ॥५॥ राजा ने पूछा, "(चैत्य) कैसे बनाओगे?" राज ने कहा:— "सौ मजदूर मिलने पर, एक गाड़ी रेत एक दिन में खपा दूँगा"। राजा ने उस (राज) को हटा दिया; तब (दूसरे राजों ने) आधे, उस से भी आधे, (यहाँ तक कि) दो अम्मण[1] रेत (से कार्य्य करने की बात) कही। राजा ने वह चारों (राज) भी हटा दिये। एक चतुर, दक्ष राज ने राजा से कहा:—"मैं रेत को ऊखल में कुटवाकर, छलनी में छनवा कर, (फिर) चक्की में पिसवाकर, (केवल) एक अम्मण काम में लाऊँगा"। ऐसा कहने पर, उस इन्द्र के समान पराक्रम वाले राजा ने, "यहाँ हमारे चैत्य में तृण आदि (उत्पन्न) नहीं होंगे" सोच कर (चैत्य बनाने की) आज्ञा दे दी ॥६-१०॥

फिर पूछा "तू चैत्य किस प्रकार का बनायेगा?" उसी क्षण विश्वकर्मा (देवता) ने उस (राज) पर आवेश कर लिया। राज ने पानी से भरी हुई सोने की थाली (में से) हाथ में पानी लेकर पानी पर फेंका। माणिक्य के गोले के समान एक बड़ा बुलबुला उत्पन्न हुआ। राज ने (बुलबुले की ओर संकेत करते हुये) कहा, "ऐसा बनाऊँगा"। राजा ने प्रसन्न हो उसे हज़ार (मुद्रा) के मूल्य का कपड़ों का जोड़ा, एक अलंकृत पादुका और बारह हज़ार कार्षापण दिये ॥११-१४॥

---

[1] ग्यारह द्रोण; १ द्रोण ६४ मुट्ठियों के बराबर (अभिधानप्पदीपिका)।

रात होने पर, राज को सोच हुई, 'मनुष्यों को कष्ट दिये बिना, ईंटें कैसे ढोवाई जायेगी ?' ॥ देवताओं ने (राजा की) इस (चिन्ता) को जानकर, चैत्य के चारों द्वारों पर हर रात्रि को एक-एक दिन के लिये पर्य्याप्त ईंटें ला रक्खीं ॥१५-१६॥

इसे सुन सन्तुष्ट-चित्त राजा ने चैत्य (बनवाने) का कार्य्य आरम्भ किया, और घोषणा कर दी, 'यहा मजदूरी (दिये) बिना काम न कराया जाये' ॥१७॥

राजा ने एक एक द्वार पर सोलह लाख कार्षापण, बहुत से वस्त्र, अनेक प्रकार के गहने, खाद्य, भोज्य और पेय पदार्थ, गन्ध, माला, गुड़ आदि, मुख की सुगन्धि के (लिये) पाच पदार्थ (रखवाये) और (आज्ञा दी), "कार्य्य-कर्ता यथारुचि (= यथा सामर्थ्य) काम कर चुकने पर, उनमे से यथारुचि चीज़े ले लें"। राज्य-कर्मचारियों ने वही (काम के) अनुसार उन (मज़दूरों) को वह (पदार्थ) दिये ॥१८-२०॥

स्तूप-कर्म मे सहायता करने की इच्छा से एक भिक्षु ने अपना ही बनाया हुआ मिट्टी का पिण्ड (ईंट) ले, चैत्य-स्थान के समीप जाकर, राज-कर्मचारियों की आँख बचा राज को दे दिया। ईंट (पिण्ड) के (भिन्न) आकार से राज ईंट ग्रहण करते ही जान गया। (इस से) उसे आश्चर्य्य हुआ। क्रम से राजा ने सुन, वहा आकर राज से पूछा। राज ने उत्तर दिया 'हे देव! भिक्षु एक हाथ में पुष्प और दूसरे हाथ मे मिट्टी के डले लाकर मुझे देते हैं। मैं इतना ही जानता हूँ कि यह (भिक्षु) आगन्तुक है, यह भिक्षु (यहीं का) निवासी है'। यह सुन कर राजा ने राज को मृत्तिका-पिण्ड देने वाला भिक्षु दिखा देने के लिये एक चौकीदार दिया। उस (राज) ने चौकीदार को वह (भिक्षु) दिखा दिया। चौकीदार ने राजा से निवेदन किया ॥२१-२६॥

राजा ने वहा महाबोधि (-वृक्ष) के आगन मे रक्खे हुये फूलों (और) तीन घड़ों को चौकीदार द्वारा उठवा कर भिक्षु को दिलवा दिया[1] ॥२७॥ (फूलों के विषय मे) न जानते हुये भिक्षु ने (उन फूलों से) पूजा की। चौकीदार ने भिक्षु से (फूल देने का कारण) निवेदन किया। तब भिक्षु को ज्ञात हुआ ॥२८॥

कोट्ठि-वाल जनपद स्थित पियङ्गल्ल (-ग्राम) निवासी स्थविर, जिसका (चैत्य बनाने वाले) राज से कुछ जाति-सम्बन्ध था, चैत्य-कर्म मे सहायक होने की इच्छा से यहा आया और वहा ईंट का प्रमाण जान, उसी आकार की

[1] भिक्षु ने स्तूप के निर्माण में जो सहायता की, उसकी मज़दूरी दिलवाई।

ईंट बनवा कर, मज़दूरों को धोका दे, वह (ईंट) राज को दे दी। उस राज ने वह (ईंट) वहा (चैत्य मे) चुन दी। इस पर कोलाहल हुआ ॥२६ ३१॥

राजा ने (कोलाहल) सुनकर, राज से पूछा, 'तुम उस (ईंट) को पहचान सकते हो'। जानते हुये भी राज ने राजा से 'नहीं पहचान सकता' कह दिया ॥३२॥ 'तू उस स्थविर को पहचानता है?' पूछे जाने पर, उसने कहा "हां"। राजा ने उस (स्थविर) की पहचान करा देने के लिये राज को एक चौकीदार दिया। चौकीदार राज की सहायता से स्थविर की पहचान करके राजाज्ञा से कट्ठहाल परिवेण पहुँचा। वहा स्थविर से मिल बात चीत द्वारा स्थविर के जाने का दिन और स्थान मालूम कर, "मैं भी आपके साथ ही अपने गाव जाऊगा" कह कर राजा को सब समाचार से विदित किया। राज ने उस (चौकीदार) को हजार (मुद्रा) के मूल्य का एक वस्त्र-जोड़ा, एक लाल रग का मूल्यवान् कम्बल, श्रमणों के बहुत सारे परिष्कार, शक्कर और सुगन्धित तेल की नाली[1] दिलवा कर, आज्ञा की ॥३३-३७॥

स्थविर के साथ जाते हुये, उस चौकीदार ने पियगल्लक के दीखने लग जाने पर जल सहित शीतल छाया मे स्थविर को बिठा (पीने के लिये) शरबत (शक्कर-पान) दे, पाव मे तेल मालिश (मल) जूते पहनाये। (फिर) परिष्कार लाकर सामने रक्खे और कहा: -"पुत्र के लिये दो वस्त्रों के अतिरिक्त, बाकी सब वस्त्र मैंने कुल-स्थविर के लिये साथ लिये हैं, अब यह सब परिष्कार (आप को) देता हूं" कह कर उसने वह परिष्कार स्थविर को दे दिये। परिष्कार देकर विदा होते स्थविर को प्रणाम करने के समय, उस चौकीदार ने राजाज्ञा से राजा का सदेश कहा ॥३८-४१॥ चैत्य के बनाने के समय मजदूरी लेकर काम करने वाले अगणित मनुष्य, प्रसन्न हो, सुगति का प्राप्त हुये ॥४२॥ बुद्धिमान (पुरुष) यह जानकर कि सुगत (बुद्ध) में चित्त प्रसाद-मात्र की उत्पत्ति से भी उत्तमगति प्राप्त होती है, चैत्य की पूजा करे ॥४३॥

इसी (चैत्य के) स्थान पर मज़दूरी (लेकर) काम करने वाली दो स्त्रिया महास्तूप की समाप्ति पर तावतिंस (त्रयस्-) त्रिंश इन्द्र के लोक में उत्पन्न हुईं। अपने पूर्व-कर्म पर विचार कर उन्होंने पूर्व-कर्म के फल को देखा, और गन्ध मालादि लेकर स्तूप की पूजा को आईं। गन्ध मालादि से चैत्य की पूजाकर

[1] माप विशेष।

उन्होंने चैत्य को प्रणाम किया। उसी समय भातिवङ्क निवासी महासिव (नामक) स्थविर, रात्रि के समय चैत्य की वन्दना करने के विचार से (वहा) आये। उन (स्त्रियों) को देखकर महाशातपर्ण (वृक्ष) के आश्रित (खड़े हुये) स्थविर ने अपने आप को छिपाये रखकर उन स्त्रियों की अद्भुत (रूप) सम्पत्ति को देखा। उन (स्त्रियों) की चैत्य-वन्दना की समाप्ति तक खड़े रहकर बाद में पूछाः "तुम्हारे शरीर के प्रकाश से तमाम (लङ्का) द्वीप प्रकाशित है। ऐसा कौन सा (पुण्य-) कर्म है, जिसके करने से तुम देव लोक को प्राप्त हुई ?" देवता ने उस (स्थविर) को, उन (स्त्रियो) का महास्तूप सम्बन्धी कृत्य कहा। इस प्रकार तथागत मे प्रसन्न-चित्त होने का ही यह महा-फल है ॥४४-५०॥

ऋद्धिमान् (स्थविरों) ने चैत्य मे ईंटों से बने हुये तीनों पुष्पाधानों (फूलदानों) को जमीन में उतार दिया। वह पुष्पाधान (सप्ताह में) ज़मीन के समान हो गये। इसी प्रकार उन्हों ने चैत्य के पुष्पाधानो को नौबार ज़मीन के समान कर दिया। (यह देख) राजा ने भिक्षु-सघ का सम्मेलन कराया। उस (सम्मेलन) में अस्सी हज़ार भिक्षु इकट्ठे हुये। राजा ने सघ के पास पहुँच अभिवादन और सत्कार करके सघ से (चैत्य की) ईंटों के धस जाने का कारण पूछा। सघ ने उत्तर दिया, "महाराज ऋद्धिमान् भिक्षुओं ने स्तूप को (बाद में स्वय) जमीन मे न धसने देने के लिये ऐसा किया है, अब (वे) न करेंगे। (दिल मे) अन्य कुछ न (समझ कर) आप महास्तूप को समाप्त करें" ॥५१-५५॥

उसे सुन कर प्रसन्न-चित्त राजा ने स्तूप का कार्य्य कराया। दस पुष्पाधानो के बनवाने में दस करोड़ ईंटे (लगीं)। भिक्षु-सघ ने उत्तर और सुमन नाम के दो श्रामणेरो को चैत्य-धातु-गर्भ के निमित्त, चर्बी के रग के पत्थर लाने के लिये भेजा। वह श्रामणेर उत्तर-कुरु[1] पहुँचे (और) अस्सी रत्न लम्बे चौड़े, सूर्य्य के समान प्रकाशित पत्थर से, ग्रन्थि-पुष्प के समान चमकदार आठ आठ अगुल के छः 'चर्बी के रग' के पत्थर ले आये ॥५६-५६॥

एक पत्थर पुष्पाधान के (ठीक) ऊपर बीच मे रख कर और चारों ओर चार पत्थर एक सन्दूकची के ढग पर रखकर महाऋद्धिमान् स्थविरो ने (शेष) एक पत्थर ढकन के लिये पूर्वदिशा में छिपा रखा ॥६०-६१॥

---

[1]देखो १-१८

राजा ने उस धातु-गर्भ के बीच में सब प्रकार से मनोरम रत्नमय बोधि-वृक्ष बनवाया। (बोधिवृक्ष) स्कन्ध अट्ठारह रत्न (ऊंचा) था और (इसकी) पाँच शाखायें थीं। इसकी जड मूगे की बनी हुई थीं (और) इन्द्रनील मणि पर प्रतिष्ठित थी। शुद्ध चाँदी से निर्मित, मणि की पत्तियों से सुशोभित स्कन्ध, पीतवर्ण सुनहरी पत्तियों तथा फलों के सहित, मूगे के अङ्कुरों से युक्त था ॥६२-६४॥ इस स्कन्ध पर आठ माङ्गलिक-चिन्ह[1], पुष्पलता, चतुष्पदों की पंक्ति और हंसों की भी सुन्दर पंक्ति थी। ऊपर सायबान के चारों सिरो पर जहा तहा मोतियों की छोटी छोटी घंटियों की जाली, सुनहरी घंटियों की मालाओं की पंक्तियां (थीं) और सायबान के चारों कोनों पर नौ नौ लाख के मूल्य के मोतियों की मालाओं के गुच्छे लटक रहे थे ॥६५-६७॥

रत्न-निर्मित सूर्य्य, चाँद, तारे और अनेक प्रकार के कमलों के चित्र भी वितान (=सायबान) मे जड़े हुये थे। विविध प्रकार के एक हज़ार आठ, भिन्न भिन्न रंगों के बहुमूल्य वस्त्र उस 'सायबान' मे लटक रहे थे ॥६८-६९॥ बोधि-वृक्ष के चारों ओर नाना प्रकार के रत्नों की वेदिका, प्राकार के अन्दर महामलक मोतियो का समथल और बोधि की जड मे चार प्रकार के सुगन्धित जल से (कुछ) भरे और (कुछ) ख़ाली रत्न-निर्मित घडे रखवाये ॥७०-७१॥

(राजा ने) बोधि (वृक्ष) मे पूर्व की ओर बिछे हुये, एक करोड के मूल्य के सिंहासन पर सोने की बनी चमकती हुई, बुद्ध-मूर्ति स्थापित कराई। उस मूर्ति के भिन्न भिन्न अङ्ग यथा-योग्य नाना प्रकार के सुन्दर रत्नों से बने हुये थे ॥७२-७३॥

चाँदी का छत्र लिये हुये ब्रह्मा, विजयुत्तर सङ्ख सहित अभिषेक (करने वाले) इन्द्र, हाथ मे वीणा लिये पञ्चसिख, नटियों के सहित कालनाग, और अपने नौकरों और हाथी के साथ हज़ार हाथों वाला मार (उस समय) वहाँ खड़ा था ॥७४-७५॥

पूर्व-दिशा में स्थित आसन के सदृश शेष सात दिशाओं में भी एक एक करोड़ के मूल्य के आसन (स्थापित कराये गये) थे। ऐसे ढग से जिसमें बोधि (-वृक्ष) सर्वोपरि रहे, एक करोड़ मूल्य की एक रत्न जड़ित शय्या भी बिछाई

[1] देखो २७-३७।

गई थी ॥७६-७७॥ श्रद्धावान् राजा ने सात सप्ताहों[1] मे (घटी हुई) **घटनायें** यथायोग्य स्थानो पर जहा तहा (नाटक के ढग पर) कराई । **ब्रह्मयाचना भी कराई गई।** धर्म चक्र प्रवर्तन, **यश** की प्रव्रज्या[1], भद्रवर्गियो की **प्रव्रज्या,** जटिलो का सुधार, (राजा) **बिम्बिसार** के पास आना, **राजगृह में प्रवेश** करना, **वेणुवन** का ग्रहण, अस्सी श्रावक सहित **कपिलवस्तु** गमन और वहा रत्न-चक्रमण (-प्रातिहार्य का दिखाना), **राहुल** और **नन्द** की प्रव्रज्या, **जेतवन** का ग्रहण, अम्ब-वृक्ष के मूल मे प्रातिहार्य, **त्रयस्-त्रिंश लोक** मे धर्मोपदेश, देवताओं के उतरने का प्रातिहर्य, तथा स्थविरो के प्रश्नो से भेट,[2] महासमय सुत्त[3] राहुल (को दिया गया) उपदेश, महामङ्गल सुत्त[4], **धनपाल** (हाथी) से भेट, **आलवक** (यक्ष), **अङ्गुलिमाल** (डाकू) और **अपलाल** (नाग-राज) का दमन, पारायनक (ब्राह्मणों) से भेट, जीवन-त्याग, सूकर-मद्दव का ग्रहण, दो सुनहरे (वस्त्रों) का ग्रहण, पवित्र-जल का पान, **महापरिनिर्वाण,** देवताओं और मनुष्यों का विलाप, (काश्यप) स्थविर की चरणवन्दना, (अग्नि-) दहन क्रिया, निर्वाण, पूजा, द्रोण (ब्राह्मण) द्वारा बुद्ध-धातु (=भगवान् के शरीर की अस्थियां) का बाटा जाना, और बहुत सी श्रद्धोत्पादक जातक **कथायें** करवाई ॥७८-८७॥ वेस्सन्तर जातक तो अधिक विस्तार से करवाई और इसी प्रकार **'तुषित-लोक'** से आरम्भ कर **बोधिमण्डप** तक (की लीला) ॥८८॥

(तुषित लोक) के चारों ओर चारों महाराजा[6], तैंतीस **देवपुत्र** और बत्तीस (देव-) कन्यायें, अट्ठाईस यक्ष सेनापति, जिन के ऊपर हाथ उठाये हुये देवता, पुष्पों से भरे हुये घड़े, नाचने वाले देवता, तुरिय (बाजा) बजाने वाले देवता, हाथो में आईने-वाले देवता, पुष्प और शाखाये (धारण किये हुये) देवता, कमल इत्यादि लिये हुये देवता, और भी अनेक प्रकार के देवता, रत्न-मालाओं की पक्तिया, धर्म्म-चक्रों की पक्तिया, खड्गधारी देवताओं की पक्ति, और पात्र धारी देवताओं की पक्ति (चित्रित) थीं ॥८६-६२॥

---

[1]बुद्धत्व प्राप्ति के बाद सात सप्ताह तक भगवान् बोधि-वृक्ष और उसके आस पास रहे ।

[2]भगवान् के जीवन की भिन्न २ घटनायें ।

[3]दीघनिकाय का बीसवां सुत्त ।

[4]सुत्त-निपात का सोलहवाँ सुत्त ।

[5]देखो वेस्सन्तर जातक (५३८) ।

[6]देखो १-३२ ।

उनके ऊपर पांच पाच हाथ ऊंचे सुगन्धित तेल से भरे पात्र थे, जिनमें दुकूल की बत्ती सदैव जलती रहती थी। स्फटिक मणि की एक महराब के चारों कोनों में एक एक महामणि और चार कोनो में स्वर्ण, मणि, मोती और हीरों के चार चमकदार ढेर लगे थे। चर्बी के रग के पत्थरों की दीवारों पर धातु-गर्भ (भीतर के कमरे) को सजाने वाली श्वेत बिजली की भांति टेढी मेढी लकीरें खिची थीं। राजा ने इस सुन्दर धातुगर्भ में ठोस सोने की सभी प्रकार की मूर्तियाँ बनवाई ॥९३ ९७॥

महामतिमान्, षडभिज्ञ इन्द गुप्त स्थविर ने कर्माधिष्ठाता होकर यह सब कार्य्य, इस प्रकार सम्यक् रीति से करवाया ॥९८॥ यह सब कार्य्य राजा, देवताओं और आर्य्य (पुरुषों) के ऋद्धि-बल से बाधा रहित समाप्त हो गया ॥९९॥

पूज्य, लोकुत्तर, अन्धकार रहित जीवमान् तथागत की पूजा कर तथा जनहित के लिए फैलाई गई उनकी धातु की पूजा कर श्रद्धागुण से युक्त बुद्धिमान पुरुष यह समझ कर कि उनकी (शरीर) धातु की पूजा का तथा उन की पूजा का पुण्य एक समान है, जीवित सुगत की भान्ति उनकी धातु की सम्यक् पूजा करे ॥१००॥

सुजनों के प्रमाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'धातु-गर्भरचना' नामक त्रिंश परिच्छेद।

— —

एकत्रिंश परिच्छेद

धातु-निधान

धातु-गर्भ[1] सम्बन्धी कृत्यों की समाप्ति पर शत्रुओं को दमन करने वाले (राजा) ने संघ को इकट्ठा कराकर इस प्रकार निवेदन किया। "भन्ते ! मैंने धातु-गर्भ सम्बन्धी कृत्य तो समाप्त करा दिये, अब कल धातु-निधान (स्थापन) कराऊंगा। धातुओं (के प्राप्त करने) के बारे में आप जानें" ॥१-२।

यह कह कर महाराज ने नगर में प्रवेश किया (और) भिक्षु संघ ने धातु लाने के योग्य भिक्षु के सम्बन्ध मे विचार किया। (उन्होंने) पूजा परिवेण-निवासी षडभिज्ञ सोनुत्तर नामक यति को धातु लाने के कार्य्य मे नियुक्त किया ॥३-४॥

नाथ (बुद्ध) के लोक हितार्थ विचरने की अवस्था में, नन्दुत्तर नाम के (विद्यार्थी) ने भगवान् बुद्ध को संघ सहित गङ्गा तट पर निमन्त्रित कर भोजन करवाया। संघ-सहित शास्ता (बुद्ध) प्रयाग[2] के घाट पर नाव पर चढे ॥५-६॥

उस समय महाऋद्धिमान् षडभिज्ञ भद्दजी स्थविर ने जल मे भंवर पड़ते स्थान को देख कर भिक्षुओं से कहा, "महापनाद (राजा) के नाम से मैं (पूर्व जन्म में) जिस महल में रहा था, वह पच्चीस योजन का स्वर्णमय महल यहा गिरा है। इस स्थान पर पहुँच कर गङ्गा-जल भवर में पड़ जाता है"। भिक्षुओं ने उसका विश्वास न कर यह बात शास्ता (बुद्ध) से निवेदन की ॥७-६॥ शास्ता ने कहा "भिक्षुओं की शङ्का निवारण करो"। उस (भद्दजी स्थविर) ने ब्रह्मलोक मे भी अपने बल की सामर्थ्य प्रगट करने के लिये ऋद्धि (बल) से आकाश मे जाकर, (वहाँ) सात ताड़ ऊपर ठहर, ब्रह्मलोक-स्थित दुस्सस्तूप अपने बढाये हुये हाथ पर रखकर यहा (भूमि-लोक मे) लाकर मनुष्यों को दिखाया। फिर उसको वहीं (ले जाकर) यथास्थान रख

[1] स्तूप के अन्दर धातु (अस्थि) रखने का 'चहबच्चा'।
[2] गंगा और यमुना के संगम का स्थान, वर्तमान इलाहाबाद।

वह स्थविर ऋषि-बल से गङ्गा मे उतरे। वहा पाव के अगूठे से महल का कलश पकड़, (महल का) ऊचा उठा, मनुष्यों को दिखाकर, फिर उसे वहीं (उन्होंने) फेंक दिया ॥१०-१३॥

विद्यार्थी नन्दुत्तर ने उस प्रातिहार्य (चमत्कार) को देख कर इच्छा की, "मैं स्वय दूसरों के आधीन धातु लाने मे समर्थ होऊ"। इसी लिये (केवल) सोलह वर्ष की आयु रहने पर भी सघ ने सोणुत्तर यति को (ही) इस (धातु लाने के) काम मे नियुक्त किया ॥१४-१५॥

उस ने सघ से पूछा, "धातु कहा से लाऊ ?" सघ ने उस स्थविर को उन धातुओं के बारे मे कहा, "परिनिर्वाण-शय्या पर पड़े हुये लोक-नायक (बुद्ध) ने अपने (शरीर) धातु से भी लोक-हित करने के लिये देवेन्द्र से कहा: — हे देवेन्द्र ! मेरे शरीर-धातु के आठ दोणों मे से एक दोण (शरीर-) धातु (पहले) रामगाम निवासी कोलियों से सत्कृत हो (फिर) नागलोक मे नागों द्वारा आदृत होकर (अत मे) लकाद्वीप के महा-स्तूप मे प्रतिष्ठित होगी" ॥१६-१९॥

दीर्घदर्शी, महामति महाकाश्यप[1] स्थविर ने (भविष्य मे) राजा धर्माशोक द्वारा (किये जाने वाले) धातु-विस्तार के कारण राजा अजात-शत्रु के (प्रधान नगर) राजगृह के पास (एक) अच्छा तरह सुरक्षित महाधातु-निधान बनवाया। (बुद्ध) धातु के सातों दोन (भिन्न भिन्न स्थानों मे) मगवा लिये। शास्ता (बुद्ध) के चित्त का ज्ञान होने से (केवल) रामगाम का दोना नहीं मगवाया। उस महाधातु-निधान को देखकर महाराज धर्माशोक ने (रामगाम से) आठवा दोना भी मगा लेने का विचार किया। उस समय क्षीणास्रव यतियों ने धर्माशोक से कहा, "यह धातु (लंका के) महास्तूप-निधान करने के लिये, जिन (बुद्ध) द्वारा नियम किये जा चुके हैं" (और) उसे (धातु) मगाने से रोक दिया ॥२०-२४॥

रामगाम का स्तूप गङ्गा[2] के किनारे बना हुआ था। वह गङ्गा के चढाव मे टूट गया। प्रकाशमान् धातु का करण्ड (-पिटारी) (बहकर) समुद्र में

[1]भगवान् (बुद्ध) के परिनिर्वाण के पश्चात प्रथम-संगीति के प्रधान ।

[2]ह्यु न-साङ् ने राम-ग्राम को कपिलवस्तु से ६०० ली (७५ मील) पूर्व लिखा है । इससे वह गङ्गा के किनारे नहीं हो सकता । किन्तु, पाली में 'गंगा' नदी का भी पर्य्यायवाचक है ।

प्रविष्ट हो (वहां) दो भागों में विभक्त जल के स्थान पर नाना रत्न-जटित सिंहासन पर (आकर) ठहरा ॥२५-२६॥

नागों ने वह धातु-करण्ड देख राजा कालनाग के मजेरिक नागभवन पर पहुंच (राजा से) निवेदन किया। राजा ने दस सहस्र कोटि नागों सहित उस धातु की पूजा कर (उसे) अपने भवन ले जा (वहां) सब प्रकार के रत्नों से मण्डित स्तूप बनवाया। उस (स्तूप) पर एक घर बनवाकर, वह नागों सहित सदैव आदर पूर्वक (सर्वज्ञ-) धातु की पूजा कराता रहा ॥२७-२६॥ वहां नागलोक में बड़ी रखवाली है। वहां से जाकर धातु लाओ। राजा कल धातु-निधान करेगा" ॥३०॥

बस प्रकार संघ की आज्ञा पाकर वह यती 'साधु' (= अच्छा) कह कर जाने के लिये (उपयुक्त) समय का विचार करते हुये अपने परिवेण को गया। राजा ने तमाम नगर में ढंढोरा पिटवा दिया, 'कल धातु-निधान होगा'। उसी ढंढोरे द्वारा तमाम आवश्यक कृत्यों का भी विधान करवा दिया। तमाम नगर और यहां (महाविहार) तक आने वाली सीधी सड़क भली प्रकार अलंकृत करा, नागरिक भी विभूषित कराये। देवेन्द्र शक्र ने विश्वकर्मा को निमन्त्रित कर उस से अनेक प्रकार से तमाम (लंका-) द्वीप सजवाया ॥३१-३४॥ राजा ने नगर के चारों द्वारों पर जन साधारण के उपयोग के लिये वस्त्र और खाद्य-पदार्थ आदि रखवाये ॥३५॥ पन्द्रहवें (या) उपोसथ के दिन अपराह्न के समय, राज-कृत्यों में दक्ष, प्रसन्नचित्त, तमाम अलङ्कारों से अलंकृत (राजा) सब नटी स्त्रियों, आयुध सहित योधाओं तथा सेना सहित सब प्रकार से सजे हुये हाथी, घोड़ों और रथों से चारों ओर से घिरा हुआ, चार श्वेत सैन्धव[1] घोड़ों से युक्त सुन्दर रथ पर चढ़, अलंकृत शुभ कण्डुल (नामक) हाथी को आगे कर श्वेत-छत्र के नीचे स्वर्ण-चंगेर लेकर (धातु का प्रतीक्षा करता हुआ) ठहरा ॥३६-३६॥ (जल) पूर्ण शुभ घड़ों को धारण किये हुये एक हज़ार आठ नागरिक स्त्रियां रथ के चारों ओर खड़ी हो गईं। उतनी ही स्त्रियों ने नाना प्रकार के फूलों को (और) उतनी ही स्त्रियों ने दण्ड-दीपों (मशालों) को धारण किया। अच्छी तरह अलङ्कृत एक हज़ार आठ बालक नाना प्रकार की शुभ ध्वजायें लेकर रथ के चारों ओर खड़े हो गये ॥४०-४२॥ अनेक प्रकार के बाजों, हाथी अश्व तथा रथ के शब्द से (भू-) तल को छेदते हुये की तरह

[1] सिन्धु देश के घोड़े।

मेघवन को प्रस्थान करता हुआ राजा नन्दनवन को प्रस्थान करते हुये इन्द्र के समान शोभा को प्राप्त हुआ ॥४३-४४॥

राजा के गमनारम्भ के समय नगर मे तुरिय (वाद्य) का महान् शब्द सुन कर परिवेण में बैठा हुआ यती सोणुत्तर जमीन मे डुबकी लगा, नाग-मन्दिर पहुच वहा शीघ्र ही नाग-राजा के सम्मुख प्रादुर्भूत हुआ। नाग-राज ने उठ कर अभिवादन किया (फिर) सिहासन पर बिठा, सत्कार करके पूछा, 'आना किस देश से हुआ ?" यह बता देने पर (फिर) स्थविर के आने का हेतु पूछा। स्थविर ने तमाम वृत्तान्त कह कर सघ का सदेश कहा। "महास्तूप में निधान करने के लिये बुद्ध ने जिस धातु को युक्त ठहराया, वह धातु तेरे पास है, सो वह धातु तू मुझे दे" ॥४५-४६॥ उसे सुन नाग राज का चित्त बहुत खिन्न हुआ। उसने यह देख कर कि श्रमण बलात्कार से भी (धातु) ले लेने में समर्थ हैं, धातु को उस स्थान से किसी दूसरे स्थान पर ले जाने की बात सोच, वहा खड़े हुये अपने भानजे का सङ्केत किया ॥५०-५१॥

उस (भानजे) का नाम वासुल दत्त था। सकेत को समझ कर वह चैत्य-घर पहुंचा। (वहा) धातु करण्डक को निगल (वहा से) सिनेरू[1] पर्वत की जड़ में जाकर कुडली (गेंडर) मार कर लेट गया। उस की लम्बाई तीन सौ योजन और उसका फन योजन भर चौड़ा था ॥५२-५३॥

उस महा ऋद्धि-सम्पन्न नाग ने (ऋद्धि-बल से) हज़ारों फन पैदा कर लिये और उन फनों से लेटे-लेटे धुआ और अग्नि निकालने लगा। लेट लेट नाग राज ने अपने जैसे हज़ारों नाग पैदा करके अपने चारों ओर लिटा लिये। उस समय दोनो नागों[2] का युद्ध देखने के लिये बहुत से नाग और देवता वहां उतर आये ॥५३-५६॥ मामा ने 'धातु भानजे ने हटा लिये हैं' यह जान कर स्थविर से कहा, "धातु मेरे पास नहीं हैं"। स्थविर ने आरम्भ से धातु-आगमन का सब वृत्तान्त नागराजा को सुना कर कहा, "धातु दे" ॥५७-५८॥

दूसरे ही ढग से सन्तुष्ट करने के विचार से राजा, स्थविर को चैत्य घर ले गया। (वहा) जाकर स्थविर से बोला, "हे भिक्षु ! अनेक प्रकार के अनेक रत्नों से सुनिर्मित इस चैत्य और चैत्य-घर को देखिये। समस्त लका-द्वीप के सारे रत्न (इस चैत्य-घर की) सीढी की पटरी के मूल्य के नहीं, औरों का

---

[1] पौराणिक सुमेरु पर्वत

[2] 'नाग' शब्द संयमी और सर्प दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

कहना ही क्या ? हे भिक्षु ! (इस) महासत्कार के स्थान से (हटाकर) धातु को थोड़े सत्कार के स्थान पर ले जाना योग्य नहीं" ॥५६-६२॥

"हे नाग ! तुम लोगों को चार आर्य (-सत्यो)[1] का ज्ञान नहीं हो सकता। (इस लिये) धातु को वहा जहा (लोगों को) (चार आर्य-) सत्य का अवबोध हो, ले जाना ठीक ही है। ससार को दुःख से मुक्त करने के लिये (ही) तथागत उत्पन्न होते हैं, इस (धातु को ले जाने) में तथागत की इच्छा (सम्मिलित) है। इस लिये मै धातु ले जाऊगा। राजा आज ही धातु-निधान करेगा। इस लिये प्रपञ्च न कर मुझे शीघ्र ही धातु दो" ॥६३-६५॥

नाग ने कहा "भन्ते ! यदि तुम्हें धातु दीखते हैं तो ले जाओ"। स्थविर ने नाग से तीन बार यह (वाक्य) कहलवाया। फिर स्थविर ने वहीं खड़े हुये (ऋद्धि-बल से) सूक्ष्म हाथ बनाकर, उसे भानजे के मुह में डाल (उसमें से) धातु-करण्ड (निकाल लिया)। धातु-करण्ड लेकर 'नाग ठहर" कहा, और पृथ्वी मे डुबकी लगा परिवेण मे उतर आये। नाग-राजा ने 'भिक्षु को हमने ठग लिया (और) वह चला गया' समझ कर भानजे के पास धातु (वापिस) ले आने के लिये (सन्देश) भेजा। भानजे ने अपने पेट मे (धातु-) करण्ड न देख रोते पीटते आकर मामा से निवेदन किया ॥६६-७०॥ "तब हम धोखा खा गये" जान नाग-राजा भी विलाप करने लगा। शेष नाग भी इकट्ठे (होकर) विलाप करने लगे ॥७१॥ भिक्षु-नाग[2] की विजय मे सन्तुष्ट हुये देवता धातु की पूजा करते हुये धातु के साथ ही चले आये ॥७२॥ धातु-हरण से दुखी नागों ने सघ के समीप आकर अनेक प्रकार से विलाप किया॥ सघ ने उन पर अनुकम्पा करके थोड़े धातु (उन्हें) दिलवा दिये। वह इस से सन्तुष्ट हुये और जाकर पूजा की चीज़ें ले आये ॥७३-७४॥

शक्र (इन्द्र) रत्न-सिंहासन और सोने का चगेर लेकर देवताओं सहित उस स्थान पर आया ॥७५॥ स्थविर के (पृथ्वी से) ऊपर आने के स्थान पर, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये शुभ रत्न-मण्डप में सिंहासन स्थापित करवा कर स्थविर के हाथ से धातु-करण्ड ले, चगेर में रख उसे सिंहासन पर स्थापित किया। ब्रह्मा ने छत्र धारण किया। संतुषित (देवपुत्र) ने व्यजन, सुयाम (देवपुत्र) ने मणि-निर्मित पखी और शक्र ने जल-सहित शङ्ख (लिया)। चारों

---

[1] १-दुख (सत्य) २-दुःखसमुदय ३-दुःखनिरोध ४-दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद्।

[2] भिक्षुओं में जो नाग तुल्य था।

महाराज[1] हाथ में खड्ग लिये खड़े थे। महा ऋद्धि-प्राप्त ततिस देवपुत्र हाथों में डालिया लिये हुये, पारिजात पुष्प से पूजा करते हुये वहाँ गये। बत्तीस (कुमारियां) दण्ड दीप धारण किये खड़ी थीं ॥७६-८०॥ दुष्ट यक्षों को भगा कर अट्ठाईस यक्ष सेनापति (वहां) रक्षा के लिये खड़े थे ॥८१॥ पञ्चशिख वहाँ वीणा बजाता हुआ खड़ा था और तिम्बरू रंग-भूमि बना झुकने पर बाजा बजा रहे थे। अनेक देवपुत्र सुन्दर गायन कर रहे थे (और) महाकाल नाग-राजा अनेक प्रकार से स्तुति कर रहा था ॥८२-८३॥ दिव्य-बाजे बज रहे थे। दिव्य सङ्गीत हो रहा था और देवता दिव्य-सुगन्धियों की वर्षा कर रहे थे ॥८४॥

इन्द्रगुप्त स्थविर ने मार को हटाने के लिये चक्रवाल के समान, लोह-छत्र बनवाया। भिक्षुओं ने भिन्न भिन्न पांच स्थानों पर धातु के सामने 'गण-स्वाध्याय[2]' किया ॥८५-८६॥

प्रसन्न-चित्त महाराज दुष्टगामणी वहां आया और सिर पर (रख कर) लाये हुये स्वर्णमय चंगेर में धातु-चंगेर रखकर (फिर उसे) आसन पर प्रतिष्ठापित कर, धातु की पूजा और वन्दना कर वहीं हाथ जोड़ कर खड़ा रहा ॥८७-८८॥

दिव्य छत्र आदि, दिव्य गन्ध आदि देख और दिव्य-बाजों के शब्द सुन (लेकिन) ब्रह्म-देवताओं को न देखकर आश्चार्यान्वित और सन्तुष्ट हुये। क्षत्रिय (राजा) ने धातुओं को लंका के राज्य पर अभिषिक्त कर (उन पर) (राज-) छत्र चढाया ॥८९-९०॥

"दिव्य-छत्र, मानुष्य-छत्र और विमुक्ति-छत्र के धारण करने वाले त्रिछत्र-धारी लोक नाथ, शास्ता (बुद्ध) को मैं तीन बार अपना राज्य अर्पण करता हूँ" कह कर उस सतुष्ट-चित्त (राजा) ने तीन बार लंका का राज्य धातुओं को दिया ॥९१-९२॥

देवताओं और मनुष्यों सहित राजा ने धातुओं की पूजा करते हुये, (उन्हें) चंगेर सहित सिर पर रक्खा। (फिर) भिक्खु-संघ से समन्वित राजा स्तूप की परिक्रमा करके पूर्व की ओर से (स्तूप पर) चढ़ कर धातुगर्भ में उतरा ॥९३-९४॥ छियानवे करोड़ अर्हत् स्तूप को चारों ओर से घेर कर हाथ जोड़े हुये खड़े थे ॥९५॥

---

[1] देखो १-३२।

[2] भिक्षुओं का एक साथ मिलकर सूत्र पाठ करना।

धातु-गर्भ में उतर कर प्रसन्न-चित्त नरेश्वर जिस समय सोचने लगा, "मै (इन धातुओं को) शुभ, महार्घ सिंहासन पर प्रतिष्ठापित करूंगा", उस समय चगेर सहित धातु, उस (राजा के सिर से उठ कर आकाश मे सात ताड़ (ऊचे) पर (जाकर) ठहरे। करण्ड स्वय खुल गया। उसमे से धातु निकले और उन धातुओं ने (बत्तीस) लक्षणो तथा (अस्सी) अनुव्यंजनों से (युक्त) उज्वल बुद्ध-रूप धारण कर, बुद्ध के समान, (जीवित अवस्था में गडम्बमूल स्थित) बुद्ध द्वारा आच्छादित यमक प्रातिहार्य की ॥९६-९६॥ इस प्रातिहार्य को देखकर प्रसन्न-एकाग्र-चित्त हुये बारह करोड़ देवताओं और मनुष्यों ने अर्हत्व की प्राप्ति की ॥१००॥ शेष (देवताओं और मनुष्यों) को तीन फलो [1] की प्राप्ति हुई और मार्ग-प्राप्तों की सख्या तो अगणित थी। तब यह (धातु) बुद्ध वेश छोड़ कर, करण्ड मे स्थापित हुई। वहा से उतर कर धातु-चगेर राजा के सिर पर (आकर) ठहरी।

इन्द्रगुप्त स्थविर और नटियों के साथ धातु-गर्भ के चारों ओर घूम कर ज्योतिधर (राजा) ने सुन्दर सिंहासन के पास पहुच चगेर स्वर्ण सिंहासन पर स्थापित की। (फिर) उस गौरव-युक्त महाजन हितैषी राजा ने सुगन्धित जल से हाथ धो (और) चार प्रकार के सुगन्धित (पदार्थ) हाथ पर मल, करण्ड खोल कर धातु निकाल कर सोचा: - "यदि धातुओं को बिना किसी विघ्न के लोगों के शरण-दाता के रूप मे यहा ठहरे रहना है, तो यह धातु इस अच्छी तरह बिछे हुये, महार्घ शयनासन पर, शास्ता (बुद्ध) के महा परिनिर्वाण-मञ्च पर लेटने के आकार में लेटे।" यह सोच कर उस (राजा) ने धातुओं को उत्तम शयन पर रक्खा। धातु शयन पर उसी आकार में लेटीं ॥१०१-१०८॥

इस प्रकार आषाढ (मास) के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा—उपोसथ—के दिन उत्तरा-अषाढ नक्षत्र के समय धातुओं की प्रतिष्ठा हुई। धातु-प्रतिष्ठा के समय महापृथिवी कांपी (और) अनेक प्रकार के बहुत से प्रातिहार्य हुये ॥१०९-११०॥

प्रसन्न-चित्त राजा ने श्वेत-छत्र से धातु की पूजा की (और) सात दिन तक समस्त लंका का राज्य धातु को अर्पण किया ॥१११॥

राजा ने शरीर के तमाम अलङ्कार धातु-गर्भ मे चढ़ा दिये। नटियों, अमात्यों, अनुयायियों (और) देवताओं ने भी (ऐसा ही किया) ॥११२॥

सघ को वस्त्र, गुड़, घृत आदि (चीजें) दे चुकने पर राजा ने भिक्षुओं से तमाम रात 'गण स्वाध्याय' करवाया। फिर दिन होने पर जनहितैषी (राजा) ने

---

[1] स्रोतआपत्ति, सकृदागामित्व, अनागामित्व।

नगर में मुनादी (ढढोरा) पिटवाया कि इस सप्ताह भर प्रजा धातु की वन्दना करे ॥११३-११४॥

महाऋद्धिवान् इन्द्रगुप्त महास्थविर ने अधिष्ठान (संकल्प) किया, "लंका-द्वीप में जितने मनुष्य धातु-वन्दना की कामना रखते हैं; वह सब इसी क्षण यहा आकर धातु-वन्दना कर अपने अपने घर जावें"। वह सब संकल्पानुसार हुआ ॥११५-११६॥

महायशस्वी महाराज ने महा भिक्षुसघ को निरन्तर सप्ताह भर महादान दे चुकने के पश्चात् कहा:--"धातु-गर्भ के अन्दर का तमाम काम तो मैं ने समाप्त करवा दिया (अब) धातु-गर्भ बन्द कराने के सम्बन्ध में सघ जाने" ॥११७-११८॥

सघ ने उन दो श्रमणेरो[1] को इस कार्य्य मे नियुक्त किया। श्रामणेरो ने लाये हुये पत्थर से धातु-गर्भ बन्द कर दिया ॥११६॥

उस समय वहा (स्थित) सभी क्षीणास्रवों ने सकल्प किया, "यहा पुष्प मालायें न कुम्हलायें, सुगन्धित (—पदार्थ) न सूखे, दीप न बुझे, (और) कुछ भी नाश न हो। यह छः चर्बी के रग के पत्थर सदैव जुड़े रहें" ॥१२०-१२१॥

हितैषी राजा ने लोगों को आज्ञा दी, "यहा वह यथा-शक्ति धातु-निधान करें। उस महाधातु निधान के ऊपर प्रजा ने यथाशक्ति हजार धातुओं का निधान किया ॥१२२-१२३॥ राजा ने उन सब को (एक साथ) ढक कर स्तूप (की रचना) समाप्त की। और चैत्य का **चतुरस्रचय**[2] भी समाप्त किया ॥१२४॥

इस प्रकार बुद्ध अचित्य (हैं) बुद्ध धर्म भी अचित्य (है) और अचित्य में श्रद्धा रखने का फल भी अचित्य है। १२५॥

इस प्रकार शुद्ध-चित्त, शान्त (पुरुष) तमाम विभवों में उत्तम विभव (निर्वाण) की प्राप्ति के लिये स्वय मल (क्लेश) हित पुण्य कर्म करते हैं और नाना प्रकार के विशेष जन-समाज को अनुयायी बनाने के लिये औरो से भी (पुण्य-कर्म) कराते हैं ॥१२६॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'धातु-निधान' नामक एक-त्रिंश परिच्छेद।

---

[1] उत्तर और सुमन (३०-४७)

[2] चैत्य के ऊपर का चौकोर चबूतरा।

द्वात्रिंश परिच्छेद

तुषितपुर गमन

(चैत्य का) छत्र (बनवाने का) कार्य्य, और चूना (पुतवाने का) कार्य्य समाप्त होने से पूर्व (ही) राजा (दुष्टग्रामणी) मरणान्तक रोग से रोगी हुआ ॥१॥ (उसने) अपने छोटे (भाई) तिस्स का दीघवापी से बुलवाकर कहा, 'स्तूप का बचा हुआ कार्य्य समाप्त करवाओ' ॥२॥

भाई की दुर्बलता के कारण उस (तिस्स) ने दरजी से सफेद वस्त्र का कञ्चुक (=गिलाफ) बनवाकर उस से चैत्य को ढकवाया, चित्रकारों से उस (वस्त्र) पर सुन्दर वेदिका, पूर्ण-घटों की पंक्ति और पांच अंगुलियों की पंक्ति (चित्रित) करवाई। बांस (का काम करने) वालों से बांस का छत्र बनवाया। वेदिका के मध्य में खर-पत्र के चांद और सूर्य्य (बनवाये) ॥३-५॥ चैत्य को लाख और ककुट्ठ से अच्छी तरह चित्रित (करा) कर राजा से निवेदन किया—"स्तूप सम्बन्धी कृत्य समाप्त हो गया" ॥६॥

राजा ने पालकी में लेट कर यहां आ, पालकी में ही चैत्य की प्रदक्षिणा कर दक्षिण-द्वार पर वन्दना की। (फिर) भिक्षुसंघ से घिरे हुये राजा ने दाईं करवट लेटे हुये, उत्तम महास्तूप को और बाईं करवट लेटे हुये, उत्तम लोह-प्रासाद को देखकर चित्तप्रसन्न किया ॥७-९॥

(राजा का) स्वास्थ्य-समाचार जानने के लिये जहां तहां से छियानवे करोड़ भिक्षु आये। भिक्षुओं ने श्रेणी बांध कर 'गण-स्वाध्याय' किया। वहां उस सभा में स्थविरपुत्र अभय स्थविर को (उपस्थित) न देखकर राजा ने सोचा, "वह स्थविरपुत्र अभय, जो अट्ठाईस महायुद्धों में मेरा साथी हो बिना हारे लड़ता रहा (और) पीछे नहीं हटा, अब मृत्यु-युद्ध के समुपस्थित होने पर (शायद) मेरी पराजय देखकर (ही) मेरे पास नहीं आया।" राजा की चिन्ता को जानकर, करिन्द नदी[1] के सिरे पर स्थित पञ्जली पर्वत के निवासी (वह) स्थविर पांच सौ क्षीणास्रव भिक्षुओं के सहित ऋद्धि (-बल) से, आकाश मार्ग से आकर परिषद् में खड़े हो गये ॥१०-१५॥

---

[1] किरिन्दु ओय।

राजा देख कर प्रसन्न हुआ और उनको सामने बिठवाया, (फिर) कहा—"पहले मैंने तुम दस योधाओं को साथ लेकर युद्ध किया, अब मृत्यु के साथ अकेले ही युद्ध आरम्भ कर दिया। (इस) मृत्यु-शत्रु को मैं पराजित नहीं कर सकता" ॥१६-१७॥ स्थविर ने कहा "महाराज! भय न करो। क्लेशशत्रु को जीते बिना मृत्यु-शत्रु अजेय है। जो कुछ भी संस्कार-प्राप्त (निर्मित) है, वह सब ही नाशवान् है। सब संस्कार अनित्य हैं। यह उपदेश शास्ता (बुद्ध) ने दिया (ही) है[1]। लज्जा और भय-रहित यह अनित्यता बुद्धों को भी प्राप्त होती है। इस लिये (यही) सोचो कि संस्कार अनित्य (हैं), दुक्ख (हैं) और अनात्म (हैं) ॥१८-२०॥

"हे राजन्! पिछले जन्म में भी तू बड़ा धर्म-प्रेमी था। दिव्य-लोक (-प्राप्ति) के सम्मुख होने पर तू ने दिव्य सुख को छोड़ कर यहां (संसार में) आकर अनेक प्रकार के बहुत से पुण्य किये। तेरा एक (-छत्र) राज्य भी (बुद्ध) शासन के प्रकाश का कारण हुआ। हे महापुण्यवान्! तू आज दिन तक पुण्य (ही) करता रहा। इन स्मरण कर। तुझे सीधे सुख की प्राप्ति होगी" स्थविर के वचन सुनकर राजा सन्तुष्ट हुआ और बोला, 'निस्सन्देह (इस) द्वन्द-युद्ध में भी आप मेरे (साथी) रहे' ॥२१-२४॥ तब सन्तुष्ट हुये (राजा) ने पुण्य-पुस्तक मंगवा कर लेखक को पढ़ने के लिये कहा। उस (लेखक) ने पुस्तक बाची ॥२५॥

"महाराज ने निन्नानवे विहार बनवाये। उन्नीस करोड़ (के व्यय) से मरीच वट्टी विहार (बनवाया), उत्तम लोह प्रसाद तीस करोड़ (के व्यय) से, बीस करोड़ (के व्यय से) महास्तूप (-सम्बन्धि) बहुमूल्य (चीज़ें) और बुद्धिमान (नरेश) ने महास्तूप के अन्दर की दूसरी चीजों का मूल्य तो एक हजार करोड़ खर्च किया ॥२६-२८॥

"(फिर) कोट्ट नाम के पर्वत पर अक्ख[2] (नामक) अकाल के समय प्रसन्न चित्त राजा ने दो महामूल्यवान् कुण्डल देकर, पांच क्षीणास्रव महा-स्थविरों के लिये उत्तम कगु-अम्बिल-पिण्ड लेकर (उन्हें) दिया ॥२९-३०॥

---

[1]अनिच्चा वत संखारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो ॥ दी० नि० [संस्कार अनित्य हैं। उत्पत्ति-विनाश उनका धर्म है। उत्पन्न होकर निरुद्ध होते हैं। उनका शमन ही सुख है]

[2]जिसमें 'अक्ख' नामक नारियल खाये गये।

"(राजा ने) चूलङ्गणा-युद्ध में पराजित होकर भागते समय (भोजन के) समय की घोषणा की। (तब) अपनी चिन्ता न कर, आकाश-मार्ग से आये हुये क्षीण-आस्रव स्थविर को पात्र (में ला) भोजन दिया "। इतना पढ़ने पर राजा ने (स्वय) कहा :—" (मिरिचवट्टी) विहार की पूजा के सप्ताह में, (लोह) प्रासाद की पूजा के सप्ताह में, (महा-) स्तूप के आरम्भ करने के सप्ताह में, और धातु-निधान करने के सप्ताह मे मैं ने चारों दिशाओं के भिक्षु और भिक्षुणी-सघ को बिना किसी भेद के (एक) महार्घ महादान दिया ॥३१-३४॥ चौबीस बार महावैशाख पूजा करवाई और द्वीप (भर) के सघ[1] को तीन बार त्रिचीवर दिये ॥३५॥ प्रसन्न चित्त (हो) मै ने (लङ्का) द्वीप का यह राज्य पाच बार सात सात दिन के लिये (बुद्ध) शासन को अर्पित किया ॥३६॥ सुगत (बुद्ध) की पूजा करते हुये मै ने घी और सफेद बत्ती के एक हजार दिये बारह स्थानों पर निरन्तर जलवाये ॥३७॥

"प्रति दिन अट्ठारह स्थानों पर मैं ने रोगियों को वैद्यों द्वारा नियमित औषधिया और उपयुक्त भोजन दिलवाया ॥३८॥ चव्वालीस स्थानों पर शहद की खीर, उतने ही स्थानों पर तेल मे पका हुआ भात, उतने ही स्थानों पर घी मे पके हुये महाजाल-पूड़े वैसे ही नित्य भात के साथ दिलवाये ॥३६-४०॥ प्रतिमास उपोसथ के दिनों में लका के आठ विहारों को (दीप-पूजा के लिये) तेल दिलवाया ॥४१॥

"यह सुन कर कि सांसारिक वस्तुओं के दान से धर्म का दान श्रेष्ठतर है, मै लोह-प्रासाद के नीचे, सघ के बीच में सघ को मङ्गल सूत्र[2] का उपदेश देने के लिये आसन पर बैठा; किन्तु संघ-गौरव के कारण उपदेश न दे सका ॥४२-४३॥ उस समय से आरम्भ करके मैं ने धर्मकथिकों का सत्कार करके (उन से) जहाँ तहाँ विहारों मे धर्मोपदेश कराया। एक एक धर्म-कथिक को (मैं ने) एक एक नाली घी, कन्द (फाणित) और शक्कर दिलवाई तथा चार अगुल (मोटाई) के मधों की एक एक मुट्ठी और दो दो वस्त्र दिलवाये। ऐश्वर्य्य (की अवस्था) में दिये गये इन सारे दान से भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं होता। दुर्गति (आपत्ति) मे प्राणों की (भी) परवाह न करके दिये गये दो दानों से (ही) मेरा चित्त प्रसन्न होता है।" इसे सुनकर राजा के चित्त की प्रसन्नता के लिये अभय स्थविर ने अनेक बार उन दोनों दानों का वर्णन किया ॥४४-४८॥

[1] भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों को।
[2] सुत्त-निपात का सोलहवां-सुत्र।

"उन पाँच स्थविरों में से (एक) खट्टा भात लेने वाले मलय महादेव स्थविर ने सुमनकूट[1] (पर्वत) में नौ सौ भिक्षुओं को (भोजन) देकर पीछे स्वय भोजन किया। पृथिवी कपाने वाले धर्मगुप्त स्थविर ने तो कल्याणी-विहार[2] के पाँच सौ भिक्षुओं को बराबर बाट कर (पीछे) स्वयं भोजन किया। तलङ्ग निवासी धम्मदिन्न स्थविर ने पियङ्गु द्वीप के बारह हज़ार (भिक्षुओं) को (भोजन) देकर (पीछे) भोजन किया। मङ्गण वासी महा-ऋद्धिमान् खुद्दतिस्स स्थविर ने केलाश[3] (विहार) के साठ हज़ार (भिक्षुओं) को (भोजन) देकर स्वय भोजन किया। महाव्यग्घ स्थविर ने उक्कनगर (विहार) में सात सौ (भिक्षुओं) का (भोजन) देकर (पीछे) स्वय भोजन किया। सकोरे में भात ग्रहण करने वाले स्थविर ने पियङ्गुद्वीप के बारह हजार भिक्षुओं को भोजन देकर (स्वय) भोजन किया" ॥४६-५५॥

इस प्रकार वर्णन करके अभय-स्थविर ने राजा के मन को प्रसन्न किया। प्रसन्न-चित्त राजा ने स्थविर से कहा :—"चौबीस वर्ष तक मैं सघ का उपकार करता रहा। अब (मेरा) यह शरीर भी सघ के उपकार के लिये हो। (इस लिये) मुझ सघ-दास का शरीर सघ के कर्म-मालक में किसी ऐसी जगह दहन किया जाये, जहा से महास्तूप दिखाई दे सके" ॥५६-५८॥

(फिर) छोटे (भाई) को कहा : —'हे तिस्स ! असमाप्त महास्तूप का (शेष) सब कृत्य आदर पूर्वक समाप्त करवाना। स्वयं प्रातःकाल उस पर पुष्प चढ़ाना। और (प्रति दिन) तीन बार उसकी पूजा करवाना। सुगत-शासन (के सत्कार) सम्बन्धी जो कृत्य मै ने निश्चित किये हैं; उन सभी कृत्यों को हे तात ! तुम अविच्छिन्न रूप से करते रहना। सघ सम्बन्धी कार्य्य में हे तात ! कभी प्रमाद (=आलस्य) न करना"। इस प्रकार उस (छोटे भाई) को अनुशासित कर राजा चुप हो गया ॥५९-६२॥

उस समय भिक्षु-सघ ने मिल कर 'गण स्वाध्याय' किया। देवता छः छः देवताओं के साथ छः रथ ले आये। अपने अपने रथ में पृथक ठहरे हुये देवताओं ने राजा से कहा, "राजन् ! तू हमारे मनोरम देव-लोक को चल"। राजा ने उनकी बात सुन कर हाथ के सङ्केत से उन्हें रोका, "जब तक मैं धर्म श्रवण करता हूं, तब तक ठहरो" ॥६३-६५॥

---

[1]देखो १-३३।

[2]देखो १-६३

[3]केलाश (विहार) दे० २६-४३।

यह समझकर कि राजा 'गण स्वाध्याय' मना करता है, भिक्षु-संघ ने स्वाध्याय बन्द कर दिया। राजा ने 'स्वाध्याय' बन्द करने का कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया, 'ठहरने का सङ्केत किये जाने के कारण'। राजा ने 'भन्ते! यह इस लिये नहीं' कह कर वह (देवागमन की) बात कही। इसे सुनकर कुछ लोगों ने सोचा कि मृत्यु के भय से राजा प्रलाप कर रहा है। उन लोगों की शङ्का का निराकरण करने के लिये अभय स्थविर ने राजा से पूछा:—"तुम्हारे लिये रथ आये हैं; यह कैसे जाना जा सकता है?" ।।६६-६६।। बुद्धिमान् राजा ने आकाश की ओर फूलों की मालाये फिकवाई। वह मालाये अलग अलग रथों की बत्तियो' में लिपट (कर) लटकने लगीं। आकाश में लटकती हुई उन (मालाओं) को देखकर जन-समूह की शका का समाधान हुआ"। राजा ने स्थविर से पूछा, "भन्ते! कौन सा देव-लोक रम्य है?" स्थविर ने उत्तर दिया, "राजन्! सत्पुरुषों के मतानुसार तुषित-लोक (सबसे अधिक) रमणीय है। महादयावान् मैत्रेय बोधिसत्व[१] बुद्धत्व के समय की प्रतीक्षा करते हुये तुषितलोक (ही) में रहते हैं" ।।७०-७३।।

स्थविर के वचन सुनकर महाबुद्धिमान् राजा ने महास्तूप की ओर देखते हुये लेटे ही लेटे आखे बन्द कर लीं। (शरीर-) च्युत होकर उसी क्षण उत्पन्न हुये की भाति, राजा (अपने) दिव्य-देह में तुषित-लोक से आये हुये रथ पर खड़ा दिखाई दिया। अपने किये हुये पुण्य-कर्म का फल जन-समाज को दिखाने के लिये राजा ने अपने आपको अलङ्कार-युक्त अवस्था मे जनता को दिखाया। (फिर) रथ पर खड़े खड़े तीन बार महास्तूप की प्रदक्षिणा करके, स्तूप और सघ को प्रणाम कर तुषित-लोक को गया ।।७४-७७।।

जिस स्थान पर नटियों ने अपने मुकुट उतारे, उसी स्थान पर 'मुकुट-मुक्त-शाला' बनवाई गई। राजा का शरीर चिता में रख दिये जाने पर, जिस स्थान पर जन-समाज रोया, वहाँ 'रवि-वट्टी-शाला' बनवाई गई। जिस असीम मालक में राजा के शरीर का दाह-कर्म किया, वही मालक यहा राजमालक कहलाता है ।।७८-८०।।

'राजा' नाम का अधिकारी महाराज दुष्टग्रामणी (भविष्य में) भगवान् मैत्रेय[२] का प्रधान श्रावक (शिष्य) होगा। राजा का पिता (मैत्रेय) का पिता होगा। (राजा की) माता (मैत्रेय) की माता होगी। और राजा का छोटा

---

[१]गौतम (बुद्ध) के पश्चात् उत्पन्न होने वाले भावी-बुद्ध।
[२]देखो ३२-७३

(भाई) सद्धातिस्स तो मैत्रेय का दूसरा (प्रधान) शिष्य होगा। राजा का पुत्र शालि-राजकुमार तो भगवान् मैत्रेय का पुत्र ही होगा ॥८१-८३॥

इस प्रकार कुशल करने (की इच्छा) वाला जो (पुरुष) बहुत से अनियत-पाप-कर्मों[1] को ढांकता हुआ (भी) पुण्य कर्म करता है, वह अपने घर (जाने) की भांति स्वर्ग-लोक को प्राप्त होता है। इस लिये प्रज्ञावान् पुरुष निरन्तर पुण्य-कर्म में अनुरक्त होवे ॥८४॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'तुषित-पुर-गमन' नामक द्वा-त्रिंश परिच्छेद।

---

[1]पाप कर्म दो तरह के होते हैं—१ नियत पापकर्म, २ अनियत पाप कर्म। नियत पापकर्म = निश्चयात्मक रूप से पाप कर्म। अनियत पापकर्म = पाप कर्म होना संभव है।

त्रयस्त्रिंश परिच्छेद

दश राजा

राजा दुष्टग्रामणी के राज्य में मनुष्य बड़े प्रसन्न थे। शालि राजकुमार प्रसिद्ध पुत्र था ॥१॥

वह अतीव सम्पत्ति-शाली और पुण्य-कर्मों में अनुरक्त था। (वह) चडाल कुल की एक अतिसुन्दर रूपवाली स्त्री पर आसक्त हो गया। यह अशोक-माला-देवी पूर्व जन्म में उसकी भार्या रह चुकी थी। उस स्त्री का रूप बहुत प्रिय-कर होने से, उसने राज की इच्छा छोड़ दी ॥२-३॥

दुष्टग्रामणी की मृत्यु के बाद उसके भाई सद्धातिस्स (श्रद्धा-तिष्य) ने अभिषिक्त हो अट्ठारह वर्ष राज्य किया। श्रद्धा (-वान्) होने के कारण श्रद्धा-तिष्य नाम वाले उसने महास्तूप का छत्र बनवाया। उस पर चूना फिरवाया और हाथी-प्राकार बनवाई।

अच्छी तरह बना हुआ लोहमहाप्रासाद दीपक से जल गया। उसने फिर नया सात तलका लोहमहाप्रासाद बनवाया। उस समय लोहमहाप्रासाद नब्बे-हजार की कीमत का हुआ। उसने दक्षिणा-गिरि विहार, कल्लकालेन (विहार), कलम्बक विहार, पेत्तंगवालिक (विहार) बनवाये, तथा वेलङ्ग-विट्ठिक[1], दुब्बलवापितिस्सक, दूरतिस्सकवापि[2] और मातुविहारक बन-वाये। इसी प्रकार (अनुराधपुर से) दीघवापी तक योजन योजन पर विहार बनवाये ॥४-६॥

दीघवापी-विहार[3] चैत्य-सहित बनवाया। उस चैत्य में नाना रत्न जटित जाली लगवाई। उस (जाली) के सन्धि-स्थानों पर रथचक्राकार सुन्दर स्वर्ण-मालायें बनवाकर लटकवाईं। राजा ने चौरासी हज़ार धर्म-स्कन्धों के (सत्कार के) लिये चौरासी-हजार पूजायें करवाईं। इस प्रकार अनेक पुण्य करता हुआ वह राजा शरीर छूटने पर तुषित-लोक में उत्पन्न हुआ ॥१०-१३॥

---

[1] देखो ३७-७८;

[2] महागाम के समीप रोहण (प्रान्त में) स्थित दूरतिस्सकवापी।

[3] देखो १-७८;

महाराज सद्धा-तिस्स के दीघवापी निवास के समय, उनके ज्येष्ठ पुत्र लज्जतिस्स ने गिरिकुम्भिल नामक रम्य विहार बनवाया और उनके कनिष्ठ पुत्र थूलथन ने कण्डर नामक विहार बनवाया। पिता (सद्धातिस्स) के भाई दुट्ठगामणी के पास जाने के समय, थूलथनक (भी) अपना विहार संघ को समर्पण करने के लिये (पिता के) साथ गया ॥१४-१६॥

सद्धातिस्स की मृत्यु पर सभी मन्त्रियों ने इकट्ठे हो, स्तूपाराम में सारे भिक्षु-संघ को निमन्त्रित कर, संघ की आज्ञा से राष्ट्र की रक्षा के लिये थूलथन कुमार का राज्याभिषेक किया। यह (समाचार) सुन लज्जतिस्स ने आकर भाई को पकड़ अपने आप राज्य किया। राजा थूलथन ने (केवल) एक मास और दस दिन राज्य किया ॥१७-१९॥

संघ ने 'आयु का विचार नहीं किया' सोच लज्जतिस्स तीन वर्ष तक संघ का अनादर करता हुआ संघ की तरफ से बेपरवाह रहा। बाद में संघ से क्षमा माग कर राजा ने दन्डस्वरूप तीनलाख (मुद्रा) देकर उरूचैत्य पर फूल चढाने के लिये तीन शिलामय फूल-दान बनवाये। फिर एक लाख (मुद्रा) के व्यय से राजा ने महास्तूप और थूपाराम[1] के बीच की भूमि सम करा दी। (इसके अतिरिक्त) स्तूपाराम में स्तूप के लिये उत्तम शिला-कचुक, स्तूपाराम के पूर्व में शिलाथूप और भिक्षु-संघ के लिये लज्जकासनशाला बनवाई ॥२०-२४॥

खन्धक स्तूप का शिला-मय कचुक बनवाया। चैत्य विहार[2] के उत्सव में एक लाख खर्च करके गिरिकुम्भिल नामक विहार के उत्सव (के अवसर) पर साठ हजार भिक्षुओं को छः छः चीवर दिलवाये। उसने अरिट्ठ विहार और कुञ्जरहीनक (विहार) बनवाये। ग्रामवासी भिक्षुओं को (आवश्यक) औषधियां दिलवाई। भिक्षुणियों को यथेच्छ चावल दिलवाये। उस (राजा) ने नौ वर्ष और आधे महीने राज्य किया ॥२५-२८॥

लज्जक तिस्स की मृत्यु हो जाने पर उसके छोटे (भाई) खल्लाटनाग ने छः वर्ष राज्य किया। इस (राजा) ने लोहमहाप्रासाद की शोभा (बढाने) के लिये उस के इर्द-गिर्द बत्तीस मनोरम प्रासाद बनवाये। सुन्दर स्वर्णमाली[3] महास्तूप के चारों ओर रेत के आङ्गन की सीमा (और) चार-दीवारी बनवाई

---

[1] रुवनवैलि से कोई ४०० गज उत्तर।

[2] चेतिय-पब्बत या मिस्सक-पब्बत पर स्थित विहार। देखो २०-१६।

[3] देखो १५-१६७

॥२६-३१॥ उस राजा ने **'कुरुन्दवासोक'** विहार बनवाया, और भी अनेक पुण्य-कर्म करवाये ॥३२॥

कम्महारत्तक नामक सेनापति ने **खल्लाटनाग** राजा को नगर में ही पकड़ लिया। राजा के छोटे (भाई) **वट्टगामणी** ने उस दुष्ट सेनापति को मार कर राज्य किया ॥३३॥ उसने अपने भाई **खल्लाटनाग** राजा के **महाचूलिक** (नामक) पुत्र को अपना पुत्र बनाया और उस की माता **अनुलादेवी** को पट-रानी बनाया। पिता का स्थान ग्रहण करने से वह 'पितिराजा' कहलाया ॥३४-३६॥

इस प्रकार राज्याभिषेक होने के पाँचवें महीने में, कुल-नगर रोहण में एक मूर्ख ब्राह्मण-गुलाम तिस्स नामक ब्राह्मण की बात सुनकर चोर (विद्रोही) हो गया। उस (विद्रोही) के बहुत से साथी हो गये ॥३७-३८॥

(उसी समय) सात दमिळ (द्राविड़) भी (अपनी) सेना सहित **महातीर्थ**[1] स्थान पर उतरे। तब तिस्स ब्राह्मण ने और उन सात दमिळों ने भी (राज्य) छत्र (दे देने) के लिये राजा के पास लेख (पत्र) भेजा। नीतिमान् राजा ने ब्राह्मण के पास पत्र भेजा, "राज्य अब तेरा ही है, तू दमिळों को क़ाबू कर"। 'अच्छा' कह कर वह दमिळों से लड़ा, लेकिन दमिळों ने ही उसे जीत लिया। तब दमिळों ने राजा के साथ युद्ध किया। **कोलम्बालक**[2] (स्थान) के पास राजा युद्ध में हार गया ॥३९-४२॥

राजा को भागते देख कर **गिरि** नामक **निगन्ठ** जोर से चिल्लाया, "महाकाल सिंहल भाग रहा है"। इसे सुनकर राजा ने सोचा, 'यदि मेरा मनोरथ सिद्ध हो जाय, तो मैं इस स्थान पर विहार बनवाऊंगा।' 'रक्षणीय' समझ कर उसने गर्भिणी **अनुलादेवी** तथा **महाचूल** और **महानाग** कुमार को अपने साथ लिया। उसने रथ का भार हलका करने के लिये **सोमदेवी** को उसकी अनुमति से (उसे) शुभ चूडामणि देकर रथ से उतार दिया ॥४३-४६॥

दो पुत्रों और देवी को साथ लेकर राजा युद्ध के लिये निकला। (वह) शङ्कित (-हृदय) होने से पराजित हुआ। भगवान् बुद्ध द्वारा प्रयुक्त पात्र

---

[1] देखो ७-५८

[2] कोलम्बहालक, देखो २५-८०

(शत्रु से वापिस) लेने में असमर्थ रहा। तब भागकर **वेस्सगिरि**[1] वन में छिप गया ॥४७-४८॥

कुपिक्कल (विहार) के महास्थविर ने उसको वहा देख, अछूते पिण्ड-दान से बचाकर[2] भात दिया। प्रसन्न-चित्त राजा ने क्योड़े के पत्र पर लिख उसे विहार के लिये संघ-भोग[3] दिया ॥४६-५०॥

वहा से चलकर **सिलासोब्भकटक** में रहा। (फिर) वहा से (चलकर) **सामगल्ल** के पास **मातुवेलङ्ग** पहुँचा। वहा पूर्व-दृष्ट (**कुपिक्कल-महातिस्स**) स्थविर को देखा। स्थविर ने राजा को बहुत अच्छी तरह अपने उपस्थायक (= सेवक) **तनसीव** के सुपुर्द किया। राजा अपने राष्ट्रवासी **तनसीव** से सेवित हो, उसके पास चौदह-वर्ष तक रहा ॥५१-५३॥

सात दमिळों मे से एक विषयासक्त दमिळ मदभरी **सोमदेवी** को ले, शीघ्र ही (समुद्र के) उस पार चला गया। एक (दमिळ) **अनुराधपुर** में रक्खा हुआ भगवान् बुद्ध का पात्र लेकर सन्तुष्ट हो, शीघ्र ही दूसरे किनारे चला गया। **पुळहत्थ** दमिळ ने **बाहिय** नामक दमिळ को अपना सेनापति बना तीन वर्ष तक राज्य किया। पुळहत्थ को (उसके सेनापति) बाहिय ने पकड़ कर दो वर्ष (स्वय) राज्य किया। **बाहिय** का सेनापति **पनयमार** था। बाहिय को मार कर पनयमार राजा हुआ। उसने सात वर्ष राज्य किया। उसका सेनापति **पिलयमार** था। **पनयमार** को मारकर **पिलयमार** राजा हुआ। वह सात मास राजा रहा। उसका सेनापति **दाठिक** था। इस **दाठिक** दमिळ ने (भी) **पिलयमार** को मार कर **अनुराधपुर** मे दो वर्ष राज्य किया। इस प्रकार इन पाचो दमिळ राजाओं को (राज्य करते) चौदह वर्ष और सात महीने होत हैं ॥५४-६२॥

तनसीव की स्त्री ने **मलय** मे खाद्य-सामग्री (ढूँढने) के लिये गई हुई **अनुला देवी** का टोकरी पाव मे ठुकरा दी। क्रोधित हो, रोती हुई वह राजा के पास गई। इसे सुन, **तनसीव** (घर से) धनुष लेकर निकला। देवी की बात सुनकर, (तनसीव) के आगमन से पूर्व ही राजा (अपने) दोनों पुत्रों और देवी को लेकर वहा से चल दिया। महाशिव (राजा) ने धनुष बाण ताने

[1] अनुराधपुर के दक्षिण में।

[2] भिक्षु को अपने भिक्षा-पात्र में से कोई चीज़ बिना स्वयं खाये, किसी गृहस्थी को देने की आज्ञा नहीं।

[3] संघ के उपयोग के लिए विहार को भूमि दान।

आते हुये (तन-) सीव को (तीर से) बींध दिया। (फिर) राजा ने (अपना) नाम बता कर आदमी इकट्ठे किये। उसे आठ प्रसिद्ध योधा, अमात्य मिल गये। उसके पास सेना और (युद्ध-) सामग्री बहुत हो गई ॥६३-६६॥

कुपिक्कल (निवासी) महातिस्स स्थविर को ढूंढ कर, महायशस्वी राजा ने अच्छगल्ल विहार में बुद्ध-पूजा कराई ॥६७॥

भवन की शुद्धि के लिये आकाश-चैत्य के अङ्गन पर चढे हुये कपिसीस (नामक) अमात्य ने नीचे उतरते समय मार्ग मे बैठे रहकर देवी सहित (चैत्य के आगन पर) चढते हुये राजा के सामने सिर नहीं झुकाया। इस लिये (राजा ने) क्रोधित हो कपिसीस को मार डाला ॥६८-६९॥

शेष सात अमात्य राजा से खिन्न हो, उसके पास से भाग, (अपने अपने) इच्छित स्थानों का गये। मार्ग मे चारों से लूटे जाकर उन्होंने हम्बुगल्लक विहार में प्रविष्ट हो वहा बहुश्रुत तिस्स स्थविर को देखा। चारों निकायों[1] के (ज्ञाता) स्थविर ने उन अमात्यों को आगन्तुक की भाति यथा-प्राप्त वस्त्र, शक्कर, तेल और चावल दिये ॥७०-७२॥ विश्राम-काल मे स्थविर ने उनसे पूछा, "कहा जाते हो?" अपने को प्रगट करके उन्होंने वह समाचार निवेदन किया ॥७३॥ (तब) "बुद्ध-शासन का प्रसार दमिळ कर सकते हैं वा राजा?" पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया 'राजा"। इस प्रकार समझाकर, तिस्स और महातिस्स दोनों स्थविरों ने उन्हे वहा से राजा के पास ले जाकर, एक दूसरे को क्षमा करवाया। राजा और अमात्यों ने स्थविरों से प्रार्थना की, "कार्य्य के सिद्ध होने पर, (दूत) भेजने पर, हमारे पास आवें"। स्थविर उनसे आने की प्रतिज्ञा करके यथा स्थान चले आये ॥७४-७७॥

(तब) महायशस्वी राजा ने अनुराधपुर आ दाठिक दमिळ को मार कर स्वय राज्य किया। वहा से निगन्ठाराम[2] (पहुँच) उसका विध्वंस कर, उसके स्थान पर बारह परिवेणों का विहार बनवाया। महाविहार की स्थापना से दो सौ सत्रह वर्ष, दस महीने और दस दिन बाद राजा ने सम्मानपूर्वक अभयगिरि विहार की स्थापना कराई। (फिर) माननीय राजा ने पूर्वोपकारी (तिस्स और महातिस्स) स्थविरों को दे दिया। क्योंकि उस अभय (राजा) ने इसे गिरि (नामक जैन साधु) के आराम (विहार) के स्थान पर बनवाया, इस लिये इस विहार का नाम अभयगिरि विहार हुआ ॥७८-८३॥

---

[1] सुत्तपिटक के चार निकाय, दीघ, मज्झिम, संयुत्त और अंगुत्तर।

[2] जैन-मठ

(राजा ने) **सोमदेवी** को मगवा कर उसे यथा-स्थान स्थापित किया (और) उसके नाम के अनुसार **सोमाराम** बनवाया। रथ से उतर कर, वह सुन्दरी उसी स्थान पर कदम्ब पुष्प-कुञ्ज में छिप गई। वहा उसने एक श्राम-णेर को हाथ से मार्ग ढँके हुये लघु-शङ्का करते देखा। राजा ने उसी की बात सुनकर वहा (भी) एक विहार बनवाया ॥८४-८६॥

महास्तूप के उत्तर की ओर ऊँचे स्थान पर का सिलासोभकटक नाम का चैत्य भी उसी राजा ने बनवाया ॥८७॥

उन सात योधाओं मे से उत्तिय नाम के योधा ने नगर से दक्षिण की ओर **'दक्षिण-विहार'** नाम का विहार बनवाया। इसी स्थान पर मूल नामक अमात्य ने **मूलवोकास** विहार बनवाया। इस (विहार) का नाम भी उसी (अमात्य) के नामानुसार हुआ। **सालिय** नामक अमात्य ने **सालियाराम** और पब्बत नामक अमात्य ने **पब्बताराम** बनवाया। **तिस्स** अमात्य ने तो **उत्तरतिस्साराम** बनवाया। रम्य विहारों की समाप्ति पर वे **तिस्स** स्थविर के पास गये। और "हम अपने बनवाये हुये ये विहार आपके सत्कारार्थ आप को देते हैं" कहकर, (उन्हें विहार) दे दिये ॥८८-९२॥

स्थविर ने सब स्थानों पर यथा-योग्य भिक्षुओं को बसाया। अमात्यों ने सघ को भिक्षुओं की विविध आवश्यकताऐं दीं। राजा ने अपने विहार में रहने वाले भिक्षुओं को आवश्यक चीज़ों की कमी न होने दी। इससे भिक्षु बहुत बढ गये ॥९३-९४॥

महातिस्स नाम के प्रसिद्ध स्थविर को गृहस्थों के (अधिक) ससर्ग में आने के दोष के कारण सघ ने **महाविहार** (निकाय) से निकाल दिया। **महातिस्स** स्थविर का बहलमस्सुतिस्स नामक प्रसिद्ध शिष्य क्रोध से **अभय** गिरि-विहार जा वहा (गुरु का) पक्ष ग्रहण करके रहने लगा। इसके बाद वह भिक्षु फिर महाविहार नहीं गये। इस प्रकार अभय-गिरि वाले **स्थविर**-वाद से अलग हुये ॥९५-९७॥

अभय-गिरि वालों से (आगे चलकर) **दक्षिण-विहार** वाले अलग हुये। इस प्रकार **स्थविरवाद** से भिक्षुओं के दो (भिन्न भिन्न) भेद हुये ॥९८॥

यह सोचकर कि इस प्रकार परस्पर सत्कार (उत्पन्न) होगा, राजा ने विहार और परिवेण एक पंक्ति में बनवाये ॥९९॥

पूर्व-काल से पाली-त्रिपिटिक और उसकी **अर्थकथा** (**अट्ठकथा**) (भी) महामतिमान् भिक्षु कठाग्र करके ही (सुरक्षित) लाये थे। इस समय प्राणियों

की हानि होती देख भिक्षु एकत्र हुये, और धर्म की चिर-स्थिति के लिये उसे पुस्तक रूप में लिखा लिया ॥१००-१०१॥ उस वट्टगामणी अभय ने बारह वर्ष राज्य किया; और पाच महीने पहले किया था ॥१०२॥

प्रज्ञावान् (पुरुष) ऐश्वर्य्य प्राप्त कर अपना और पराया हित करता है। कुबुद्धि (मनुष्य) विपुल भोग सामग्री पाकर भी भोग-लोभी हो अपना पराया किसी का भी हित नहीं करता ॥१०३॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'दश राजा' नामक त्रयस्त्रिंश परिच्छेद।

चतुस्त्रिंश परिच्छेद

एकादश राजा

उसकी मृत्यु के बाद **महाचूली** महातिस्स ने चौदह वर्ष तक धर्म और न्याय से राज्य किया ॥१॥ यह सुन कर कि अपने हाथ से कमाये दान का महाफल होता है, राजा ने (राज्य के) प्रथम वर्ष में ही अज्ञात-वेष मे जाकर शाली (धान) की कटाई की। और उस से प्राप्त मजदूरी से **महासुम्म** स्थविर को पिण्ड-पात (= भिक्षा) दिया ॥२-३॥ फिर उस क्षत्रिय ने **स्वर्णगिरि** (जाकर) वहा तीन वर्ष तक गुड़ (बनाने) के यन्त्र मे काम किया। वहा से मजदूरी मे गुड़ मिला। (वापिस) नगर में आकर (वह) गुड़ मगा राजा ने भिक्षुसघ को महादान दिया ॥४-५॥ तीस हज़ार भिक्षुओं को और वैसे ही बारह हजार भिक्षुणियो को भी वस्त्र दिये ॥६॥ उस राजा ने सुप्रतिष्ठित विहार बनवाकर साठ हजार भिक्षुओं का छः-छः चीवर दिलवाये और तीस हजार भिक्षुणियों का भी (छः चीवर) दिये। उसी राजा ने **मण्डवापी विहार अभयगल्लक** (विहार), **वङ्कावट्टकगल्ल** (विहार) **दीघबाहुगल्लक** (विहार) और **जालग्राम**-विहार बनवाये ॥७-९॥ इस प्रकार श्रद्धा-पूर्वक बहुत से पुण्य करके राजा चौदह वर्षो की समाप्ति पर स्वर्गवासी हुआ ॥१०॥

वट्टगामणी का 'चोर-नाग' नामक पुत्र **महाचूल** (विद्रोही) के राज्य मे 'चोर' होकर रहा। **महाचूल** की मृत्यु होने पर उसने आकर राज्य किया। चोर (= विद्रोही) जीवन व्यतीत करने के समय, जिन जिन विहारों मे ठहरना नहीं मिला था, वैसे अठारह विहारों को उस दुर्मति ने विध्वस करा दिया। **चोर-नाग** ने बारह वर्ष राज्य किया ॥११-१३॥ वह पापी स्वकीय भार्या द्वारा दिया गया विष खाकर मर गया और **लोकान्तरिक** (नामक) नरक मे पैदा हुआ ॥१४॥ उसकी मृत्यु पर **महाचूल** राजा के पुत्र ने तीन वर्ष तक राज्य किया। वह राजा **तिस्स** के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१५॥

चोर-नाग की **अनुला** नाम की (कुटिल) देवी ने द्वार-पाल में अनुरक्त होने के कारण अपने विषम (पति) को विष देकर मार डाला, उसी द्वार-पाल में आसक्ति के कारण **अनुला** ने **तिस्स** को भी विष से मार कर उसका राज्य

उस (द्वार-पाल) को दिया। उस सिव नामक ज्येष्ठ द्वार-पाल ने अनुला को पटरानी बनाकर एक वर्ष और दो मास नगर मे राज्य किया। बटुक दमिळ (द्रविड़) में अनुरक्त हो अनुला ने उस (सिव) को विष द्वारा मार कर बटुक को राज्य समर्पित किया। नगर-बढ़ई बटुक (दमिळ) ने अनुला को पटरानी बना कर नगर में एक वर्ष और दो मास राज्य किया। (फिर) अनुला वहा आये हुये लकड़हारे को देख, उस में अनुरक्त हुई। तब उसने बटुक को विष द्वारा मार कर उस (लकड़हारे) को राज्य दिया। उस तिस्स लकड़हारे ने अनुला को पट-रानी बनाकर एक वर्ष और एक मास नगर में राज्य किया। उसने शीघ्रता से महामेघवन में (एक) पुष्करणी बनवाई। (तत्पश्चात) निलिय नाम के द्रविड़ ब्राह्मण-पुरोहित से रागानुरक्त हो, उस से सहवास करने की इच्छा से, उस तिस्स लकड़हारे को विष द्वारा मार कर निलिय को राज्य दिया। सदैव देवी द्वारा सेवित इस निलिय (ब्राह्मण) ने अनुला को पटरानी बनाकर, यहा अनुराधपुर में छः महीने राज्य किया। उस निलिय को भी विष द्वारा मार कर अनुला ने स्वयं चार मास तक राज्य किया ॥१६ २७॥

महाचूलिक राजा के कुटकण्णतिस्स नामक द्वितीय पुत्र ने तो अनुला देवी के डर से भाग कर प्रव्रज्या ग्रहण की थी। फिर (उपयुक्त) समय पर सेना एकत्र कर यहा (अनुराधपुर) पहुँच, उस दुष्टचित्त अनुला को मार कर बाईस वर्ष राज्य किया। उसने चेतिय पर्वत पर महा उपोसथागार बनवाया; (इस) घर के सामने पत्थर का चैत्य बनवाया (और) वहीं चेतियपर्वत पर बोधि (-वृक्ष) भी लगवाया ॥२८-३१॥

नदी के बीच मे पेळगाम विहार बनवाया। वहीं वण्णक नाम की एक बड़ी नहर बनवाई। अम्बदुग्ग (नामक) महावापी और भयोलुप्पल (बनवाई)। इसी प्रकार नगर के चारों ओर सात हाथ ऊची प्राकार और खाई भी बनवाई। महा-प्रासाद (महल) में संयम रहित अनुला का दाह-करण संस्कार करके, उस (प्रासाद) से थोड़ी दूर हट कर (एक दूसरा) महाप्रासाद बनवाया। उसने नगर में ही एक पदुमस्सर वन (नामक) उद्यान बनवाया। उसकी मा ने दात धोने के पश्चात् बुद्ध-शासन में प्रव्रज्या ग्रहण की। (राजा ने) पारिवारिक-गृह के स्थान पर माता के लिये भिक्षुणी-विहार बनवाया। इसी से (वह) दन्त-गेह नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥३२-३६॥

उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र राजा भातिकाभय ने अट्ठाईस वर्ष राज्य किया। महादाठिक राजा का भ्राता होने के कारण वह धार्मिक राजा द्वीप में

भात्तिक-राजा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ (राजा) ने लोहमहाप्रासाद की मरम्मत कराई। महास्तूप मे दो वेदिकायें (बनवाई और) स्तूप (थूपाराम) में उपोसथागार बनवाया ॥३७-३९॥

अपने लिये (लिया जाने वाला) कर बन्द करके नगर के चारों ओर (एक) योजन तक सुमन और उज्जक के फूल लगवाये। (फिर) महाचैत्य की निचली-वेदिका से ऊपर छत्र तक सुगन्धित पदार्थों का चार अगुल मोटा लेप करवा कर, उसमें इन्डी की ओर से फूल भली प्रकार खुसवा कर पुष्पों के ढेर जैसा स्तूप बनवाया। फिर एक बार चैत्य पर मैनमिल की आठ अगुल मोटी तह पुतवा कर उसी में फूल खुसवाये। फिर (एक बार) चैत्य मे सीढ़ियों से छत्र की चोटी तक पुष्प खुसवा कर चैत्य को पुष्पों के ढेर से ढाक दिया ॥४०-४४॥

यन्त्र की सहायता से अभयवापी का जल उठवा कर उससे स्तूप को सींचते हुये जल-पूजा करवाई। सौ गाडी (भरे) मोतियों को अच्छी प्रकार तेल में मर्दित कर, उनके लेप से (चैत्य पर) पलस्तर करवाया ॥४५-४६॥

मूँगों की जाली बनवा, (उसे) चैत्य पर डलवा, उसके ग्रन्थि-स्थानों पर चक्रसमान स्वर्णमय पद्म लगवाकर, (फिर) नीचे लगे हुये कमलों तक लटकते हुये मोतियों के गुच्छ लटकवाये। (इस प्रकार) उसने महास्तूप की पूजा की ॥४७-४८॥

उसने (एक) दिन धातु-गर्भ मे अर्हतों के 'गण-स्वाध्याय' को सुनकर निश्चय किया, "उनको बिना देखे मै (यहा से) नहीं उठूँगा"। (और) पूर्वीय स्तूप की जड़ में निराहार ही पड़ रहा। स्थविरों ने (स्तूप मे) द्वार बनाया और उसे धतु-गर्भ मे ले गये। राजा ने धातु-गर्भ के भीतर की तमाम विभूति देख, बाहर आकर इसी प्रकार की मूर्तियां बनवा, पूजा की ॥४९-५१॥

राजा ने शहद के छत्तों से, सुगन्धियों से, घड़ों से, रसों से, अञ्जनहरताल से और मैनमिल से, चैत्य के आंगन में एड़ी भर गहरी मैनसिलों में उगे हुये कमलों से सुगन्धित गारे से भरे हुये स्तूपाङ्गन मे बिछी हुई चटाईयों के छिद्रों में बनाये हुये कमलो से, पानी (जाने) का मार्ग रोक कर, उसमे घृत भर उसमें पट्ट (रेशम) की बनाई अनेक बत्तियो की शिखाओ से, वैसे ही महुवे के तेल और तिल-तेल मे जलती हुई पट्ट-बत्तियो की बहुत सी शाखाओ से, अलग अलग सात बार महास्तूप की पूजा की ॥५२-५७॥

उस श्रद्धा-प्रेरित (राजा) ने प्रतिवर्ष (चैत्य की) उत्तम पुताई (करने) का नियम किया। बोधि-स्नान-पूजा, (और) इसी प्रकार महाबोधि की अट्ठाईस

महावैशाख-पूजा और चौरासी हजार साधारण पूजा, विविध प्रकार के नट नृत्य ,नाना प्रकार के वाद्य और घोषणायें कराईं। वह दिन में तीन बार 'बुद्ध-उपस्थान' के लिये जाता था और दिन मे दो बार 'पुष्प-पूजा' और 'शब्द-पूजा' करना (उस) का नियम था ॥५८-६१॥

राजा ने छन्द-दान और पवारण-दान निश्चित किया। (इसके अतिरिक्त) संघ को तेल, घृत वस्त्र आदि बहुत से श्रमण-योग्य पुरस्कार दिये। चैत्य की मरम्मत के लिये, चैत्य-छत्र भी दिया ॥६२-६३॥

राजा ने चैत्य-पर्वत विहार मे एक हजार भिक्षुओं को शलाक-व्रत[1] भोजन दिलवाया। धर्म के प्रति सदा गौरव रखने वाले राजा ने चित्त, मणि और मुचल नामक तीन उपस्थान-स्थानों मे तथा पदुमघर और मनोरम छत्र-प्रासाद मे—(इस प्रकार पाच स्थानों मे)—धर्म-ग्रन्थ-धुर[2] में लग भिक्षुओं को भोजन कराते हुये, प्रत्ययों (आवश्यकताओं) का दान दिया ॥६५-६६॥

पूर्व राजाओं द्वारा नियमित जो जो बुद्ध-शासन सबन्धी पुण्य-कर्म थे, भातिकराजा ने वह सभी किये ॥६७॥ उस भातिक राजा के मरने पर, उसके छोटे भाई महादाठिक महानाग ने नाना प्रकार के पुण्य-कर्म करते हुये, १२ वर्ष राज्य किया। महास्तूप के घेरे मे किञ्चिक्ख-पाषाण बिछवाये। स्तूपाङ्गन को अधिक विस्तृत करा, बालुका की सीमा करवाई। (लङ्का-) द्वीप के सब विहारों मे धर्म (-प्रचारार्थ) धर्मासन बनवाय ॥६८-७०॥

राजा ने अम्बस्थल महास्तूप बनवाया। (महास्तूप की ईटों का) गिरना बन्द न होने पर, राजा बुद्ध के गुणों का अनुस्मरण कर, अपने प्राण (का मोह) त्याग कर, स्वय वहा जा लेटा। (चैत्य की ईटों का) गिरना रोक कर (और) चैत्य-कर्म समाप्त करके, उसने चारो दरवाजों पर शिल्पियों द्वारा निर्मित नाना प्रकार के रत्नों से प्रकाशित रत्न-मेहराबें बनवाई। चैत्य के लिये लाल-कम्बल का गिलाफ देकर, उस पर सुनहरी फूल-काढ, मोतियों की मालायें लटकवाई ॥७१-७४॥

चैत्य-पर्वत के चारों ओर योजन (भर भूमि) अलंकृत करवा, चार द्वारों की रचना (और) उनके गिर्द सुन्दर बाजार (लगवा), बाजार मे दोनों ओर दूकानें लगवा, जहा तहा ध्वजा, माला और तोरणों की सजावट और दीप

[1] देखो ५-२०९

[2] धर्म ग्रन्थों के अभ्यास में लगे हुए।

मालाओं से चारों दिशायें प्रकाशित करवा नट-नृत्य, गीत और बाजे बजवाये ॥७५-७७॥

मार्ग मे कदम्ब नदी से चेतिय-पर्वत तक धुले पाव जाने के लिये आस्तरण बिछवाये। देवताओं ने भी नृत्य और गीत सहित बड़ा समाज[1] (मेला) किया। नगर के चारों द्वारों पर महादान दिलवाया। तमाम (लङ्का-द्वीप) मे निरन्तर दीपमाला कराई। योजन भर के घेरे मे समुद्र जल पर भी (दिये जलवाये)। चैत्योत्सव पर शुभ पूजा कराई। यह महा-पूजा गिरिभण्ड-महापूजा कहलाती है ॥७८-८१॥

उस पूजा-सम्मेलन पर आये हुये भिक्षुओं के लिये आठ स्थानों पर भिक्षा (दान) की स्थापना कर (राजा) ने आठ स्वर्ण भेरिया बजवा कर चौबीस हजार (भिक्षुओं) को महादान दिया ॥८२-८३॥ (भिक्षुओं को) छः चीवर दिये। बन्दियों (कैदियों) को माफ़ दी। चारों दरवाजों पर नाइयों को सदा नाई-कृत्य करते रहने की आज्ञा दी ॥८४॥ राजा ने पूर्व राजाओं और भाई (भातिक राजा) द्वारा स्थापित सभी पुण्य कर्म पूर्ण-रीति से करवाये। सघ के मना करने पर भी, राजा ने सघ को अपने आप, देवी, दो पुत्र[2], हाथी और मङ्गल घोड़े को दान दिया ॥८५-८६॥ राजा ने भिक्षु-सघ को छः लाख के मूल्य (का दान) और भिक्षुणि-सघ को एक लाख के मूल्य (का दान) दिया ॥८७॥ इस प्रकार इस विधि के ज्ञाता राजा ने सघ को विविध प्रकार के योग्य-भाण्ड देकर, अपने को और शेष (पुत्रादि) को सघ (के बन्धन) से छुड़ाया ॥८८॥ राजा ने कालायण कण्णिक में मणि-नाग पर्वत विहार और कलन्द (विहार) बनवाया। (इसी प्रकार) कुबुकन्द नदी के किनारे समुद्र विहार और हुवाचकण्णिका[3] मे चूल-नाग-पर्वत (विहार) बनवाये ॥८९-९०॥

स्वय पासाणदीपक विहार बनाते समय, उपनीत श्रामणेर के जल देने की सहायता से सन्तुष्ट होकर, राजा ने विहार के चारों ओर अर्ध-योजन भूमि सघ-भोग के लिये उस विहार को दे दी ॥९१-९२॥ इस प्रकार मण्डवापी विहार मे श्रामणेर से सन्तुष्ट होकर सघ-भोग के लिये विहार को (भूमि) दी ॥९३॥

---

[1] अशोक ने अपने शिलालेख में इसी 'समाज' के विषय में लिखा है।

[2] आमण्डगामणी अभय और तिस्स।

[3] रोहण (प्रान्त) का एक ज़िला।

इस प्रकार बहुत सी सम्पत्ति और श्रेष्ठ-बुद्धि पाकर, मद और प्रमाद से रहित, काम प्रसग को त्याग, पुण्य-कर्मो मे रुचि रखने वाले सुप्रसन्न पुरुष लोगों को कष्ट दिये बिना अनेक प्रकार के बहुत से पुण्य-कर्म करते हैं ॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'एकादश राजा' नामक चतुस्त्रिश परिच्छेद ।

पंचत्रिंश परिच्छेद

द्वादश राजा

महादाठिक के मरने पर उस के पुत्र आमण्डगामणी अभय ने नौ वर्ष और आठ महीने राज्य किया ॥१॥

उसने मनोरम महास्तूप के छत्र पर छत्र बनवाया। और वहाँ पादवेदिका तथा मूर्धवेदिका भी बनवाई। इसी प्रकार थूपाराम के उपोसथ (-आगार) के लिये और लोहप्रासाद के लिये एक बरामदा और एक अन्दर का कमरा बनवाया ॥२-३॥

राजा ने दोनों स्थानों पर सुन्दर रत्न-मण्डप और रजतलेन विहार[1] (भी) बनवाया ॥४॥ पुण्य (-कर्म) में दक्ष (राजा) ने (अनुराधपुर के) दक्षिण की ओर महागामेण्डिवापी बनवाई और (वह) दक्षिण-विहार को दे दी ॥५॥ राजा ने तमाम द्वीप में (पशुओं की) हत्या बन्द करवा दी।

आमण्डीय राजा ने (सब जगह) जहाँ तहा सब प्रकार की फलवाली बेलें लगवाई। (फिर) प्रसन्नचित्त हो मसकुम्बदक (तरबूजों) से (भिक्षुओं के) पात्र भरवा कर, (नीचे रखने के लिये) कपड़े की गेंडुरी (चुम्बट) बनवा कर, तमाम सघ को (दान) दिया। (आमण्डों से) पात्र भरवाने के कारण (वह राजा) आमण्डगामणी (नाम से) प्रसिद्ध हुआ ॥६-८॥ राजा कणीरजानु तिस्स (नामक) छोटे भाई ने भाई को मार कर तीन वर्ष तक नगर में राज्य किया ॥६॥

उस राजा ने चैत्य (नामक) उपोसथ घर सम्बन्धि (झगड़े का) निर्णय किया। (फिर) राज्यापराध के अपराधी साठ दुःशील भिक्षुओं को अपराध के उपकरणों सहित पकड़वा कर चैत्यपर्वत की कणीर (नामक) गुफा मे डाल दिया ॥१०-११॥

कणीर राजा की मृत्यु पर, आमण्डग्रामणी के पुत्र क्षत्रिय चूलाभय ने एक वर्ष राज्य किया। (इस) राजा ने नगर से दक्षिण की ओर होनक[2] नदी के किनारे चूलगल्लक विहार बनवाया ॥१२-१३॥

---

[1] वर्तमान 'रिदी-विहार'। देखो २८-२०।

[2] ओघक नदी। वर्तमान कलु-ओय।

चूलाभय की मृत्यु होने पर उस की छोटी बहिन आमण्डधीता सीवली ने चार महीने राज्य किया। आमण्ड के इळनाग नामक भानजे ने सीवली को (राज्य से) हटा कर (स्वयं) नगर में (राज-) छत्र धारण किया ॥१४-१५॥

राज्य के प्रथम वर्ष ही में राजा के तिस्सवापी जाने पर बहुत से लम्बकर्णक[1], राजा को छोड़ कर नगर वापिस चले आये। राजा ने उन को वहाँ न देख कर क्रोधित हो, उन्हें वापी के पास से महास्तूप तक सड़क बनाने के लिये मजबूर किया। (और) उन का निरीक्षण करने के लिये चण्डालों को नियुक्त किया। इस से क्रोधित हो सभी लम्बकर्णों ने इकट्ठे होकर, राजा को अपने घर में रोक (कैद) कर (स्वय राज्य का विचार) करना आरम्भ किया। तब राजा की देवी ने चण्डमुखसिव नामक अपने पुत्र को सजा कर, दाइयों के हाथ देकर, मङ्गल हाथी के पास (निम्नलिखित) सदेश कह कर भेजा। दाइयों ने उस (बालक) को वहाँ ले जाकर मङ्गल हाथी को देवी का सारा सन्देश कहा :—"यह तेरे स्वामी का पुत्र है, (तेरा) स्वामी कैद में है। इस (बालक) का शत्रुओं के हाथ से मारे जाने की अपेक्षा तेरे हाथ से मारा जाना श्रेयस्कर है। (इस लिये) तू इसे मार डाल। यह देवी का कथन है"। यह कह कर उन्होंने उस (बालक) को हाथी के पाव में लिटा दिया ॥१६-२३॥

दुःख से वह हाथी रो पडा। (फिर) उसने स्तम्भ को तोड़ महल में घुस, द्वार को जोर से गिरा, राजा के बैठने की जगह पर किवाड़ को उघाड़, राजा को कधे पर बिठाया (और) महातीर्थ को चला आया ॥२४-२५॥ वहा हाथी राजा को पश्चिम समुद्र[2] के किनारे (जाने वाली) नाव पर चढ़ा कर स्वय मलय को चला गया ॥२६॥

राजा तीन वर्ष तक दूसरे किनारे पर रहा, (फिर) सेना एकत्र कर नाव द्वारा रोहण (देश) को गया ॥२७॥ वहाँ सक्खरसोब्भ (नामक) तीर्थ (बन्दर गाह) पर उतर कर रोहण (देश) में बहुत सो सेना एकत्र की। राजा का मङ्गल हाथी (भी) राजा का काम करने के लिये दक्षिण मलय से रोहण ही चला आया ॥२८-२९॥

तुलाधरविहार वासी, जातक-वाचक महापदुम नामक स्थविर से

---

[1] लंका का एक प्रसिद्ध वंश, जिन के पूर्वज पूर्वी भारत से आकर बसे थे।
[2] भारत और लंका के बीच का समुद्र।

कपिजातक[1] सुनकर बोधिसत्व में प्रसन्नचित्त हो राजा ने डोरी-रहित सौ धनुषों[2] जितना (बड़ा) नाग महाविहार बनाया। स्तूप को यथा-स्थित (आकार का) बढ़वाया। तिस्सवापी[3] तथा दूरवापी[4] भी बनवाई ॥३०-३२॥

राजा सेना एकत्र कर युद्ध के लिये निकला। लम्बकर्ण भी इस (समाचार) को सुन युद्ध के लिये इकट्ठे हुये ॥३३॥ कपल्लक खण्ड द्वार के पास हक्कारविट्ठिक नामक क्षेत्र में दोनों सेनाओं का एक दूसरे का विनाशक युद्ध हुआ। नाव (-यात्रा) की थकावट के कारण राज-पक्ष के आदमी घबरा गये। तब राजा ने अपना नाम सुनाकर स्वयं (युद्ध में) प्रवेश किया ॥३४-३५॥

(राजा से) भय-भीत लम्ब-कर्ण पेट के बल लेट गये। उन्होंने उन (लम्बकर्णों) के शीस काट कर रथ की नाभी के समान (ऊंचा) ढेर कर दिया। तीन बार इसी प्रकार करने पर राजा ने करुणा से प्रेरित हो कहा, "इन्हें बिना मारे जीते जी कैद कर लो" ॥३६-३७॥

(फिर) वहां से संग्राम जीत राजा ने नगर में आकर (राज-) छत्र धारण किया (और) फिर तिस्सवापी के उत्सव पर गया ॥३८॥ जल-क्रीड़ा से निबट कर, सुभूषित राजा ने अपनी श्री सम्पत्ति देखकर और उसके मार्ग में बाधा डालने वाले लम्बकर्णों के स्मरण से क्रोधित हो उन्हें दो दो की जोड़ी में रथ में जुतवाया (इस प्रकार) उन्हें आगे करके नगर में प्रवेश किया ॥३९-४०॥

महाप्रासाद के चबूतरे पर खड़े होकर राजा ने आज्ञा दी, "इसी चबूतरे पर इनके सिर काटो"। (फिर) माता के इस कहने से कि हे रथर्षभ! यह (लम्बकर्ण) तो तेरे रथ में जुते हुये (रथ के ऋषभ) बैल हैं। इस लिये इन के (केवल) सींग और खुर कटवा दो। उसने सिरों का काटना रोक दिया (और केवल) उनकी नाक और पांव के अंगूठे कटवा दिये ॥४१-४३॥

जिस जनपद में हाथी रहा था, वह जनपद राजा ने हाथी को दे दिया। इस लिये उस जनपद का नाम 'हत्थिभोग जनपद' हुआ ॥४४॥ इस प्रकार इळनाग राजा ने अनुराधपुर में पूरे छः वर्ष राज्य किया ॥४५॥ इळनाग

---

[1] कपिजातक (सं० २५०)।

[2] १ धनुष = ४ हाथ।

[3] महागाम के समीप।

[4] अधिक सम्भव है कि यह भी सदा तिस्स की बनवाई हुई 'दूरतिस्सवापी' हो। देखो ३३-८।

की मृत्यु पर उसके पुत्र राजा चन्द्रमुखसिव ने आठ वर्ष (और) सात महीने राज्य किया ॥४६॥ (इस) महीपति ने मणिकार ग्राम में वापी बनवाकर ईश्वर-श्रमण नामक विहार को (दान) दी ॥४७॥ उस राजा की प्रसिद्ध महिषी दमिळ देवी ने उस (मणिकार) ग्राम का अपना हिस्सा भी उसी विहार को दे दिया ॥४८॥

तिस्सवापी में (जल-) क्रीड़ा के समय चन्द्रमुखसिव को मार कर उसके छोटे भाई राजा यसलालकतिस्स ने लंका के शुभवदन स्वरूप रम्य अनुराधपुर में सात वर्ष और आठ महीने राज्य किया ॥४९-५०॥

दत्त (नाम के) द्वारपाल के सुभ नामक पुत्र—जो कि स्वयं द्वारपाल था—का रूप राजा के सदृश था। राजा यसलालक हँसी के लिये सुभ द्वारपाल को राज-वेष पहना सिंहासन पर बिठा, इस द्वारपाल का शीर्षवेष्ठन अपने सिर पर रख, हाथ में छड़ी लेकर दरवाजे पर खड़ा हो जाता और (राज-) सिंहासन पर बैठे हुये उस द्वारपाल को नमस्कार करते हुये अमात्यों को देखकर हँसता रहता। वह समय समय पर ऐसा करता था ॥५१-५४॥

एक दिन द्वारपाल ने हँसते हुये राजा को यह कह कर कि यह द्वारपाल किस लिये मेरे सामने हँसता है, मरवा डाला। इस सुभ द्वारपाल ने यहाँ (लंका में) छः वर्ष राज्य किया (और) सुभ-राजा के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥५५-५६॥

सुभराजा ने दोनों विहारों[1] में सुभराज नाम की मनोरम परिवेण-पंक्ति बनवाई। (उसने) उरुवेल के समीप वल्ली-विहार, पूर्व दिशा में एकद्वार (-विहार) और गङ्गा के किनारे नन्दिगामक (विहार) बनवाया ॥५७-५८॥

उत्तर दिशा में रहने वाला वसभ नाम का लम्बकर्णों का एक पुत्र था। वह अपने सेनापति मामा की सेवा करता था। "वसभ नाम का (पुरुष) राजा होगा"—(यह) सुनकर राजा (लंका-) द्वीप में वसभ नाम के सभी पुरुषों को मरवाता था। (हम) इस वसभ को राजा के सुपुर्द करदें—(इस सम्बन्ध में) भार्या के साथ सलाह करके सेनापति प्रातःकाल राजकुल को गया। उस (सेनापति) के साथ जाते हुये (वसभ) की रक्षा के लिये इस (सेनापति की भार्या) ने उसके हाथ में बिना चूने का पान दिया। राज-महल (में) पहुँचने पर सेनापति ने बिना चूने का पान देखकर उसे चूना लाने के लिये भेजा ॥५९-६३॥ सेनापति की भार्या ने चूना लेने के लिये

---

[1]अभयगिरि और महाविहार।

आये हुये वसभ से रहस्य बतला (और) उसे एक हजार (मुद्रा) देकर भगा दिया ॥६४॥

वह वसभ (भाग कर) महाविहार के स्थान पर गया। वहां स्थविरों ने उसे दूध, अन्न और वस्त्र दिये। फिर (एक) कोढ़ी से अपने राजा होने की भविष्य-वाणी सुन, प्रसन्न हो, 'चोर' होने का निश्चय किया ॥६५-६६॥ इसके बाद समर्थ पुरुषों को साथ लेकर गांव लूटते हुये रोहण पहुँच कर, रोटी (की कथा)[1] के उपदेश के अनुसार क्रम से राष्ट्रों को जीत कर दो वर्षों के बाद सेना सहित राजधानी (नगर) के समीप आकर उस महाबलवान् वसभ ने सुभराजा को रण में मार डाला और नगर का (राज-) छत्र धारण किया। मामा (सेनापति) रण में काम आया। राजा वसभ ने मामा की पोत्थ नामिका भार्या को पूर्व-कृत उपकार के कारण अपनी महिषी बनाया ॥७०॥

उस राजा ने जन्मपत्र देखने वाले से अपनी आयु पूछी॥ उस (जन्म पत्र देखने वाले) ने आयु बारह वर्ष की बताई, लेकिन गुप्त-रूप से राजा ने उसे (यह बात) गुप्त रखने के लिये (एक) सहस्र मुद्रा दिलवा कर, भिक्षुसंघ को निमन्त्रित किया (और) प्रणाम करके पूछा, "भन्ते! क्या आयु बढ़ाने की (कोई) विधि है?" संघ ने उत्तर दिया, "खतरे से बचने का उपाय है। राजन्! परिस्सावन (= जल छानने का कपड़ा) का दान; निवास-स्थान का दान; रोगियों के लिये वृत्ति का दान देना चाहिये। और वैसे ही पुराने आवासों की मरम्मत करानी चाहिये। पांच शील ग्रहण कर अच्छी तरह उन की रक्षा करनी चाहिये और उपोसथ के दिन उपोसथ-उपवास करना चाहिये"। राजा ने 'अच्छा' कहा और जाकर उसी प्रकार करने लगा ॥७१-७२॥

तीन तीन वर्षों के व्यतीत होने पर, राजा ने (लंका) द्वीप में तमाम भिक्षुओं को त्रिचीवर दान दिये। जो स्थविर नहीं आये (उनके चीवर) उनके

---

[1] एक स्त्री ने अपने लड़के को पूवे पका कर दिये। लड़का पूवे को बीच बीच में से खाकर किनारे यूं ही छोड़ देता। स्त्री ने कहा:—यह लड़का 'चन्द्रगुप्त के राजग्रहण' की तरह करता है। लड़के ने कहा, 'मां! मैं क्या करता हूँ और चन्द्रगुप्त कौन है?" मां ने कहाः "पुत्र! तू पूवे के किनारे छोड़कर बीच बीच में से खाता है। चन्द्रगुप्त भी इसी प्रकार राजेच्छा से किनारे के लोगों को बिना जीते ही बीच के जनपदों को जीतता है। इस लिये ग्राम के लोग इकट्ठे होकर चन्द्रगुप्त को बीच में कर, उसकी सेना नष्ट कर देते हैं। वह उसी का दोष है"। म० टीका पृ० १२३.

पास भिजवा दिये। बत्तीस जगहों पर मधु-क्षीर दान दिया और चौसठ स्थानों पर मिश्रित महादान दिया। चेतिय-पर्वत, थूपाराम चैत्य, महास्तूप और महाबोधि घर—इन चार स्थानों पर हज़ार बत्तिया जलवाई ॥७७-८०॥

चित्तलकूट[1] में दस मनोरम स्तूप बनवाये और तमाम (लंका-) द्वीप में पुराने विहारों की मरम्मत कराई। **बल्लियेर विहार** के स्थविर से प्रसन्न हो, वहां **महावल्लिगोत्त** नामक विहार बनवाया ॥८१-८२॥ **महाग्राम** के पास **अनुरा (=ला) राम** बनवाकर, **हेलिगाम** की एक हजार आठ करीस[1] भूमि (विहार को) दान दी ॥८३॥ **तिस्सवड्ढमानक**[2] में **मुचेल विहार** बनवाकर, '**अलिसार**' के जल का एक हिस्सा (विहार को) दिया ॥८४॥

गलम्बतित्थ (विहार) के स्तूप पर ईंटों का कञ्चुक (=गिलाफ) बनवाया; उपोसथागार बनवाया और वहा के बत्ती-तेल के (व्यय के) लिये हजार करीस (भूमि सींचने वाली) वापी दान दी। (और) **कुम्भीगल्लक** विहार में उपोसथागार बनवाया ॥८५-८६॥

उसी राजा ने **इस्सर-समणक** (विहार) मे उपोसथागार और **थूपाराम** में स्तूप-घर बनवाया ॥८७। महाविहार में पच्छिम-मुखी परिवेण-पंक्ति बनवाई और पुरानी चतुश्शाला (चौपाल) की मरम्मत कराई ॥८८॥ उस राजा ने महाबोधि के आगन मे रमणीक चार बुद्ध-प्रतिमायें और उन प्रतिमाओं के लिये प्रतिमा-घर भी बनवाये ॥८९॥ उस राजा की **पोत्थ** नामक महिषी ने वहा ही मनोरम स्तूप और रम्य स्तूप-घर बनवाये ॥९०॥ **थूपाराम** में स्तूप-घर (की बनवाई) समाप्त करवा, राजा ने उसकी समाप्ति के उत्सव पर महादान दिया। बुद्धवचन (के अध्ययन) मे सलग्न भिक्षुओं को (चार-) प्रत्यय और धर्म-कथिक भिक्षुओं को घी और शक्कर दी ॥९१-९२॥ नगर के चारों ओर दरिद्रों को भीख और रोगी भिक्षुओं को रोग के समय की 'आजीविका' दी ॥९३॥

चयन्ति (वापी), **राजुप्पल** (वापी), **वह** (वापी), **कोलम्ब गामक** (वापी), **महानिक्ख वट्टि** (वापी), **महारामेत्ति** (वापी), **कोहाल** (वापी), **काली** (वापी), **चम्बुटि** (वापी), **चाथमङ्गण** (वापी) और **अग्गिवड्ढमानक** (वापी)—यह ग्यारह बापिया और अकाल के समय (देश की रक्षा) के लिये बारह नहरें बनवाई ॥९४-९६॥ चारों नगर-द्वारो पर (चार) अट्टालिकाये

---

[1] चित्तल पर्वत। देखो २२-२३।

[2] देखो ३८-४८

और महल (बनवाया); उद्यान में एक तालाब (बनवाया) और उसमे हंस छोड़े ॥६४॥ नगर में जगह जगह बहुत सी पुष्करिणियां बनवाकर, राजा ने सुरंग (उम्मग्ग) के द्वारा उन मे पानी पहुँचाया ॥६८॥ सदैव पुण्य-कर्म में अनुरक्त वसभ राजा ने इस प्रकार नाना प्रकार के पुण्य-कर्म करके (मृत्यु) भय से सुरक्षित हो, नगर में चव्वालीस वर्ष राज्य किया और चव्वालीस वैशाख-पूजायें भी करवाई ।६६-१००॥

सुभ राजा ने अपने जीवन काल मे (ही) वसभ (राजा) के भय से शङ्कित हो अपनी एक लड़की राज (=मेमार) को दे दी, तथा अपना कम्बल और राज-भाण्ड भी दे दिये। वसभ द्वारा सुभ (राजा) के मारे जाने पर उस राज ने लड़की को अपनी पुत्री बनाकर अपने घर मे पाला पोसा। उस (राज) के काम करते समय, लड़की उस के लिये भात ले जाती थी। ॥१०१-१०३॥ एक दिन उस मेधाविनी (लड़की) ने कदम्ब पुष्पों के झुर्मुट मे सात दिन तक निरोध-समापत्ति[1] में युक्त (किसी भिक्षु) को देख कर (उसे) भात दे दिया ॥१०४॥ फिर (दुबारा) भात पका कर पिता के लिये ले गई। (पिता के) देरी करने का कारण पूछने पर, उसने पिता से कारण कहा ॥१०५॥ सन्तुष्ट हो उसने बार बार स्थविर को भात भिजवाया। प्रसन्न हुये स्थविर ने भविष्य की ओर देखकर कहा :—"हे कुमारी! ऐश्वर्य्य की प्राप्ति होने पर तू इस स्थान को याद करना।" स्थविर उसी समय परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये ॥१०७॥

वसभ राजा ने अपने वकनासिकतिस्स (नामक) पुत्र के आयु प्राप्त होने पर, उसके अनुरूप कन्या की खोज करवाई। स्त्री के लक्षणों को पहचानने वाले आदमियों ने राज (मेमार) के ग्राम में इस लड़की को देख कर राजा से निवेदन किया। राजा ने उसे मगवाने की तैय्यारी की। (तब) राजा ने लड़की का 'राजकुमारित्व' कहा और (राज-) कम्बलादि से वसभ राजा की लड़की होना प्रगट किया। तब राजा ने सतुष्ट हो अपने पुत्र को वह लड़की अच्छे मङ्गल (सस्कार) के साथ व्याह दी। वसभ की मृत्यु पर (उस) वङ्कनासिकतिस्स पुत्र ने अनुराधपुर में तीन वर्ष तक राज्य किया ॥१०८-११२॥

उस वंकनासिकतिस्स राजा ने होन नदी के किनारे महामङ्गल नामक

[1] एक प्रकार की समाधि। यदि सात दिन तक समाधि की इस अवस्था में रहे, तो मृत्यु हो जाती है।

विहार बनवाया। लेकिन उसकी महामत्ता (नाम की) देवी ने स्थविर के वचन स्मरण कर विहार बनवाने के लिये धन सञ्चय किया ॥११३-११४॥ (राजा) वंकनासिक तिस्स की मृत्यु पर उसके पुत्र गजबाहुक गामणी ने बाईस वर्ष राज्य किया ॥११५॥ उस (गजबाहुकगामणी) ने माता का वचन सुन, माता के लिये कदम्ब पुष्पों के स्थान पर (एक) मातु-विहार बनवाया ॥११६॥ पण्डिता माता ने भूमि के लिये महाविहार को एक लाख दिया और विहार बनवाया। स्वयं राजा ने वहाँ शिलामय स्तूप बनवाया। और जगह जगह से खरीद कर (भिक्षु-संघ का) संघ-सम्पत्ति दी ॥११७ ११८॥ अभयुत्तर महास्तूप को (अधिक) बढ़ाकर चुनवाया और चारों द्वारों पर तोरण बनवाये। राजा ने गामणीतिस्स वापी बनवाकर अभयगिरि विहार के (भोजन-) पाक व्यय के लिये (वह) वापी विहार को दे दी ॥११९-१२०॥ मरिचवट्टि स्तूप का कञ्चुक (= गिलाफ) बनवाया। तथा एक लाख और व्यय करके (संघ को) संघ-सम्पत्ति दी ॥१२१॥ (अपने) आखिरी वर्ष में रामुक नामक विहार बनवाया और (अनुराधपुर) नगर में महेजासन शाला बनवाई ॥१२२॥

(राजा) गजबाहु की मृत्यु होने पर उसके श्वशुर राजा महल्लकनाग ने छः वर्ष राज्य किया ॥१२३॥ पूर्व (दिशा) में सेजलक (विहार), दक्षिण (दिशा) में गोठपब्बत (विहार), पश्चिम (दिशा) में दकपाषाण (विहार), नागद्वीप में सालिपब्बत (विहार), बीजगाम में तनवेलि (विहार) और रोहण जनपद में तोब्बलनाग-पब्बत (विहार) और मध्यदेश में गिरिहालिक (विहार)—यह सात विहार राजा महल्लभाग ने थोड़े काल में ही बनवाये ॥१२४-१२६॥

इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष इस असार धन से सार (पुण्य) करके बहुत से पुण्य सचय करते हैं और मूर्ख लोग मोह के कारण, कामेच्छा से बहुत से पाप करते हैं ॥१२७॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावंश का 'द्वादश राजा' नामक पचत्रिंश परिच्छेद।



षट्त्रिंश परिच्छेद

त्रयोदश राजा

महल्लनाग के मरने पर उसके पुत्र भातिक तिस्स ने चौबीस वर्ष लंका का राज्य किया। उसने महाविहार के चारों ओर प्राकार बनवाई (फिर) गवरतिस्स विहार बनवाया (और) महामणी बापी बनवा विहार को दे दी। भातिकतिस्स नामक विहार भी बनवाया ॥१-३॥

राजा ने मनोरम स्तूपाराम में उपोसथागार बनवाया और रन्धकण्डक बापी बनवाई। जीवों के प्रति कोमल चित्त और संघ के प्रति तीव्र-आदर (गौरव) का भाव रखने वाले राजा ने दोनों (भिक्षु और भिक्षुणी) संघों को महादान दिया ॥४-५॥

भातिकतिस्स के मरने पर उसके छोटे भाई कनिट्ठतिस्स ने अट्ठारह वर्ष लंका द्वीप में राज्य किया ॥६॥

भूताराम के महानाग स्थविर से प्रसन्न होकर उसने अभयगिरि में सुन्दर रत्न-प्रासाद बनवाया ॥७॥ अभयगिरि में प्राकार और महापरिवेण बनवाया और मणिसोम[1] नामक (विहार) में भी एक महापरिवेण बनवाया। वहीं (एक) चैत्य घर और उसी प्रकार अम्बत्थल चैत्य-घर (भी) बनवाया और नगद्वीप के भवन की मरम्मत कराई ॥८-६॥

उस राजा ने महाविहार (की) सीमा का मर्दन कर बड़ा बहुत अच्छी तरह कुक्कुटगिरि नामक परिवेण-पंक्ति बनवाई ॥१०॥ (और) महाविहार में उस नरेन्द्र ने बारह दर्शनीय, मनोरम, चौकोर प्रासाद बनवाये ॥११॥ दक्षिण विहार के स्तूप का कञ्चुक (गिलाफ) बनवाया और महामेघवन (विहार) की सीमा मर्दित कर भात (दान-) शाला बनवाई ॥१२॥ महाविहार के प्राकार को हटा कर दक्षिण विहार को जाने वाला मार्ग बनवाया ॥१३॥ भूताराम विहार, रामगोणक (विहार), और इसी प्रकार नन्दतिस्साराम बनवाया ॥१४॥

---

[1] देखो ३३-८४

राजा ने वर्ष की ओर गङ्गराजी में अनुलतिस्स पब्बत (विहार), निवेलतिस्साराम, पीलपिट्ठि विहार और राजमहाविहार बनवाया। उसी ने कल्याणी विहार,[1] मण्डलगिरि विहार, दुब्बलवापी तिस्स (विहार) —इन तीन विहारों में उपोसथागार बनवाये ॥१५-१७॥

कनिट्ठतिस्स की मृत्यु पर उसके खुज्जनाग नामक प्रसिद्ध पुत्र ने दो वर्ष राज्य किया ॥१८॥ खुज्जनाग के छोटे भाई कुचनाग ने अपने भाई को मारकर एक वर्ष लंका का राज्य किया ॥१९॥ (इस) राजा ने एक नालिक[2] दुर्भिक्ष के समय पाच सौ भिक्षुओं को लगातार महादान दिया [नाप की टोकरी बढ़ाई] ॥२०॥ राजा कुञ्चनाग की रानी के भाई श्रीनाग सेनापति ने राजा से विद्रोह कर, अश्व तथा सेना सहित नगर के समीप आकर राजा की सेना से युद्ध करते हुये, राजा कुञ्चनाग को हरा कर, सुन्दर अनुराधपुर में उन्नीस वर्षों तक लङ्का का राज्य किया ॥२१-२३॥

श्रेष्ठ महास्तूप पर छत्र चढ़वाकर, उस पर दर्शनीय मनोरम स्वर्ण (चित्र-) कर्म कराया ॥२४॥ उसने पाच तलों का सज्जित लोह-प्रासाद बनवाया और (फिर) महाबोधि के चारों दरवाज़ों पर सीढ़िया बनवाईं ॥२५॥ छत्र और प्रासाद बनवाकर पूजा के समय पूजा करवाई और (उस) दयावान् (राजा) ने लङ्का—द्वीप में कुल-शुल्क (= टैक्स) हटादिया ॥२६॥ (राजा) श्रीनाग की मृत्यु पर धर्म-व्यवहार में कुशल तिस्स (नामक) उसके पुत्र ने बाईस वर्ष राज्य किया ॥२७॥ उस ने ही देश में हिंसा-हीन व्यवहार स्थापित किया, इस लिये उसका नाम व्यवहार तिस्स (वोहारिक तिस्स) हुआ ॥२८॥ कप्पुक गाम वासी देव स्थविर के पास धर्म सुनकर उसने पांच आवास (विहार) बनवाये ॥२९॥ अनुरा (-ला)-राम (वासी) महातिस्स स्थविर से प्रसन्न हो मुचेल पट्टन में दान की वृत्ति (जारी) कराई ॥३०॥

(राजा ने) दोनों महाविहारों में तिस्सराजमण्डप और पूर्व की दिशा के महाबोधि-घर में लोहे की दो मूर्तिया बनवा और सुख से रहने योग्य सप्त पर्ण-प्रासाद बनवाकर प्रतिमास हजार-हज़ार (मुद्रा) महाविहार को दी ॥३१-३२॥

अभयगिरि विहार में, दक्षिण-मूल नामक (विहार) में, मरिचवट्टी विहार में, कुलालितिस्स नामक (विहार) में, महियङ्गण विहार में, महागाम-

---

[1] देखो १-२६; ३२-५१

[2] उस समय लोगों को एक नालि भर अन्न ही मिलता था।

नाग नामक (विहार) में, महानाग तिस्स नामक (विहार) में और कल्याणी विहार में—इन (विहारों के) आठ स्तूपों पर छत्र चढ़वाया। मूलनाग सेनापति विहार में, दक्षिण विहार मे, मरिचवट्टी विहार में, पुत्तभाग नामक (विहार) में, इस्सरसमण नामक विहार में और नागदीप के तिस्स नामक विहार में—इन छः विहारों के गिर्द प्राकार बनवाई और अनुराराम नामक (विहार) में उपोसथागार बनवाया ॥३३-३७॥

सद्धर्म के प्रति गौरव का भाव रखने वाले (राजा) ने सकल लङ्का-द्वीप में जहा जहा आर्य्यवंश[1] की कथा होती थी, वहां वहा दान वृत्ति स्थापित कराई। (बुद्ध-) शासन प्रिय राजा ने तीन लाख देकर ऋणग्रस्त भिक्षुओं को ऋण से मुक्त किया ॥३८-३६॥

महावैशाख पूजा करवा कर, उस (राजा) ने (लङ्का-) द्वीप वासी सभी भिक्षुओं को त्रिचीवर दिलवाये ॥४०॥

वेथुल्ल-वाद[2] का मर्दन कर और अमात्य कपिल से पापियों का निग्रह कराकर उसने (बुद्ध-) शासन प्रकाशित किया ॥४१॥

अभयनाग नाम से प्रसिद्ध छोटे भाई का राजा की रानी से अनुचित सम्बन्ध था। उसके ज्ञात होने पर भाई के डर से भाग कर सेवक सहित भल्लतीर्थ के पास पहुँच, क्रुद्ध सा (हो) (उसने) ससुर के हाथ-पाव काट डाले ॥४२-४३॥ राजा के राष्ट्र में भेद (फूट) करने के लिये, उसे यहीं छोड़ कर, अपने अति नजदीकी आदमी ले, उन्हें कुत्ते का उदाहरण[3] दिखा, वहीं नाव पर चढ़ कर दूसरे किनारे पर पहुँचा। (उसके) ससुर सुभदेव ने राजा के पास पहुँच, उसके मित्र की भांति बन (उसके) राज्य में फूट (उत्पन्न) कर दी। अभय ने उसको जानने के लिये दूत भेजा। उस (दूत) को देखकर, उसने सुपारी के वृक्ष के गिर्द घूमते हुये अपनी बरछी से वृक्ष के चारों ओर (की पृथ्वी) खोद कर वृक्ष की जडों को निर्बल कर दिया। फिर (उस दूत के सम्मुख होने पर) वृक्ष को बाहु से ही गिरा उस (दूत) को धमका कर भगा दिया। दूत ने जाकर (राजा) अभय को वह समाचार निवेदन किया ॥४४-४८॥ वह

[1] आर्य्यवंश = अरियवंश (अंगुत्तर, चतुक्क निपात।

[2] वैपुल्य सूत्रों का अनुयायी महायान बौद्ध संप्रदाय।

[3] नौका पर चढ़ते समय एक कुत्ता पीछे हो लिया। उसने उसे पीटा। तब भी कुत्ते ने पीछा न छोड़ा। उसने अपने अनुयाइयों से कहा—इस कुत्ते की तरह तुम मेरे साथ रहना (टीका)।

जानकर (राजा) **अभय** वहां से बहुत से द्रविड़ लेकर भाई से स्वयं युद्ध करने के लिये नगर के समीप आया। राजा उसे पहचान कर घोड़े पर चढ़, देवी के साथ भाग मलय आ पहुँचा। उसके कनिष्ठ (भाई) ने उसका पीछा किया। और मलय प्रान्त में राजा को मारकर, देवी को ले नगर में आकर आठ वर्ष राज्य किया ॥४६-५१॥

राजा ने **महाबोधि** के चारों ओर पाषाण-वेदिका बनवाई, और **लोह-प्रासाद** के आगन में मण्डप बनवाया ॥५२॥ दो लाख (के मूल्य) के अनेक वस्त्र मगवाकर (लङ्का-) द्वीप के भिक्षुओं को वस्त्र दान दिया ॥५३॥ (राजा) **अभय** के मरने पर उसके भाई **तिस्स** के **श्री-नाग** (नामक) पुत्र ने दो वर्ष तक लका का राज्य किया ॥५४॥ चारों ओर महाबोधि की प्राकार की मरम्मत करा कर **मुचेल** वृक्ष से दक्षिण की ओर महाबोधि-गृह के वालुका-स्थल में मनोरम हसवट्ट[1] और महान् मण्डप बनवाया ॥५५-५६॥ **श्रीनाग** के **विजय कुमार** नाम पुत्र ने पिता के मरने पर एक वर्ष राज्य किया ॥५७॥

महियङ्गण में तीन लम्ब-कर्ण (परस्पर) मित्र थे। **सघतिस्स, सघबोधि** और तीसरा **गोठकाभय**। राजा की सेवा के लिये आते हुये उनके पाव का शब्द सुनकर (एक) विचक्षण अधे ने कहा :—'पृथ्वी ने यह तीन पृथिवी-स्वामी धारण किये हैं"। इसे सुनकर पीछे चलते हुये **अभय** ने पूछा। उस (अधे) ने फिर वही कहा। **अभय** ने उसे फिर पूछा :—"किसका वश स्थिर रहेगा ?" उसने कहा :—"अन्त में चलने वाले का"। इसे सुनकर **अभय** दोनो (साथियों) के साथ चला गया। नगर में प्रवेश करके तीनों राजा के अति विश्वासपात्र (मित्र हो) श्रद्धापूर्वक राज-कार्य करते हुये राजा के समीप रहने लगे ॥५८-६२॥

एकमत हो **विजयराजा** को राजमहल मे मार कर (शेष) दोनो ने सेना-पति **सघतिस्स** का राज्याभिषेक किया। इस प्रकार अभिषिक्त **सङ्घतिस्स** ने उत्तम **अनुराधपुर** में चार वर्ष तक राज्य किया ॥६३-६४॥ (उस) राजा ने **महास्तूप पर छत्र** (चढवाया), सुनहरी काम कराया तथा चार लाख के मूल्य के चार अनर्घ महामणि चारों सूर्यों के बीच में स्थापित कराये। इसी प्रकार स्तूप के ऊपर अनर्घ वज्र-चुम्बट भी बनवाया ॥६५-६६॥ (फिर) छत्र की पूजा करने के लिये राजा ने छियालीस हजार (की कीमत) के छ. चीवर सघ को (दान) दिये ॥६७॥

---

[1] एक प्रकार का घर।

ग्रामद्वारक वासी महादेव स्थविर से खन्धक[1] के 'वायु-दान का माहात्म्य' सूत्र को सुनकर सन्तुष्ट हो नगर के चारो द्वारो पर बहुत अच्छी तरह से संघ को वायु-दान दिलवाया ।।६८-६९।।

वह राजा बीच बीच में अन्तःपुर और अमात्यों-सहित पक्की जामुन खाने के लिये प्राचीन-द्वीप को जाया करता था। उसके आगमन से परेशान प्राचीन (द्वीप के) निवासियों ने राजा के खाने के जम्बूफलों में विष मिला दिया। उन पक्व जम्बूफलो को खाकर वह (राजा) वहीं मर गया। अभय ने सेना (के ऊपर) नियुक्त श्री सङ्घबोधि का राज्याभिषेक किया ।।७०-७२।।

सङ्घबोधि नाम से प्रसिद्ध पंच-शील[2] युक्त राजा ने अनुराधपुर में दो वर्ष तक राज्य किया। ७३।। उसने महाविहार में मनोरम शलाकागृह[3] बनवाया। उस समय (लंका-) द्वीप के मनुष्यो को दुर्वृष्टि से दुखी जान, करुणा से कम्पित राजा महास्तूप के आङ्गण में स्वयं यह निश्चय करके लेट गया कि यदि वर्षा के जल के बरसने से मैं ऊपर नहीं उठूं, तो मैं इस स्थान से नहीं उठूँगा, चाहे मर ही न जाऊं। राजा के इस प्रकार लेट जाने पर, उसी समय तमाम लंका द्वीप में बड़ी भारी वर्षा हुई; जिससे महापृथ्वी सतुष्ट हुई ।।७४-७७।। इतने पर भी जल पर न तैर सकने के कारण वह नहीं उठा। तब उसके अमात्यों ने जल-निर्गमन की नालियों को बंद कर दिया। तब जल पर तैरता हुआ वह धार्मिक राजा उठ खड़ा हुआ। इस प्रकार लंका द्वीप में (राजा ने) करुणा से दुर्वृष्टि का भय शान्त कर दिया ।।७८-७९।।

यह सुन कर कि स्थान स्थान पर विद्रोह उठ खड़े हुये हैं; राजा ने विद्रोहियो को (पकड) मगवाया और (फिर) चुपके से भगा दिया। (उनकी जगह) चुपके से मुर्दों के शरीर मगवा कर आग में जलवाये और (इस प्रकार) उपद्रव-भय शान्त कर दिया ।।८०-८१।।

रत्ताक्खी (रक्ताक्षी) नाम से प्रसिद्ध एक यक्ष (=दैत्य) यहां आकर, जहा तहां लोगों की आंखें लाल कर देता। एक दूसरे को देखकर 'आंख की लाली' (की बात) कहने वाले लोग मर जाते। वह यक्ष उन्हें निःशङ्क खा

[1] विनय पिटक का महावग्ग और चुल्लवग्ग।

[2] देखो १-६२

[3] देखो १५-२०५

बैठा ॥८१-८३॥ उस यक्ष के उपद्रव (की बात) सुन सन्तप्त हृदय राजा उपोसथ के आठ अङ्गों की रक्षा करता हुआ, उपवास-भवन में, 'उस यक्ष को बिना देखे नहीं उठूँगा' निश्चय करके लेटा। उसके धर्म-तेज से वह (यक्ष) राजा के पास आया ॥८४-८५॥ उसके 'कौन है?' पूछने पर, 'मैं हूं' उत्तर दिया। उस (राजा) ने कहा 'किस लिये मेरी प्रजा को खाता है? मत खा' ॥८६॥ वह (यक्ष) बोला :—मुझे (खाने के लिये) एक जनपद के मनुष्य दे। "नहीं (दे सकता)" कहने पर उसने क्रम से (कम करते हुये) एक आदमी मागा ॥८७॥ राजा बोला "और किसी को नहीं दे सकता, मुझे खा ले"। "नहीं सकता" कह कर (यक्ष) ने राजा से गाव गाव में बलि मागी ॥८८॥ राजा ने "अच्छा" कहकर तमाम (लंका-) द्वीप में ग्रामो के दरवाजों पर रखवाकर उसे बलि दिलवायी ॥८९॥ (इस प्रकार) इस (लंका-) द्वीप के दीप, सर्वभूतों पर दया करने वाले, महामत्व ने महा-रोग का भय नाश किया ॥९०॥

राजा का खजानची अमात्य गोठकाभय (विद्रोही) बनकर उत्तर की दिशा से नगर पर चढ आया ॥९१॥ दूसरों की हिंसा न करने की इच्छा से राजा जल-छानने का कपड़ा ले अकेला ही दक्षिण-द्वार से भाग गया ॥९२॥

भोजन की थैली लिये जाते एक राही ने राजा से बार बार भोजन करने के लिये कहा। जल-छान, भोजन करके उस दयालु ने उस (राही) पर अनुकम्पा करने के लिये कहा :—"मैं संघबोधि राजा हूं; तुम मेरा सिर ले जाकर गोठाभय को दिखाओ। वह तुम्हें बहुत धन देगा"। उसने ऐसा करना नहा चाहा। उसके लिये राजा बैठा ही बैठा मर गया। उसने उस (राजा) का सिर ले जाकर गोठाभय को दिखाया। गोठाभय ने चकित हो उसको धन दे, अच्छी प्रकार राजा का सत्कार किया ॥९३-९७॥

इस प्रकार गोठाभय ने, जो मेघवर्णाभय नाम से (भी) प्रसिद्ध हुआ, तेरह वर्ष तक लंका का राज्य किया ॥९८॥

(उसने) बड़ा प्रासाद निर्मित करा (तथा) उसके द्वार में मण्डप बनवा और सजवा कर (वहां) प्रतिदिन एक हजार आठ भिक्षुओं के संघ को बिठा कर, अच्छे और अनेक प्रकार के यागु (यवागु), खाद्य, भोज्य (पदार्थों) तथा चीवरों से सत्कार करके महादान दिया। वह (दान) इक्कीस दिन तक लगातार चलता रहा ॥९९-१०१॥

महाविहार में उत्तम शिला-मण्डप बनवाया; और लोह-प्रासाद के स्तम्भ उलट कर स्थापित कराये ॥१०२॥ महाबोधि (-वृक्ष) की शिला-वेदी, उत्तरद्वार का तोरण, और चक्र (के चिन्ह से) युक्त चौकोर स्तम्भ स्थापित कराये ॥१०३॥ तीन द्वारों मे पत्थर की तीन प्रतिमायें बनवाई और दक्षिण द्वार में शिला-मय सिंहासन स्थापित करवाया। महाविहार के पीछे की ओर प्रधान-भूमि[1] बनवाई और (लंका) द्वीप के सब पुराने आवासों (भिक्षुओं के निवास स्थानों) की मरम्मत कराई ॥१०४-१०५॥ स्तूपाराम मे स्तूप-घर की, तथा स्थविर (महेन्द्र) के अम्बत्थल (विहार) मे, मणिसोमक नामक आराम में, थूपाराम मे, मणिसोमाराम में, मरिचवट्टी (बिहार) में और दक्षिणविहार में उपोसथघरों की मरम्मत कराई ॥१०६-१०७॥ और मेघवरणाभय नामक बिहार बनवाया। विहार महापूजा मे (लंका) द्वीप-वासी तीस हजार भिक्षुओं को इकट्ठा कर छः छः चीवर दिये। महा-वैशाख पूजा के समय भी ऐसे ही किया और प्रति वर्ष संघ को छः छः चीवर दिलवाये।

पापियों के निग्रह से (बुद्ध-) शासन का शुद्धि करने के लिये उसन अभय-गिरि (विहार) के रहने वाले, बुद्ध शासन के लिये कटक-स्वरूप, साठ वेतुल्ल-वादी[2] भिक्षुओं का निग्रह कर उन्हें (समुद्र के) उस पार निकाल दिया। निकाले गये स्थविर का आश्रित, चोळ[3] (देश) का भूत विद्या जानने वाला संघ-मित्र नाम का एक भिक्षु महाविहार के भिक्षुओं से क्रुद्ध होकर यहां आगया ॥१०८-११३॥

वह असयत (भिक्षु) थूपाराम की बैठक मे घुस कर, राजा को (पुराने) नाम से पुकारने वाले, राजा के मामा, संघपाल परिवेण वासी गोठाभय स्थविर के वचनो का उल्लंघन कर राजा का कुल-पूज्य हो गया।

राजा ने इस (भिक्षु) से प्रसन्न हो (अपने) जेट्ठतिस्स (नामक) ज्येष्ठ पुत्र और महासेन (नामक) कनिष्ठ पुत्र को उस को सुपुर्द किया। उसने दूसरे पुत्र (महासेन) को अपने (विश्वास) मे ले लिया। इससे कुमार जेट्ठतिस्स उस भिक्षु से रुष्ट हो गया ॥११४-११७॥

पिता के मरने पर जेट्ठ-तिस्स राजा हुआ। पिता के शरीर-सत्कार में जाने के अनिच्छुक दुष्ट अमात्यों का निग्रह करने के लिये, राजा (जेट्ठतिस्स) ने

---

[1] अर्हत्व के लिये प्रयत्न-शील भिक्षुओं के लिये चंक्रमण-भूमि।
[2] देखो ३६-४१
[3] दक्षिण-भारत का एक प्रान्त।

स्वयं (बाहर) निकल, कनिष्ठ (महासेन) को आगे, उसके बाद पिता का शरीर, और उसके बाद अमात्यों को (चलता) करके, अपने आप पीछे हो, कनिष्ठ (महासेन) और पिता के शरीर के निकल जाने पर द्वार बन्द करवा, दुष्ट अमात्यों को मरवा डाला। उनके शरीर पिता की चिता के चारों ओर सूली पर चढवा दिये। इस कार्य्य से उसका उपनाम कर्कश (कक्खल) हुआ। वह (सङ्घमित्र) भिक्षु (उस) राजा से भयभीत हो महासेन से सलाह करके, उसके अभिषेक के समय दूसरे किनारे पर चला गया और वहा उस (महासेन) के अभिषेक की प्रतीक्षा करता हुआ ठहरा ॥११८-१२३॥

राजा ने पिता द्वारा असम्पूर्ण छोड़ा हुआ, उत्तम लोहप्रासाद सात-तल वाला एक करोड़ के मूल्य का बनवा दिया ॥१२४॥ उस पर साठ लाख के मूल्य की मणि पूजा (=चढा) कर, जेट्ठतिस्स ने उस का नाम मणि प्रासाद कर दिया ॥१२५॥ दो महार्घ मणिया महास्तूप पर चढ़ाई और महाबोधि-घर मे तीन तोरण (=द्वार) बनवाये ॥१२६। पाचीन-तिस्स-पब्बत विहार बनवा कर, पृथ्वीपति ने उसे पाच आवासों में (विभक्त कर) सघ को दिया ॥१२७॥

पूर्व-काल मे राजा देवानपियतिस्स द्वारा थूपाराम मे स्थापित सुन्दर दर्शनीय विशालशिला प्रतिमा, राजा जेट्ठतिस्स ने थूपाराम से ले जाकर पाचीन तिस्स-पब्बताराम मे स्थापित की ॥१२८-१२६॥

उसने चेतियपब्बत (विहार) को कालमत्तिकवापी दी तथा विहार प्रासाद की पूजा और महावैशाख पूजा करवा तीस हजार के (भिक्षु-) सघ को छः छः चीवर दिये। उस जेट्ठ तिस्स ने आलम्बगामवापी बनवाई। इस प्रकार प्रासाद बनवाना आदि विविध पुण्य-कर्म करते हुये, उस राजा ने दस वर्ष राज किया ॥१३०-१३२॥

नरपति होना जहा बहुत से पुण्यों का कारण है, वहा बहुत से पापों का भी कारण है। इसलिये सुजनों का मन विष मिले हुये अन्न के समान उसे कभी सेवन नहीं करता ॥१३३॥

सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये रचित महावश का 'त्रयोदश राजा' नामक षट्-त्रिंश परिच्छेद।

सप्त-त्रिंश परिच्छेद

जेट्ठतिस्स के मरने पर कनिष्ठ महासेन ने राजा हो सत्ताईस वर्ष राज्य किया ॥१॥

उस महासेन का राज्याभिषेक करने के लिये वह संघमित्र स्थविर (जेट्ठतिस्स) के मरने का समय जानकर दूसरे किनारे से यहा आ गया ।२॥

उसका अभिषेक और बहुत से दूसरे कार्य्य (समाप्त) करवा महाविहार का नाश करने की इच्छा से उस असयत संघमित्र भिक्षु ने राजा को 'महाविहारवासी अविनय-वादी हैं और हम विनय-वादी हैं' कह बहकाया, (और) राजकीय-दण्ड (-नियम) बनवा दिया—जो कोई महा-विहार-वासी भिक्षुओं को आहार देगा वह सौ (मुद्रा) के दण्ड का भागी होगा ॥३-५॥

उन से पीडित महाविहार वासी भिक्षु महाविहार को छोड़ मलय और रोहण को चले गये ॥६॥ महाविहार के भिक्षुओं से छोड़ा हुआ महाविहार नौ वर्ष तक शून्य ही रहा ॥७॥ उस दुर्मति (भिक्षु) ने दुर्मति राजा को यह कह कर कि बिना स्वामी की चीज राजा की मिलकियत होती है, राजा से महाविहार नष्ट करने की अनुमति ले ली और (फिर) उस दुष्ट-चित्त ने वैसा करने के लिये मनुष्यों को लगाया। संघमित्र स्थविर के राज-बल्लभ (नामक) सेवक, दारुण (-स्वभाव) सोण अमात्य और (दूसरे) निर्लज्ज भिक्षु सात तल के उत्तम लोहप्रासाद को तोड़कर नाना प्रकार के घरों (की सामग्री) को अभय गिरि (विहार) को ले गया। महाविहार से लाये गये बहुत से प्रासादों (की सामग्री) के कारण अभय गिरि विहार बहुत से प्रासादों वाला हो गया ॥८-१२॥

सङ्घमित्र स्थविर और अपने सोण (नामक) सेवक के आश्रय से राजा ने बहुत पाप किये ॥१३॥ उस राजा ने पाचीनतिस्स पब्बत से, महाशिला प्रतिमा मगवा कर अभयगिरि विहार मे स्थापित कराई ॥१४॥ प्रतिमा-घर, बोधि-घर, मनोरम धातु-घर और चतुश्शाला बनवाई। कुक्कट विहार की मरम्मत (भी) कराई ॥१५॥ इस प्रकार दारुण-कारक सङ्घ-मित्र स्थविर के कारण उस समय अभयगिरि विहार दर्शनीय हो गया ॥१६॥

राजा का मेघवरण अभय (नामक) सर्वार्थ-साधक, सखा, अमात्य, महा-विहार के नाश से क्रुद्ध हो विद्रोही बन कर मलय चला गया। वहां बड़ी सेना एकत्र कर तिस्सवापी से (कुछ) दूर छावनी डाली ॥१७-१८॥ राजा ने (अपने) मित्र का वहां आना सुनकर, स्वयं भी युद्ध के लिये वहां पहुँच कर छावनी डाल दी ॥१९॥

मलय से लाये हुये श्रेष्ठ पेय (-पदार्थ) और मांस को पाकर, 'इसे बिना (अपने) मित्र राजा के (अकेला) नहीं खाऊंगा' सोच उसे ले रात को अकेले ही निकल राजा के पास आ, यह बात कही ॥२०-२१॥ उसके लाये हुये पदार्थ को उसके साथ बड़े विश्वास से खाकर राजा ने पूछा :--तू विद्रोही क्यों हो गया? उसने कहा, 'तेरे महाविहार के नाश करने के कारण'। राजा ने कहा '(महा) विहार (फिर) बसा दूंगा, मेरे अपराध को क्षमा कर'। उसने राजा को क्षमा कर दिया। उस मेघवरण अभय द्वारा समझाया हुआ राजा नगर को वापिस लौट आया ॥२२-२४॥ राजा को समझा कर भी वह मेघ-वरणअभय राजा के साथ नगर को नहीं लौटा, ताकि वह (महाविहार के बनवाने के लिये) सामग्री एकत्र कर सके ॥२५॥

राजा की प्यारी भार्य्या, एक लेखक (कलर्क) की लड़की ने महाविहार के नाश से दुःखित हो, क्रोध से उस विनाशक स्थविर को मरवाने के लिये (एक) बढ़ई को तैयार कर, थूपाराम को नष्ट करने के लिये आये हुये, दुष्ट, दारुण-कारक संघ-मित्र स्थविर को मरवा डाला। (उन्हों ने) असंयत, दारुण-कारक सोण अमात्य को भी मार दिया ॥२६-२८॥

मेघवरण-अभय ने अनेक प्रकार की द्रव्य-सामग्री लाकर महाविहार में अनेक परिवेण बनवाये ॥२९॥ (मेघवरण-) अभय द्वारा भय के उपशमन कर दिये जाने पर, जहां तहां से भिक्षु आकर महाविहार में रहने लगे ॥३०॥ राजा ने महाबोधि-घर की पश्चिम दिशा में लोहे की दो मूर्तियां बनवाकर स्थापित करवाई ॥३१॥

(फिर) दक्षिण-विहार के निवासी, असंयत, पाखन्डी, कुटिल-मन, दुर्मित्र तिस्स-स्थविर से प्रसन्न हो, महाविहार की सीमा (-स्थित) ज्योति नामक उद्यान में जेतवन-विहार, मना किए जाने पर भी बनवाया ॥३२-३३॥ फिर उसने भिक्षुओं से सीमा तोड़ देने के लिये कहा। ऐसा करना न चाहते हुये भिक्षु विहार को छोड़ चले गये। कुछ भिक्षु सीमा का नाश करने वाले दूसरे भिक्षुओं को असफल करने के लिये जहां तहां वहीं छिप गये ॥३४-३५॥

'महाविहार नौ महीनों से भिक्षुओं ने छोड़ दिया है' सोचकर अन्य भिक्षुओं ने सीमा का नाश करने (=बदलने) का विचार किया ॥३६॥ फिर सीमा-समुग्घात के समाप्त होने पर, जहां तहां से आकर भिक्षु महाविहार में रहने लगे ॥३७॥

उस विहार-ग्रहण करने वाले तिस्स स्थविर के विरुद्ध, अन्तिम-वस्तु[1] का एक सच्चा दोषारोपण संघ मे पहुंचा। प्रसिद्ध धार्मिक महामात्य ने उस (दोषारोपण) का निश्चय कर राजा की इच्छा के विरुद्ध उस (स्थविर) को अप्रव्रजित कर दिया ॥३८-३६॥

उसी राजा ने मणिहीरक विहार बनवाया और देवालय नष्ट करके तीन विहार बनवाये—एक गोकण्ण (विहार) एरकाविल्ल में और तीसरा कलन्द ब्राह्मण के गांव में। मिगगाम विहार, गङ्गा-सेनक पब्बत (विहार) और पश्चिम में धातु-सेन-पब्बत (विहार) बनवाया। राजा ने कोकवात में (भी) बड़ा विहार बनवाया। थूपाराम विहार तथा हुङपिट्टि (विहार) बनवाया और उत्तर तथा अभय नाम के दो भिक्षुणी-निवास बनवाये ॥४०-४३॥ कालवेल यक्ष के स्थान पर स्तूप बनवाया और द्वीप के बहुत से पुराने आवासों की मरम्मत कराई ॥४४॥

एक हजार संघस्थविरों को उसने एक एक हजार के मूल्य का स्थविर-दान दिया और सब को प्रति वर्ष चीवर दिये। उसके अन्नपान आदि के दान का लेखा नहीं है।

दुर्भिक्ष-निवारण के लिये उसने सोलह वापिया बनवाई :—मणिहीर, महागाम, छल्लूर, खानु, महामणि, कोकवात, धम्मरम्मवापी, कुम्बालक, वाहन, रत्तमालकन्डक, तिस्सवड्ढमानक, वेलङ्गविट्टिक, महागल्लक, चीरवापी, महादारगल्लक और कालपासाण वापी—यह सोलह वापिया (बनवाई) ॥४५-४६॥

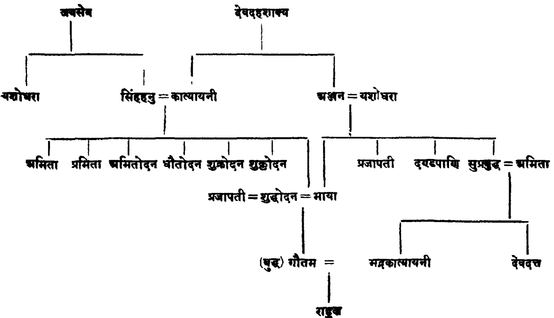
उस महामति ने गङ्गा पर से पब्बतन्त नामक (नहर) निकाली। इस प्रकार इसने बहुत सा पुण्य और अपुण्य सञ्चय किया ॥५०॥

॥ महावंश समाप्त ॥

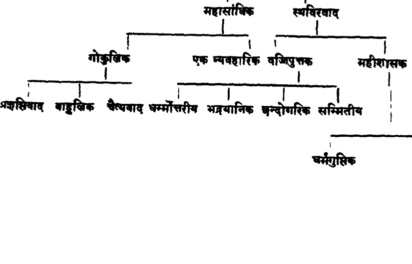
---

[1] चार पाराजिकाओं में से एक। १-मनुष्य का मार डालना २-चोरी ३-मैथुन-कर्म ४-अपने में दैवी-शक्तियों की विद्यमानता का झूठा वर्णन। इन चारों में से किसी भी एक का दोषी होने से भिक्षु संघ से निकाल दिया जा सकता है।

गौतम (बुद्ध) परम्परा



बौद्ध सम्प्रदाय परम्परा



अनुक्रमणिका

अ०—अनुराधपुर।

ज०—जम्बुद्वीप। सि० = सिंहल द्वीप (लंका)

आ

इ

ई

उ

ऋ

ए

ओ

क

ग

च

छ

ज

त

थ

द

ध

ब

भ

य

र

ल

व

श

ष

स

ह